भारतीय कविता
१९५३

भूमिका

जवाहरलाल नेहरू





साहित्य अकादेमी
नई दिल्ली

साहित्य अकादेमी
की ओर से
पब्लिकेशन्स डिवीजन
सूचना और प्रसार मन्त्रालय भारत सरकार
ओल्ड सेक्रेटरियेट दिल्ली ८ द्वारा प्रकाशित

प्रथम संस्करण
१९५६

मूल्य : पाँच रुपये

मुद्रक : वि. पु. भागवत, मौज प्रिंटिंग ब्यूरो, खटाववाडी, बंबई ४

भूमिका

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद से हमारी भाषाओं में नवजागृति के चिह्न स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगे हैं। इस नवजागरण के साथ-ही-साथ कुछ दिनों से इनमें संघर्ष और विरोध के लक्षण भी प्रकट होने लगे हैं। मुझे इस बात का पूरा विश्वास है कि पारस्परिक सहयोग और मैत्री-भाव से ही हमारी भाषाओं के विकास और प्रगति में तेज़ी आ सकती है, उनके हिमायती और प्रेमी लोगों में पारस्परिक विद्वेष और प्रतिस्पर्द्धा के भाव को उकसाकर नहीं। वैसे तो, मेरे विचार से किन्हीं भी भाषाओं के विकास के लिए यह सिद्धान्त लागू होता है, भले ही वे एक-दूसरे से बहुत घनिष्ठ रूप में संबद्ध न हों। किन्तु भारतवर्ष की भाषाओं के लिए, जिनका आपसी संबंध बहुत नज़दीक का है, तो यह सिद्धान्त कहीं अधिक उपयुक्त और वांछनीय है।

साहित्य अकादेमी ने सभी भारतीय भाषाओं को विकसित करना और उनमें पारस्परिक सहयोग की इस भावना को प्रोत्साहित करना ही अपना लक्ष्य बनाया है। हम जितना ही अधिक दूसरी भाषाओं को जानेंगे और समझेंगे उतना ही अधिक अपनी भाषा का मर्म समझ सकेंगे। इसी लक्ष्य की ओर अग्रसर होने के लिए अकादेमी ने पुस्तकों और विभिन्न भारतीय भाषाओं में उनके अनुवाद की विशाल योजनाएँ बनाई हैं। यह पुस्तक भारतीय कविता के वार्षिक संकलन का पहला खंड है। मैं इसका स्वागत करता हूँ और अनुरोध करता हूँ कि सिर्फ़ वे लोग ही नहीं, जो काव्य के प्रेमी हैं, बल्कि वे सभी, जो हमारे देश के साहित्य के विकास में सहायता पहुँचाना चाहते हैं, इस काव्य-ग्रन्थ को अवश्य पढ़ें।

इस समय हम लोग द्वितीय पंचवर्षीय योजना तथा देश के आर्थिक विकास के कार्य में लगे हुए हैं। निश्चय ही यह बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य है। परन्तु मनुष्य का सारा जीवन इतने में ही सीमित नहीं है। कला और साहित्य, नृत्य और संगीत के बिना जीवन बहुत-कुछ नीरस और प्रेरणाहीन हो जायगा, क्योंकि कला और साहित्य के ही माध्यम से कोई राष्ट्र अपनी आन्तरिक अनुभूतियों को प्रधान रूप से अभिव्यक्त करता है।

यह संकलन हमारे आन्तरिक संबंधों को उजागर करके विभिन्न भारतीय भाषाओं को एक-दूसरे के निकट लाता है। इसलिए इन भाषाओं को मिलाने वाली शक्ति के रूप में काम करना चाहिए। इन्हें विच्छेद और बिलगाव को बढ़ावा देने वाली ताक़त के रूप में प्रकट नहीं होना चाहिए, जैसा दुर्भाग्यवश ये कभी-कभी दिखाई देने लगती हैं।

जवाहरलाल नेहरू

भूमिका

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद से हमारी भाषाओं में नवजागृति के चिह्न स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगे हैं। इस नवजागरण के साथ-ही-साथ कुछ दिनों से इनमें संघर्ष और विरोध के लक्षण भी प्रकट होने लगे हैं। मुझे इस बात का पूरा विश्वास है कि पारस्परिक सहयोग और मैत्री-भाव से ही हमारी भाषाओं के विकास और प्रगति में तेज़ी आ सकती है, उनके हिमायती और प्रेमी लोगों में पारस्परिक विद्वेष और प्रतिस्पर्द्धा के भाव को उकसाकर नहीं। वैसे तो, मेरे विचार से किन्हीं भी भाषाओं के विकास के लिए यह सिद्धान्त लागू होता है, भले ही वे एक-दूसरे से बहुत घनिष्ठ रूप में संबद्ध न हों। किन्तु भारतवर्ष की भाषाओं के लिए, जिनका आपसी संबंध बहुत नज़दीक का है, तो यह सिद्धान्त कहीं अधिक उपयुक्त और वांछनीय है।

साहित्य अकादेमी ने सभी भारतीय भाषाओं को विकसित करना और उनमें पारस्परिक सहयोग की इस भावना को प्रोत्साहित करना ही अपना लक्ष्य बनाया है। हम जितना ही अधिक दूसरी भाषाओं को जानेंगे और समझेंगे उतना ही अधिक अपनी भाषा का मर्म समझ सकेंगे। इसी लक्ष्य की ओर अग्रसर होने के लिए अकादेमी ने पुस्तकों और विभिन्न भारतीय भाषाओं में उनके अनुवाद की विशाल योजनाएँ बनाई हैं। यह पुस्तक भारतीय कविता के वार्षिक संकलन का पहला खंड है। मैं इसका स्वागत करता हूँ और अनुरोध करता हूँ कि सिर्फ़ वे लोग ही नहीं, जो काव्य के प्रेमी हैं, बल्कि वे सभी, जो हमारे देश के साहित्य के विकास में सहायता पहुँचाना चाहते हैं, इस काव्य-ग्रन्थ को अवश्य पढ़ें।

इस समय हम लोग द्वितीय पंचवर्षीय योजना तथा देश के आर्थिक विकास के कार्य में लगे हुए हैं। निश्चय ही यह बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य है। परन्तु मनुष्य का सारा जीवन इतने में ही सीमित नहीं है। कला और साहित्य, नृत्य और संगीत के बिना जीवन बहुत-कुछ नीरस और प्रेरणाहीन हो जायगा, क्योंकि कला और साहित्य के ही माध्यम से कोई राष्ट्र अपनी आन्तरिक अनुभूतियों को प्रधान रूप से अभिव्यक्त करता है।

यह संकलन हमारे आन्तरिक संबंधों को उजागर करके विभिन्न भारतीय भाषाओं को एक-दूसरे के निकट लाता है। इसलिए इन भाषाओं को मिलाने वाली शक्ति के रूप में काम करना चाहिए। इन्हें विच्छेद और बिलगाव को बढ़ावा देने वाली ताक़त के रूप में प्रकट नहीं होना चाहिए, जैसा दुर्भाग्यवश ये कभी-कभी दिखाई देने लगती हैं।

जवाहरलाल नेहरू

वक्तव्य

सन् १९५४ ई. के अन्त में यह निश्चित किया गया था कि साहित्य अकादेमी की ओर से भारतीय भाषाओं की कविता का एक ऐसा वार्षिक संकलन प्रकाशित हुआ करे, जिसमें भारत की १४ भाषाओं की गत वर्ष में प्रकाशित चुनी हुई दस-दस कविताएँ समाविष्ट हों। साथ ही यह भी निर्णय किया गया था कि यह संकलन हिन्दी में प्रकाशित हो, जिसमें एक ओर देवनागरी लिपि में मूल कविता हो और दूसरी ओर उसका हिन्दी अनुवाद दे दिया जाय।

प्रस्तुत संकलन इसी योजना का प्रथम किन्तु विनम्र प्रयास है। इसके लिए प्रारम्भ में प्रत्येक भाषा की कुछ उत्कृष्टतम रचनाओं का चुनाव अकादेमी के विभिन्न भाषाओं के परामर्शदाताओं अथवा उनके द्वारा प्रस्तावित व्यक्तियों ने किया और फिर, अन्ततः कार्यकारिणी समिति ने उनमें से प्रकाशनार्थ कविताएँ चुनीं।

इन कविताओं के लिप्यन्तर और अनुवाद का कार्य सुयोग्य एवं अनुभवी द्विभाषा-विज्ञ व्यक्तियों द्वारा संपन्न कराया गया है। हिन्दी में प्रकाशित होने वाले संकलनों और पत्र-पत्रिकाओं में अन्य लिपियों के नागरीकरण की जो पद्धति प्रचलित है, लिप्यन्तर कराते समय हमने उसीको सामने रखा है। वैसे, भारत की सब भाषाओं की ध्वनियों के सर्वमान्य एवं सर्वग्राह्य स्तरीकरण या चिन्ह-निर्माण का प्रयत्न अभी बाल्यावस्था में ही है, किन्तु, हमने ऐसा मार्ग अपनाने का प्रयत्न किया है, जो अधिक-से-अधिक निर्विवाद हो। उर्दू-कविताओं का अनुवाद न देकर हमने प्रचलित पद्धति के अनुसार उनके नीचे कठिन शब्दों के अर्थ-मात्र ही दे दिये हैं।

इस संकलन में समाविष्ट सभी कविताओं का अनुवाद मूल कविता की भावना और यथासंभव शब्दावली को भी ज्यों-का-त्यों रखने के विचार से अक्षरशः तथा पंक्तिशः गद्य में ही कराया गया है। कविता का अनुवाद करना कठिन कला है। इस संकलन के अनुवादकों ने प्रयत्न किया है कि अनुवाद के साथ मूल कविता का अधिक-से-अधिक सान्निध्य और सारूप्य बना रहे, जिससे पाठक थोड़ा प्रयास करके यथासंभव मूल का भी किंचित् रसास्वादन कर सकें। इस प्रकार यह संकलन हिन्दी को अन्य भारतीय भाषाओं की काव्यगत शैलियों और मुहावरों के निकट लाने की दिशा में भी एक विनम्र प्रयास है, प्रारंभिक प्रयास तो यह है ही। संकलन के प्रायः सभी हिन्दी अनुवादों को प्रतिष्ठित कवि, साहित्यकार एवं राज्य-सभा-सदस्य श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' ने देखा है। उनकी इस कृपा के लिए हम उनके आभारी हैं।

इस अवसर पर हम अपने उन सभी विद्वान् और प्रतिष्ठित साहित्यकारों, कवियों और अनुवादकों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं, जिनके सक्रिय सहयोग से यह

संकलन तैयार हो सका है। हमारी योजना में अगला संकलन भी शीघ्र प्रकाशित होगा, जिसमें १९५४ तथा १९५५ में प्रकाशित भारतीय भाषाओं की चुनी हुई दस-दस कविताएँ इसी पद्धति के अनुसार समाविष्ट होंगी।

इस प्रकाशन में कुछ विलंब हुआ, जो स्वाभाविक था, क्योंकि अपने ढंग का यह पहला ही प्रयत्न है। विभिन्न भाषाओं के परामर्शदाताओं द्वारा कविताओं का चुनाव होने और फिर प्रत्येक कवि से उनकी अनुमति प्राप्त करने में भी पर्याप्त समय लगा। फिर भी विलंब के लिए हम क्षमा-प्रार्थी हैं।

मन्त्री, साहित्य अकादेमी

अनुक्रम

अ स मि या

चयन : विरिंचिकुमार बरुवा

अनुवाद : चक्रेश्वर भट्टाचार्य

कवि-नाम	कविता
अब्दुल मलिक, सैयद	जारज
अमियचरण गोहाँई	चैत्र जाते जाते
जीबकान्त बरुवा	सहस्र मृत्यु के बाद
नवकान्त बरुवा	कृपण
बीरेन बरकटकी	अहल्या पृथिवी
बीरेन्द्रकुमार भट्टाचार्य	विष्णु राभा, अब कितनी रात है
महेश्वर नेओग	कवि के लिए चिट्ठी
महेन्द्र बरा	मुंशी शैले की चिट्ठी
हरि बरकाकति	अनुर्व्वरा
हेम बरुवा	जाड़े के दिनों का स्वप्न

जारज

एइ पृथिवीखनक चिनि पावर पयत्रिश बछर हल ।
तार आगेयेओ आछिल पृथिवी
कविर सपोन

सम्राटर व्यभिचारर लीला भूमि
आरु—
मोर निचिना वीरर आजिर दरोइ
रोष अभियुक्त निश्वासत डेइ योवा क्षेत्र
मइ नछिलो ।
अणु बोमा शुइ आछिल सुदर्शनर वायु चक्रत
वन्ध्या नहय चिर उर्वरा एइ पृथिवी
गर्भ कोषत लक्ष कोटि नतुन पितार आशीर्वाद
आमि जारज सन्तान एइ पृथिवीर
अवांछित किन्तु अवश्यम्भावी ।
किन्तु आमि फाल्टु गण्टिर बाहिर
मातृरकोलात आमार कारणे ठाइ नाइ
मातृर स्तनत आमार कारणे मधु नाइ
तथापि आमि आहो ।
मइ लग नोपोवा पयत्रिश बछरर आगर
शतिकाबोरको आमार····
बारे बारे आहि जन्म निश्वासेरे
कलुषित करि गैछे ।
मयो करिछो

आज हते शतवर्ष परे ?
आमि साधु कथा हम ?
····सेइ दिनार नतुन इतिहासत
आमार नाम पाद टीकात नहय,

जारज

इस पृथ्वी को पहचानने को पैंतीस बरस हुए।
इससे पहले भी पृथ्वी थी
कवि का स्वप्न

सम्राटों के व्यभिचार की लीला-भूमि
और—
मेरी तरह वीरों का, आज की तरह ही
रोष अभियुक्त खाक हुआ क्षेत्र।
मैं नहीं था।
अणु बम सो रहा था सुदर्शन वायु-चक्र में—
वन्ध्या नहीं है चिर-उर्वरा है यह पृथ्वी
गर्भकोष में लक्ष कोटि नये पिता के आशीर्वाद।
हम जारज सन्तान हैं इस पृथ्वी के।
अवांछित किन्तु अवश्यम्भावी।
किन्तु हम फालतू गिनती के बाहर।
मातृ-गोद में हमारे लिए स्थान नहीं है,
मातृ-स्तन में हमारे लिए मधु नहीं है,
तो भी हम आते हैं।
मुझसे मुलाकात नहीं हुई पैंतीस बरस पहले की
सदियों की भी, हमारे····
बार-बार आये हुए निश्वासों से
कलुषित कर गई है।
मैंने भी किया :

आज से शत वर्ष बाद ?
हम एक उप-कथा होंगे।
उन दिनों के नव-इतिहास में
हमारा नाम पादटीका में नहीं

अध्यायर प्रथम शारीत ।
आमि—

जारज दल भविष्यतर उत्तराधिकारी ।
जारज अशुचि हातत
गंगोदकर नतुन शान्तियनी
तारे एचलुरे आजिर आमार परिचय
कालिमा घुइ पेलाम ।
आरु एचलु सिचि दिम नतुनर उर्वरा क्षेत्रत ।
पृथिवी श्यामला हब ।

अब्दुल मलिक, सैयद

अध्याय की पहली पंक्ति में रहेगा।
हम—

जारज दल भविष्य के उत्तराधिकारी हैं।
जारज अशुचि हाथों में
गंगोदक नव शान्ति-वारि—
उसकी एक अंजुली से आज के अपने परिचय की
कालिमा धो लेंगे।
और एक अंजुली सिंचन करेंगे नूतन का,
उर्वरा क्षेत्र में।
पृथ्वी श्यामला होगी।

अब्दुल मलिक, सैयद

चते गये गये····

जीवनतोर पातवोरलै
वहुत चत आहे ।

तपत हुसुनियाहत
मरण सरुवाइ

चत सदाय थाके
आमार बसुमती एकुरा जुइ
तारे छाइ होवा

धोवाँ वोर उरि उरि
पुरि योवा वन उरुवाइ
अङठार उशाह लै.

पछोवा बताह आहे
वाकरित हाँहे खिल खिलाइ
व्यस्त उतला माताल ।

चतर सन्धिया छाइ भरम सना
आमि संन्यासी
मुक्ति बलिया
(आलिबाटर अलेख धूलि)
राति वोर कटाओँ आमि

जीवनर शुकानवोरर माजत
तपत वोरर माजत ।
पात सरिपरे,—पात सरे····

चते गये गये
फुलिव मेवेलि लता ?

अमियचरण गोसाँई

चैत्र जाते जाते

जीवन के पत्र में
बहुत चैत्र आते हैं

तप्त श्वास से
मरण झरकर

चैत्र सर्वदा रहता है।
हमारी वसुमती एक आग है।
उससे छाई हुई

धुआँ उठ-उठकर
जला हुआ जंगल उड़ाकर
अंगार के श्वास लेकर

तूफ़ान आते हैं
सूखे खेत में हँसते हैं खिलखिलाकर
व्यस्त, उन्मत्त, माताल।

चैत्र की सन्ध्या में छाये, भस्म लगे हुए
हम संन्यासी हैं,
मुक्ति-पागल हैं
(राजपथ की अलेख धूल-मिट्टी)
हम रातें बिताते हैं

जीवन की नीरसता के बीच में
तप्तता के बीच
पत्ते झरते हैं—पत्ते झरकर गिरते हैं

चैत्र जाते-जाते
'गेबेली' लता प्रस्फुटित होगी।

अमियचरण गोहाँई

हेजार मृत्युर पिछल

फालर बुकुर परा
उटि भाहि आहि
मोर एइ जीवन पारत
रलहि थमकि
कत शत क्षणिकर निमिषर दल
जीवनर गीत मोर
बन्दी हल, स्तब्धतार
एन्धार गुहात ।
मनत परेहि येन
कोनोवा युगते
शेष हल पखीर मुखर
कल्लोलित पुवार संगीत ।
उरि गल गान गाइ गाइ
यत माने ।

उरणीया समयर पखी
आरु ये उभति नाहे
मोर कामनार कोमल फुलनि
मरहि शुकाइ गल
नाइ तात वसन्तर कोमल इंगित
एतिया बहुत बेलि
समयर असह्य जड़ता
आरुतो उभति नाहे
सिदिनार पुवा
सपोन बिभोर
यौवनर जोवारत
रङा नीला पाल तरा
रङीन मुहूर्त ।

सहस्र मृत्यु के बाद

काल के वक्ष से
भास-भास कर
मेरा जीवन इस पार में
ठहर गया
कितने सैकड़ों क्षणों निमिषों के दल
मेरे जीवन के गीत
बन्द हो गए स्तब्धता की
अँधेरी गुफा में।
याद आती है शायद,
कौन-से युग में
समाप्त हुआ पक्षी के मुँह का
कल्लोलित प्रभात-संगीत।
उड़ गई गान गाते-गाते।

उड़ती हुई समय की चिड़िया
और अब वह वापस नहीं आयगी
मेरी कामना का कोमल उद्यान
सूखकर क्षार हो गया
वहाँ नहीं है वसन्त का कोमल इंगित।
अब बहुत देर हो गई
समय की असहनीय जड़ता है
अब तो वापस नहीं आयगा
उस दिन का प्रभात
स्वप्नलीन
यौवन के ज्वार में
लाल-नील पाल फैला हुआ
रंगीन मुहूर्त।

मोर जीवनर उच्छल तरंग
আজি गति हीन स्थिर ।
क्षणिकर मुहूर्त बोर
रै गल चिर काललै
तथापि बुकुर माजत
थाकि थाकि उजालि उठिछे
एधारि आशार वाणी
कमार शालर नियारिर
ठक ठक ठक ।

नव सृष्टिर जन्माष्टमी
सृष्टि हब नतुन मुहूर्त
हयतोबा........
हेजार मृत्युर पिछतो येन
पार माडि आशार सपोने
उजलाब खन्तेक
मरिशाली........
जीवनर शुकान फुलनि ।

जीवकान्त बरुवा

मेरे जीवन की उच्छल तरंग
आज गतिहीन स्थिर है।
क्षणिक मुहूर्त
चिर दिन के लिए रह गया
तो भी हृदय के अन्तराल में
ठहरते-ठहरते उज्ज्वल हो उठती है
एक आशा की वाणी
लुहारखाने की निहाई
ठक ठकाहट

नव-सृष्टि की जन्माष्टमी।
सृष्टि होगी नये मुहूर्त की।
नहीं तो........
सहस्र मृत्यु के बाद
किनारे तोड़कर आशा का स्वप्न
क्षण के लिए प्रकाशित करेगा
श्मशान को........
जीवन के नीरस उद्यान को।

जीवकान्त बरुवा

कृपण

"दिस अर्थ: दैट इज साफिशिऐंट!"

तुमि मोक क्षमा करा हे पृथिवी
        मइ ये कृपण
तोमार सकलो दान ग्रहण करिओ
        तोमाक हैं सँचाकैये
        भाल पोआ नाइ
अकुण्ठ स्वीकृति मोर
        मइ अकृतज्ञ

देखिछो आँकिछो छबि आहारर चकुलोर
        तोमारेइ मेघरबुकुत

तोमार नदीये खोजे शुनाव जीवन गीति
        विधाने यि कव परा नाइ

अथच तोमार दान विपुल चेनेह
        करि याओ माथो अखीकार
''''मइतो नहओ कोनो एइ पृथिवीर
सउ नीला आकाशर
कोनो एक नेदेखा देशत
बाट चाइ आछे येन
मोर प्रिया, प्रिया मोर प्रिया
        मोर घर
मोर भाल पोवा

*   *   *

मता चेतनाइ मोक आनि दिले छया भया
        सेउजीया छबि तोमारेइ हे पृथिवी
सेउजीया पृथिवीर आदिम अरण्य
        मइ तार आदिम मानुह।
डाइनचरर सते मोर युद्ध अविराम

कृपण

"दिस अर्थ : दैट इज साफिशिएंट"

तुम मुझे क्षमा करो पृथ्वी
        मैं कृपण हूँ
तुम्हारे सब-कुछ दान ग्रहण करते हुए भी
        तुमको सचमुच मैं
प्यार नहीं कर सका,
यह मेरी अकुंठित स्वीकृति है
        मैं अकृतज्ञ हूँ।

तुम्हारे आषाढ़ के आँसुओं को देखा उससे
        तुम्हारे बादल के वक्ष में चित्र अंकित किया

तुम्हारी नदियाँ जीवन-गीति सुनाना चाहती हैं
        जो नियमों में नहीं बोल सकतीं

तो भी तुम्हारा दान-विपुल स्नेह
मैं सिर्फ अस्वीकार कर आया हूँ
मैं तो इस पृथ्वी का नहीं हूँ।
यह नीलाकाश के
किसी एक अदृश्य देश में
मानो इन्तज़ार कर रही है
मेरी प्रिया, मेरी ही प्रिया,
और मेरा घर, मेरा प्रेम।

*   *   *

आहूत चैतन्य ने मुझे ला दिया छाया-सा मायामय
हरियाला चित्र--वह तुम्हारा ही था हे पृथ्वी!
हरी पृथ्वी का आदिम अरण्य
        मैं उसका आदिम मानव।
डाइनोसौर के साथ मेरा युद्ध अविराम है,

(সভ্যতাৰ সৃষ্টিৰ সংগ্ৰাম)
সেউজীয়া দুবৰিত মেমথৰ তেজৰ তোপাল
সভ্যতাৰ আলিপনা।
মোৰ মত্ত হুহুকাৰ সভ্যতাৰ বিজয় উল্লাস
····বুৰংজীৰ স্বপ্ন ভাঙে,
বিক্ষিপ্ত প্ৰাণলৈ মোৰ কেনিবাদি মাহি আহে
এটি সুৰ, এটি বাণী, এটি কোমলতা

দুৰ্বল দুৰ্বল মই যে অক্ষম
ক্লান্ত মোৰ জীৱনৰ আদিম উগ্ৰতা
শক্তিহীন মোৰ ভালপোৱা।
হঠাতে বুজিলো প্ৰিয়া হে পৃথিৱী
মই যে কৃপণ
মই লোভী মহাজন
তোমাৰ ৰূপেৰে মই অৰূপৰ বিলাস কৰিছো
মনৰ মুকুতা মোৰ লুকুৱাই থৈ।
আকাশৰ অন্তহীন নীলাৰ বুকুত
পংগু কল্পনাৰ সৰগত
কোনো এটি নেদেখা তৰাত
পৃথিৱীৰ স্পৰ্শ যত নাই
হঠাতে বুজিলো আজি
অত দিনে যত পালো সেয়া মাথো
একাজলি সাগৰৰ ফেন
মোৰ ক্ষুদ্ৰ সীমাৰ সিপাৰে
তুমি আছা বিপুলা পৃথিৱী
অজ্ঞাত ৰহস্য
—মাটিৰ সাগৰ।
মিছাকৈয়ে কবি মই।
পৃথিৱীৰ প্ৰথম প্ৰেমিক?
মোৰ মায়া নাই মোহ নাই নাই

(सभ्यता की सृष्टि का संग्राम है)
हरे-भरे दूर्वादल में मैमथ की रक्त-बूँद ।
सभ्यता की अल्पना है ।
मेरा मत्त हुंकार सभ्यता का विजयोल्लास है
इतिहास का स्वप्न-भंग होता है,
कहीं से मेरे विक्षिप्त प्राणों में बहकर
आता है एक सुर, एक वाणी, एक कोमलता,

दुर्बल दुर्बल, मैं अक्षम हूँ,
क्लान्त है मेरी जीवन की आदिम उग्रता,
शक्तिहीन है मेरा प्रेम ।
हठात् समझ आया है प्रिया, हे पृथिवी ।
मैं कृपण हूँ
मैं लोभी महाजन हूँ ।
तुम्हारे रूप से मैं अरूप का विलास कर रहा हूँ
मेरे मन का मोती छिपाकर
आकाश की अन्तहीन नीलिमा के वक्ष में
पंगु-कल्पना के स्वर्ग में
किस एक अदृश्य तारे में,
जहाँ पृथिवी का स्पर्श नहीं हो ।
हठात् आज समझ लिया
आज तक जितनी मिलीं ये सिर्फ
समुद्र के फेन की एक अंजलि है
मेरी सीमा के उस पार
तुम ही विपुला पृथ्वी
अज्ञात रहस्य
——मिट्टी का समुद्र ।
क्या मैं मिथ्या कवि हूँ
पृथ्वी का प्रथम प्रेमिक ?
मुझे माया नहीं मोह नहीं

नाइ भाल पोवा
उरणीया पखिटिर जिरणिर नीड़ नाइ
    माथोन आकाश;
अन्तरर उपगुप्त मरि भूत हल
दरिद्र दुखीया बुलि, रोगी बुलि
    आहिलो ओंतरि
आकाशलै तृपातुर आठे दुटि तुलि
अमृत मथोते यदि बिरिङे गरल
    तार बाबे एको देखा नाइ
नोलाय चकुर पानी मोर पियाहत यदि
    चेनेहर सागर शुकाय।
प्रेमर जाह्नवी आहि धुवाले जीवन
    तथापिओ नुगुछिल क्लेद
अमृतर परशतो नहलो अमर, एइ गाथो
    एये मोर खेद।
परश मणिये मोक नोवारिले करिब सोनाली
    मोह कालिमारे मइ
मणिटिके करिलो मलिन।
मइ अन्ध मइ दस्यु मइ लोभी
    मइ ये कृपण।
दूरर बाँहीर सुर तथापिओ भाहि थाके?
भाहि आहे अन्तहीन सान्त्वनार सुर।

अथच सि येन विप
सि मोर आत्मार अपमान।
हे पृथिवी एटा भुल एदिन करिला
एदिन दिछिला आँकि मानुहर कपालत
    कवि बुलि प्रेमर तिलक
रूपर सतरे तार सरल विस्वास
टानि निब खुजिछिला

नहीं प्रेम, नहीं-नहीं
उड़ते हुए पक्षी का विश्राम नीड़ नहीं है
सिर्फ आकाश है,
अन्तर का उपगुप्त मरकर भूत हो गया
दरिद्र--दुखित रोगग्रस्त बोध से
मैं दूर हट आया
आकाश के लिए तृषातुर हाथ उठा-उठाकर
अगर अमृत-मन्थन से गरल निकालता
उसके लिए क्या किया जाय
अगर मेरी तृषा के लिए आँसू भी नहीं निकालेगी
स्नेह का समुद्र सूख गया तो।
प्रेम की जाह्नवी ने आकर जीवन धो दिया
तो भी क्लेद नहीं हटा
अमृत-स्पर्श से भी अगर नहीं हुआ
यही मेरा खेद है।
स्पर्श-मणि भी मुझको सुनहरा नहीं बना सकी
मेरी कालिमा से
सिर्फ मणि को कलंकित किया
मैं अन्ध हूँ, मैं दस्यु हूँ, मैं लोभी
मैं कृपण हूँ।
तो भी दूर से बाँसुरी के सुरों का भास होता रहता है?
भास होता है, अन्तहीन सान्त्वना के सुर हैं।

अथच मानो यह विष है
यह मेरी आत्मा का अपमान है।
हे पृथ्वी : एक भूल, पहले एक रोज़, की थी
एक रोज दिया था अंकित मानव-ललाट पर
कवि की हैसियत से प्रेम का तिलक
रूप से तुम उसका सरल विश्वास
अरूप की स्वप्न-पुरी की तरफ़

अरुपर सपोन पुरीलै
स्वर्गीय अमृत तुमि धरिछिला अधरत तुलि
दुखर निशात आजि हे पृथिवी
करा मोक नील कण्ठ
पान करो एइ विष।
माटि आरु आकाशर चिरन्तन सिन्धु मथनर
कव येन पारो हाय तोमार प्रणये मोक
अकनो दुर्बल करा नाइ
माथो मोक मोर सते करिछे चिनाकि
हे पृथिवी मोर प्रिया
    तुमि मोर प्रिया····
अथच पृथिवी
मइ ये कृपण।

नवकान्त बरुवा

खींचने के लिए कोशिश की थी
तुमने अधर में लगा दी थी स्वर्गीय अतृप्ति ।
आज दुःख की निशा में हे पृथ्वी
मुझे नीलकंठ बनाओ,
मैं इस विष का पान करूँ ।
जब से मिट्टी और आकाश का चिरन्तन सिन्धु-मन्थन
कह सकते हैं कि तुम्हारा प्रेम मुझे
तनिक भी दुर्बल नहीं करेगा ।
सिर्फ मुझे मुझसे परिचित करायेगा
हे पृथ्वी, मेरी प्रिया
तुम मेरी प्रिया……
अथच पृथ्वी
मैं कृपण हूँ ।

नवकान्त बरुवा

अहल्या पृथिवी

बन्ध्या पृथिवी आन्धार नामिछे
एतिया बहुत राति
युवति निशार सपोन भङ्गार
आजान किमान बाकी ?
अहल्या पृथिवी तुमि शिला हला
तोमार बुकुत
जन समुद्रर यौवनर जोवारर ढउ
उठे आरु मार याय अविराम बेगे
स्वप्नातुरा प्रतीक्षात कार पदक्षेप ?
तुमि जानो शुना नाइ
बुरंजीर विस्मृत कोणत
हर धनु भंग राम युगर फाचिल ।
तेन्ते पद ध्वनि ? सेइया पदध्वनि आमार,
आमार बुकुर उत्ताप लागि
प्राण पाय शत अहल्याय
उर्व्वशीये चकुमेलि चाय ।
वन्दिनी पृथिवी ! स्वप्न भंग एराति
तुमि शुना हाजार युगर साधु
तोमार बुकुते
युगे युगे सृष्टि हय शान्तिर पेगोदा ।
प्रशान्त अशान्त करि
उठे ढउ महासागरत
शान्तिर कपौवे कान्दे
तार डेउकात बारूदर गोन्ध ।
'री 'र दरे कतनार उन्मत्त चकुत
दुचासुन्न सागरर रङा
देखा जानो नाइ तुमि

अहल्या पृथिवी

वन्ध्या पृथिवी में अँधेरा उतर रहा है
अब बहुत रात है।
प्रभाती निशा के स्वप्न-भंग की
अजान के लिए कितनी देर है?
अहल्या पृथिवी तुम शिला बन गईं
तुम्हारे वक्ष में
जन-समुद्र के यौवन के ज्वार की लहरें
उठती हैं और लीन हो जाती हैं अविराम गति से
स्वप्नातुरा! प्रतीक्षा में पदक्षेप है?
तुमने क्या सुना नहीं कि
इतिहास के विस्मृत कोने में
हरधनु-भंग राम-युग का फ़ॉसिल है।
तो पद-ध्वनि किसकी? वह पद-ध्वनि हमारी है,
हमारे वक्ष के उत्ताप से
शप्त अहल्या को प्राण मिलता है
उर्वशी भी आँखें खोलकर निहारती है।
वन्दिनी पृथ्वी स्वप्न-भंग की एक रात में
तुम सुनती हो सहस्रयुग की कहानियाँ
तुम्हारे वक्ष में
युग-युग में सृष्टि होती है शान्ति के पेगोडा की।
प्रशान्त को अशान्त करके
महासागर में लहरें उठती हैं
शान्ति की कपोती रोती है
उसके पंखों में बारूद की बू है!
'री' की तरह कितनों की उन्मत्त आँखों में
दो चम्मंच्च समुद्र के लाल
क्या तुमने नहीं देखे

पृथिवी ढउवाइ निया
आटलाण्टिकर शतेक जोवार ?
तुमि नुबुजिवा तुमि पापाण
तोमार दुबुकुत
शतिकार पांडुलिपि स्मृतिर शेलाइ ।
अहल्या पृथिवी तुमि उठा
यौवनर दुवार दलित
बुरंजीये सॉवराइ
जनताइ माते रिङियाइ
आमार कारणे आजि आमार कारणे
पृथिवीर ओठर लालिमा ।

वीरेन बरकटकी

पृथ्वी को ढोकर ले जाने वाले
अटलांटिक के सैकड़ों ज्वार !
तुम समझोगी नहीं तुम पाषाण हो,
तुम्हारे दोनों वक्षों में
शतकों की पांडुलिपियाँ, स्मृति का शैवाल है।
अहल्या पृथिवि ! तुम उठो
यौवन के दरवाजे में
इतिहास याद दिला रहा है
जनता दीर्घ ध्वनि से पुकारती है—
हमारे लिए सिर्फ हमारे लिए
पृथिवी के होंठों की लालिमा है।

बीरेन बरकटकी

विष्णु राभा, एतिया किमान राति

१.

विष्णु राभा एतिया किमान राति
तुमि सारे आछा सारे आछो आमि
आरु सारे आछे भीति
बिहुर तलित चिपुं चाहीर करुण सुर
बड़ोगाभरुर नाचोनर ताल भागे
जनतार चकु चकुर पानीरे पूर ।
माज निशा कोने राज आलियेदि
आक्षेप करि याय
विष्णु राभा नाइ ।

निजान चेलत तुमि सारे आछा
सारे आछे भूत इटार देवाल
बन्दी तोमार कण्ठर सुर
नाचोनर लयलास
तुमि सारे आछा सारे आछे आरु
जाग्रत जनता, निद्रा विहीन राति ।

२.

विष्णु राभा एतिया किमान राति
बिहु पथारत रै आछो आमि, रै आछे
एया मनोरमा सखी ।
राजपथ जुरि नवउन्मेष ध्वनि,
हेजार जनर अविराम फुरालि
सकलोरे मुख प्रश्न-मुखर आजि इ बिहुर राति
कारागार दुवार केतिया मुकलि हब ?
बन्दी सृष्टिये केतियानो प्राण पाब ?
प्राणहीन आजि गीत मात सुर
प्राणहीन बिहुतालि ।

विष्णु राभा, अब कितनी रात है

१.

विष्णु राभा, अब कितनी रात है ?
तुम जाग रहे हो, हम भी जाग रहे हैं,
और जाग रही है प्रीति।
'बिहु' भूमि से 'सिफु' बाँसुरी का करुण सुर
बड़ो-षोड़शी के नृत्य का ताल भंग होता है
जनता की आँखें आँसुओं से पूर्ण हैं।
रात के दूसरे पहर को राजपथ से
आक्षेप कर कौन जाता है
विष्णु राभा नहीं है।

निर्जन 'सैल में' तुम जाग रहे हो
जग रही है क्रूर ईंट की दीवार,
बन्दी तुम्हारे कंठ के सुर
नृत्य की लय लास्य
तुम जाग रहे हो, और जाग रही है
जागृत जनता, निद्राविहीन रात.

२.

विष्णु राभा, अब कितनी रात है
'बिहु' भूमि में हम इंतज़ार कर रहे हैं,
और साथ में इंतज़ार कर रही है
यह मनोरमा सखी।
सारे राज-पथ में नव-उन्मेष-ध्वनि है
हज़ारों का अविराम कोलाहल है।
सबके मुँह प्रश्न मुखर हैं--आज बिहु की रात में
कारागार कब खुलेगा ?
बन्दी सृष्टि को कब प्राण मिलेगा ?
आज गीत-ध्वनि सुर प्राण-हीन है,
बिहुभूमि प्राण-हीन है।

बन्दी शिल्पीर वेदनात जागे,
रङा जीवनर उन्मादना,
सँचा आवेगर बोल
माज निशा कोने गरिशाली जुरि चिँयरि उठे
कल्लोल बन्धु, जीवनर कल्लोल ।

३.

डाच केपिटेल एधार पृष्ठा याकी
माजनिशा कोने त्रिनयने पढ़े
पोहर पोहर उदयाचलत रवि
नवजीवनर प्रवेश दुवारत इतिहास रल साक्षी
विष्णु राभा आकौं तुलिका लोवा
इटार देवालत आँकि योवा सेइ छवि
यि छवित उठे हेजार जनर उल्लास
अख्यात जनर आशा आवेगर बोल
इटार देवालत जिलिकि उठिछे
डाच केपिटेलर सपोन
शेह निशा कोने राज पथेदि रिङियाइ कै याय
अख्यात जनर बोल लागि हल
हेण्डुल हाइताल रङा

४.

तुमि सारे आछा आरु सारे आछे
तोमार तुलिका जीवनर चिर सखि !
तुमि यत आछा सरु कारागार
ठिय एकेखनि इटार देवाल
आमि यत आछो घर पोताशाल
शत नाग पाशे बन्धा ।
तोमार आमारे बिहु सन्मिलन हबले बेलि नाइ ।
हिया हालधिरे देहगन धुइ
आमि गोट खाम

बन्दी शिल्पी कि वेदना में जाग उठता है—
रँगो जीवन का उन्माद
रञ्ची आवेश की लहरें !
रात के दूसरे पहर में सारे श्मशान में कौन चिल्लाता है—
'कल्लोल बन्धु, जीवन का कल्लोल है!'

३.

डास कैपिटल के और ग्यारह पन्ने बाकी हैं
रात के दूसरे पहर को कौन त्रिनयन पढ़ता है
आलोक आलोक उदयाचल में रवि है
नव-जीवन के प्रवेश द्वार में इतिहास साक्ष्य देगा
विष्णु राभा फिर तूलिका लो,
ईंट की दीवार में खींच जाओ ऐसे चित्र
जिस चित्र में उतरेगा हजारों का उल्लास
अख्यात जनों के आशा-आवेग का रंग
ईंट की दीवार में जल रहा है।
डास कैपिटल का स्वप्न।
शेष रात को राजपथ में कौन बुलन्द आवाज से चिल्लाता है
अख्यात जन के रंग से
हिंगुल हरताल लाल हो गया।

४.

तुम जाग रहे हो और जाग रही है
तुम्हारी तूलिका जीवन की चिरसाथिन!
यहाँ तुम हो वह एक छोटा-सा कारागार है
सिर्फ एक ही ईंट की दीवार खड़ी है।
यहाँ हम हैं यह एक बड़ी बन्दीशाला है,
हम यहाँ सैकड़ों नागपाश से बन्दी हैं
तुम्हारे और हमारे बिहु त्यौहार में देर नहीं है।
हिया—हलदी से शरीर मन को धोकर
हमारा मिलाप होगा

नव जीवनर पुवा ।
विष्णुराभा सौंवा धुरणीया नेलि
रङ्गसुख फुटे सँचा आवेगत,
मुक्तिर कँपनि ।
शेह निशा सेया अख्यात जनर सगदल समागत
समस्वरे फुटे पोहर पोहर ।
जीवनर जयध्वनि ।

धीरेन्द्रकुमार भट्टाचार्य

नव-जीवन के प्रभात में
विष्णु राभा, यह देखो गोल सूरज का
लाल मुँह खिल उठा सच्चे आवेग में
मुक्ति का कंपन है।
शेष रात को यह अख्यात जन का जुलूस है
समस्वर से पुकारता है आलोक-आलोक
जीवन की जय-ध्वनि है।

वीरेन्द्रकुमार भट्टाचार्य

कवि लै चिठि

हेरा कवि,
मोर कवि कोन ? युगे युगे (हयतो कल्पे कल्पे)
पूत भूमि भेदि नाङलर सिरलुत
मइ सृष्टि करोँ सीता सोणर फछल !
मोर रामायण, मोर कीर्तियश रचे कोने ?
मोर वाल्मीकि वा व्यास कत, सिहँतक यदि
मये जन्म निदिलोँ, सिहँत जानो नरक अयोनि-सम्भव ?

कुरुकूल-ध्वंसर घेमालि खेला ओठर अक्षौहिणी
सिहँतर धनुर्गुण कत, सिहँतर बाहुबल कत
नाइ यदि मोर पथारत हालर फालत ?
किन्तु मोर नाम कत ? महाभारतर ऊनविंश पर्वत ?
शत शत युगर तोमार डाङरिर भारत
बूटी नाङलर कुटिल आकर्षणत
मोर पिठि कुँजा कुँजा नाङलर दरे कुँजा ।
आजि मोर नाङल पृथिवी सीतार कारणे तललै नेमेले हात

(तोमालोके कोवा याक खाद्य संकट)
देवताक बर खोजा देहि देहि कत देहि
अपाणि पाद देवताइ दिव किटो ?
तोमार देवता 'जवनो ग्रहीता' पलायन कामी,
तोमालोकक निदि पलाय ।

देवताक दिया अन्न, याचिछा आमिष
देवतार जिभाखनो नाइ सोवाद चुहिव
माथोँ देवतार बाबे भकतर गीत ?
मानवर बाबे नहय हाय मोर बाबे ?
मोर हके एफाकि कविताओ निलिखा ।
घूरि चोवा शतेक युगर दीघल हरि सेलि

कवि के लिए चिट्ठी

हे कवि
मेरा कवि कौन है ? युग-युग में (शायद कल्प-कल्प में)
पुत भूमि भेदकर लांगल की खंडित भूमि में
मैं सृष्टि करता हूँ सीता — सोने की फसल !
मेरा रामायण, मेरा कीर्तियश कौन रचेगा ?
मेरे वाल्मीकि या व्यास कहाँ अगर उनको
मैंने ही जन्म नहीं दिया तो, क्या वे नरक अयोनि-संभव हैं।

कुरुकुल-ध्वंस की क्रीड़ा अठारह अक्षौहिणी
उनके धनुर्गुण कहाँ, उनके बाहु-बल कहाँ
अगर मेरे खेत में नहीं, हल के फाल में नहीं, तो ?
परन्तु मेरा नाम कहाँ ? महाभारत के ऊनविंशपर्व में क्या ?
सैकड़ों युगों की तुम्हारी गठरी के भार में
छोटे हुए लांगल के कुटिल आकर्षण में
मेरी पीठ टेढ़ी हो गई लांगल की तरह टेढ़ी
आज मेरा लांगल पृथिवी की सीता के लिए नीचे तक हाथ नहीं बढ़ाता

(तुम जिसको खाद्य-संकट बोलते हो)
देवता से वर माँगते हो 'देहि देहि', कितने 'देहि'।
अपाणिपाद देवता, क्या देगा ?
तुम्हारा देवता 'जवनोग्रहीता' पलायन-कामी
तुम लोगों को कुछ नहीं देते भागता है।

देवता को अन्न देते हो, आमिष चढ़ाते हो न ?
देवता की जीभ भी नहीं है, कैसे चखेगा
देवता के लिए भगत के गीत ?
मानव के लिए नहीं हाय मेरे लिए नहीं ?
मेरे लिए एक पंक्ति कविता भी नहीं लिखते हो।
सैकड़ों युगों की लम्बी दृष्टि से देखो

मइ तोमार जीवनर जन्मदाता,
तोमार कवितार ह्रस्व दीर्घ छन्द,
तोमार आयुसर चाउल ।
मोर नाङल, जुवलि मै जोट जरी खावनी दालि गछा,
फांफलीया ' चिंफो '........
इयात छन्द नाइ ?
बगा जहा कला जहा फण जहा बेत गुटि हरपोवा नेफेरा,

नेउली बरा नलचुटि बुदुमाणि........
सिँहतर सोणाली कँपनित कल्पना नाजागे आशार कल्पना ?
तेने मोर जीवनत यदि कोनो सपोनर सहारि नाइ,
जीवनर सिपारत मरणर निःसार कोलात निश्चय आछे
मोर जीवनर फाँची काठर गीत
पार करा रघुनाथ संसार सागर ।

महेश्वर नेओग

मैं ही तुम्हारा जन्मदाता हूँ।
तुम्हारी कविता के ह्रस्व-दीर्घ छन्द,
तुम्हारे आयुस के अन्न।
मेरा लांगल, जुँआ, नक्खर, जूँआ, रस्सी, फाल,
'फांकलीया' चिंफो,
यहाँ छन्द नहीं है क्या?
'बगा जहा, कला जहा, काण जहा, बेतगुटि हरापोवा नेकेरा

नेउली बरा, नलचुटि, बुदुमणि....
उनके सुनहरे कंपन में कल्पना नहीं जगाता
आशा की कल्पना?
तब अगर मेरे जीवन में स्वप्न की अफवाह नहीं
जीवन के उस पार मरण की निःसार गोदाम जरूर है,
मेरे जीवन के फाँसी काठ के गीत
'पार करो रघुनाथ संसार सागर।'

महेश्वर नेओग

केरेनी श्येलीर चिठि

सि बिचरा चिठि खन नाहिल । आजिओ नाहिल ।
बाहिरत पातल बरषुण........
शनि बारर एइ मरम लगा बियालिटो
किमान धुनीया हलहेतेन एखन चिठिरे ।
नीला खामर चिठिखन, कँपा हातेरे खुलिछिल
बुकुर धप धपनिटो किमान आशार चिठि एइखन
बरुवा ! आपोनार टका कुरिटा यदि एइ माहते....
इमान आमनि लगा तिता लागि याय आजिर आबेलिटो ।
कालिलै ये दोओबार । पियनटो यदि आजिओ आहिल हेतेन ।
पावार हाउचटोर घर्घरणि टेलिफोनर रिं रिं बिदेशी भापार कथाखिनि
ष्टेचन मास्टरर बिकट चिञर,—"फौर डाउन नाइन आप"
तार काणत बजा बिच इस्तियार गान ।

फोनर आनटो मूरर परा यदि पाटल शब्द केइटा मानके
ओपङि जाहिल हेतेन, आरु दुटामान टुकरा टुकर हाँहिर शेप खलकनि
केरेनीर चकुतो इमान सपोन ? हांहि नुठे ?
योवा कालिओ नाहिल । मुकुलर चिठि सेइखन ।
सि चिठि भराबलैके पाहरिले । सुदा खामटो आहिल
ओपरत तार रावीन्द्रिक हातर लिखा एटा आखरर गात
आनटो आखर भेजा दि थका ।

मन भाल नलगा उदासी मुहूर्तर चिठि आछिल हयतो ।
तार सलनि यदि सि आशा करा ठाइर चिठि खनके आहिलहेतेन ।
शुइ शुइ भागर लागि चिठि लिखिबर मन योवाके
योवा रातिटो यदि आरु अकन मान दीघल हलहेतेन ।
एइ डिचेम्बरर राति चोर इमान चुटि । चेया लागि याय ।
समय नाइ हयतो तेओर । समय नाइ नगा कागज एखिलाते यदि
तेओंर पातर ओठर अकन मानि चुमार चेका एटा के....

मुंशी शैलें की चिट्ठी

उसकी वांछित चिट्ठी नहीं आई। आज भी नहीं।
बाहर रिमझिम वर्षा····
शनीचर की प्यारी शाम
एक चिट्ठी होती तो कितना सुंदर होता।
नीले लिफाफे की एक चिट्ठी कंपित हाथों से खुली थी
दिल में धड़कन, कितनी आशा की चिट्ठी यह—
'बरुवा, आप अगर आपके बीस रुपये इस महीने में ही····'
जी इतना ऊब जाता है, आज की शाम इतना कड़ुवी है।
कल तो इतवार, तो भी काश पोस्टमैन आता।
पावर-हाउस की घरघराहट, टेलीफोन की रिङ्‌रिङ्‌, परदेशी बोली की बातें
स्टेशन मास्टर की विकट चिल्लाहट, 'फोर—डाऊन, नाइन-अप',
उसके कानों में मिस इस्तिया के गीतों की गुंजन

अगर फोन की दूसरी तरफ से दो-एक शब्दों का भी
भास कर आती, और हँसी शेष लहरों के दो-एक टुकड़े।
मुंशी की आँखों में भी इतना स्वप्न? हँसी नहीं आती क्या?
कल भी नहीं आई। यह मुकुल की चिट्ठी।
वह चिट्ठी अन्दर रखने के लिए भूल गए। खाली लिफाफा आया
उसके ऊपर उसके रावीन्द्रिक हाथ से लिखी हुई
एक हरफ़ के ऊपर दूसरे हरफ़ की भीड़।

शायद यह चिट्ठी अतृप्त मन की, उदास मुहूर्त की है।
उसके बदले में अगर उसके वांछित स्थानों से चिट्ठी आती तो।
सोते-सोते थक जाकर चिट्ठी लिखने के अनुकूल
मन को तैयार करने के लिए अगर कल की रात और कुछ लम्बी होती तो।
इस दिसम्बर की रातें इतनी छोटी हैं, बुरा लगता है।
शायद उसको वक्त नहीं मिलता। वक्त नहीं। एक टुकड़ा सफेद कागज में
अगर उसके हल्के होंठ का थोड़ा-सा चुम्बन का दाग भी आता····

तार रेशयन कार्ड पे स्कलर जीवनटो एटा ट्रेजेडीर बोवती सुति
सोणर सपोन गुरि है याय, रेलर इञ्जिनर भेपात गहन
फाइलर हेचाँत (बालिर लगत गिहालि है थका सोवण शिरिर
सोणर गुरि रदर पोहरत सिजिलिके बालि चन्दा उजले)
गल्पत पोवा बलेइलभर दरे निजर नामत निजेह चिठि दिब लेकि ?
बेया नहब कि जानि । तार शुइ थका चकुर पाहित अलस सपोन जागे ।

सपोन देखि तुमि शुइ थाका, कैरेनी कवि ।
एटा शतिकार पाचत,
तोमार कबरर ओपरत पियने चिठि थै याब । चिठि आहिबइ
मरमर श्येली ! पारर उपकूल छथामथा जानो आमार ?

महेन्द्र बरा

उसका राशन-कार्ड, पे स्केलकी जिन्दगी, एक ट्रैजडी
सुनहरे स्वप्न चूर्ण हो जाते हैं, रेल के इंजन के घर्षण से नहीं,
फाइलों के पेषण से (बालू के साथ मिली हुई सोवनसिरी की
स्वर्ण-कणा धूप में नहीं जलती, जलता है अभ्रक) ?
कहानी के बैलेश्लव की तरह क्या आप ही अपने नाम पर चिट्ठी दें ?
शायद बुरा नहीं होगा। उसकी सोई हुई आँखों के
किनारे में अलस-स्वप्न जगता है।

स्वप्न देख-देखकर तुम सोते रहो मुंशी कवि।
एक सदी के बाद
तुम्हारी कब्र के ऊपर पोस्टमैन चिट्ठी रख जायगा। चिट्ठी जरूर आयगी,
प्यारे शैले ! उपकूल की छाया-माया चित्र क्या हमारा है?

महेन्द्र बरा

अनुर्व्वरा

यात्रामय शिलनिर
संघातत ओपजा फिरिङतित एदिन हल
ज़्यामितिक बिन्दुत जीवनर जीवन्त सूचना ।
तुमि सार पाला ।
अवचेतनार नातिशीतोष्ण ऐलेकात
पाहाड़ी सापर किल बिल नृत्य देखि
तुमि भोल गला ।
रेखामय पृथिवीर तिर्यक चकुत
बिजुलिर चोका रेखा चाइ बुरंजीर पातनि मेलिला
जीयाइ थकार आरु
जीयाइ रखार....
अनुर्व्वरा जीवनर गाँथनिर फाँके फाँके
हठाते जिलिकि उठा
सेया जानो प्राण ? जेटीर नेजत नचा प्राणर निखुत अभिनय ।
हेरा सोन पाही तुमि
जीवनर चराइ खानात थला
सुरा अछोराही । सरीसृप कामनार म्लान अग्रदूत । विवर्ण वताह ।
दुरन्त दुपर जुरि समयर दुचकुत अश्रिकणा यथ
जाके जाके । जट लागे पुतलार जरी,
वन्ध्या इ सन्ध्यार नावे मिछाइ तोमार आयोजन
अपेक्षार अवसादें भङा केँचा घुमाटिर परा
सार पाइ सुनिला माथोन, शुचि योवा जाहाजर उकि ।
देखिला, बुजिला जानो, कासनार देवालत बन्दी तुमि
माछ वाकलिर फूल ? बन्ध दुवार, लुप्त अभिज्ञान,
दिनान्तर एबुकुवा पलसत ।

हरि बरकाकति

अनुर्व्वरा

यान्त्रमय शिलाभूमि के
संधान में जात स्फुलिंग से एक रोज हुई
ज्यामितिक बिन्दु में जीवन की जीवन्त सूचना ।
तुम जाग उठीं ।
अवचेतन के नातिशीतोष्ण इलाके में
पहाड़ी साँप का किलबिल नृत्य देखकर
तुम तल्लीन हो गईं ।
रेखामय पृथिवी की तिर्यक् आँखों में
बिजली की तेज रेखा देखकर इतिहास की सूचना की
जीते रहने की और
जीते रखने की·······
अनुर्व्वर जीवन-ग्रन्थि की फाँक-फाँक में
हठात् ज्वलित हुआ
वह क्या प्राण है ? छिपकली की पूँछ में नृत्य-रत प्राण का निष्कलुष अभिनय।
सोनपाही, तुमने
जीवन के सरायखाने में
सुरा की सुराही रखी । सरीसृप कामना के म्लान अग्रदूत । विवर्ण वायु ।
दुरन्त दोपहर सारा क्षण समय की दोनों आँखों में अग्नि-कण बह रहा है
बार-बार । उलझने लग गया खिलौने की रस्सी में
यह वन्ध्या सन्ध्या के लिए तुम्हारा आयोजन मिथ्या है ।
अपेक्षा के अवसाद से टूटी अर्धनिद्रा से
जागकर सिर्फ सुनी चले हुए जहाज की सीटी ।
क्या देखा समझा कि तुम सिर्फ कामना की दीवार में बन्दी
मछली के छिलके का फूल हैं । दरवाजा बन्द है, अभिज्ञान लुप्त है,
दिनान्त की छाती तक आये हुए कीचड़ में ।

हरि बरकाकति

जारर दिनर सपोन

हाड़ चँचा करा कुवलि आरु
काल शगुणर पाखिर तलिर उम, इयारेइ आमार
एश एबुरि स्वप्नर कामिहाड़ रचना हय । आजिर गळ्हा
दिनत एटा सपोनर किमान दाम ?
फेरार कवि, आमार स्मृतिर गुहार गकरा जालत
किसान स्वप्न लीन है आछे । जानाने तुमि ?
वीर गदाधर जारर दिनत परेने मनत नागिनीर प्रेम ?
(निपोटल बुकु, लाटुमणि ओठ,
दुओ पारि दाँत डालिम गुटि)

सोनपाहि तुमि आहिछा । आहा । तोमार हातर फाचित
हेजार युगर शान । (उजाये आहिछे पारा गाओ खनि,
उजाये आहिछे टिङ·······)
आमार चकुत आशार नेजाल तरा, एइ ज्वले एइ मरे ।

वालि माहीर मयुर चालित, रुद्ध पराणत सात सागरर बान
नामे । मरिकिलङत बरावर:धळ ।
पारत बिह मेटेकार
पोहार वहिछे । जनतार हेंचाठेला ।
तोमार लवनि दुबाहुत एकोटा मेट गरा डाङरीर बल ।
आमार बाहुत हेजार युगर शौर्य वीर्य
हातत तोमार कांचिर नाच ।
चकुरे नमना सोणाली धान ।
कपालत केँचा मुकुतार टोपा ।
चेनाइ ऐ, मरमा मारो गै आहा.····
जुहालर जुइ पोहारत तुमि । मोर पराणर निपुट कोनत
तुह जुइर जुइ ज्वले.···· उस तोमार बरफ सेगेफा ओठ ।

जाड़े के दिनों का स्वप्न

हड्डी ठिठुराती हुई कुहेलिका और
काल-शकुनों के पंखों के नीचे का उत्ताप इसीसे हमारे
सैकड़ों स्वप्न के पंजर बनाये जाते हैं। आज के मँहगे
दिनों में एक स्वप्न की कीमत कितनी ?
फरार कवि, हमारी स्मृति-गुफा की मकड़ी की जाली में
कितने स्वप्न लीन हुए हैं। तुम जानते हो क्या ?
वीर गदाधर जाड़े के दिनों में नागिनी का प्रेम याद करते हो क्या ?
(समुन्नत वक्ष, लालमणि-सा होंठ,
अनार-दाने की तरह दाँतों की पंक्ति)

सोनपाहि, तुम आई हो। आओ ! तुम्हारी हाथ की दराँती में
सहस्र युगों की शान। (आगे बढ़ी है नौका और उसका
अगला भाग····)
हमारी आँखों में आशा के पुच्छल तारे, अब जलते हैं, अब मिट्टी हैं।

खंजन पक्षी के मयूर-नृत्य में स्तब्ध प्राण में सप्त-सिन्धु की
बाढ़ आती है। मरिकलंग में वर्षा की लहरें।
किनारे में जल की वनस्पतियाँ
दूकान लगाए बैठी है। जनता की उथल-पुथल।
तुम्हारे लावण्यमय दोनों बाहुओं में एक-एक वजनदार धानों की गठरी।
हमारे बाहु में सहस्र-युगों का शौर्य-वीर्य।
हाथों में तुम्हारी दराँती नाचती है।
आँखों से नहीं निहारती है सुनहरी धान।
ललाट में कच्छा, मोती की बूँद।
प्यारी चलो, धान काटने जाते हैं····
चूल्हे की आग के प्रकाश में तुम। मेरे प्राण के अप्रकट कोने में
तृषानल जल रहा है····आह तुम्हारे बर्फीले होंठ।

महा पृथिवीत तेजर आरति । एटा दुनी आहे । दुटा दुनी आहे
एटा धान निये दुटा धान निये···· धानर दमत तेजपियार
रणचालि । तेज पियार बेश नाशलै किमान दिन
बाकी? आरु किमान दिन?····

शीतर अन्तत आकौ आहिब निलाजी फागुन । बहागी बिहु ।
राङलि दिन । कपौ फुल । कुलि केतेकीर भानर शराइ ।
आकौ आहिब दिखौत बान । कमरेड, शंका किहर?
प्रथम निशार अपरिचिता पत्नीर दरे-थरे थरे पृथिवी कँपिछे ।
उस किमान जार । सोन पाही हेरा आमार स्वप्न
आमिये रचिम । बोका आरु पानी । सोणाली धान ।
आमार पथार । आमार माटि । गर्भितीत नतुन दिनर जनमक्लेश ।

हेम बरुवा

महा पृथ्वी में तेज की आरति। एक चिड़िया आती है। दो चिड़िया आती हैं,
एक धान ले जाती है, दो धान ले जाती है····धान के गोदाम में गिरगिट का रण-नृत्य।
गिरगिट के वेश के नाश के लिए
और कितने दिन हैं? और कितने दिन हैं?

शीत के अन्त में फिर आयेगा निर्लज्ज फाल्गुन। बहागी बिहु।
रँगीले दिन। फूलों के बगीचे। कोयल और काकातुआ गान की भेंट।
फिर आयेगी दिखौ में बाढ़। साथी, डर किसके लिए?
पहली रात की अपरिचिता पत्नी की तरह पृथ्वी काँप रही है।
उफ़ और कितना जाड़ा है। सोन पाही, हमारा स्वप्न
हम ही खुद बनायेंगे। कीचड़ और पानी। सुनहरे धान।
हमारे खेत। हमारी ज़मीन। गर्भस्थली से नव दिवस का जन्म-क्लेश

हेम बरुआ

उ ड़ि या

चयन : मायाधर मानसिंह
कालिन्दीचरण पाणिग्राही
अनुवाद : उपेन्द्रकुमार दास

कवि-नाम	कविता
अनन्त पट्टनायक	*आया हूँ, मैं आया हूँ*
कालिन्दीचरण पाणिग्राही	*ऐक्य आह्वान*
कुंजबिहारी दास	*तूफान की सहस्र पद-ध्वनि*
ग्यानींद्र वर्मा	*मूर्ति और मंदिर*
चिंतामणि बेहेरा	*टिड्डी दल*
दुर्गाचरण परिडा	*नयी*
नित्यानन्द महापात्र	*भूखा है भगवान्*
मायाधर मानसिंह	*जीवहंस*
विनोदचंद्र नायक	*घास-पथ*
सबुज	*आवारा कुतिया*

आसिचि मुं आसिचि

आसिचि मुं आसिचि ।
दुःखर दुर्भेद्य प्राचीर भाँगि
मुं आसिचि,
रक्तर दुस्तर पारावार लंघि
मुं आसिचि,
कृमि कीटर उल्लंग उल्लास चिरि
मुं आसिचि,
ललाटरे भविष्यर उत्कीर्ण लिपि घेनि
स्फुलिंगर चलोर्मि
मुं आसिचि ।

प्राणर अधीप मुं सूर्य
स्नेहर प्रतिमू मुं चन्द्र
पर्वतर स्रोत दि भाग करि मुं आसिचि ।
मुं ध्वंस करिबि
वत्सुहरा नारीर दग्ध चक्षुर ज्वाला,
मुं वर्षिबि
सहस्र धार अश्रुर एक बिन्दु
लौह गर्भा धरित्रीर नाभिपद्म ओटारि
मुं आसिचि,

तार आत्मा शोषण करि मुं आणिचि स्तन्य
नारी ! तुमर स्तनाग्र चूडारे टलमल करु ।
क्षीराब्धिर बीचि ।
शिशु ! तुमर स्फूर्ति, मुं आसिचि ।
प्रीतिर कन्दुक मुं चन्द्र
ज्योतिर मन्दार मुं सूर्य ।
आसिचि मुं आसिचि ।

आया हूँ, मैं आया हूँ

आया हूँ, मैं आया हूँ
दुःख का दुर्भेद्य प्राचीर तोड़कर
मैं आया हूँ।
रक्त का दुस्तर पारावार लाँघकर
मैं आया हूँ।
कृमि-कीटक का नग्न उल्लास चीरकर
मैं आया हूँ।
ललाट में भविष्य का उत्कीर्ण टीका लगाकर
स्फुलिंग की प्रवहमान ऊर्मि के समान
मैं आया हूँ।

प्राण का अधिपति मैं सूर्य
स्नेह का प्रतिनिधि मैं चन्द्रमा
पर्वत-स्रोत के दो भाग करते हुए आया हूँ।
मैं ध्वंस करूँगा
वत्सहरा नारी की जलती हुई आँख की ज्वाला
मैं बरसाऊँगा
सहस्र-धार अश्रु की एक बूँद
लौहगर्भा धरती के नाभि-पद्म को खींचकर
मैं आया हूँ।

उसकी आत्मा को चूसकर मैं लाया हूँ स्तन्य
हे नारी! तुम्हारे स्तनाग्र में लहराती रहे
क्षीरसागर की तरंग
हे शिशु! मैं हूँ तुम्हारी स्फूर्ति, मैं आया हूँ
प्रीति का खिलौना, मैं चन्द्रमा,
ज्योति का मंदार-पुष्प, मैं सूर्य
आया हूँ मैं आया हूँ।

कबन्धर नृत्य रचना कर किए ? चंदकर !
विकृतिर विग्रह रचना कर किए ? तफात सुख !
बन्धुकर वर्त्सरोध करि मुं आसिछि ।
बेकार मृत्युपर चित्कार आजि पोछ
क्लान्ति रात्रिर प्रलाप आजि पोछ,
पशुत्वर शिनरमुखी वंध्या प्रीतिर भ्रूण
सुं असिछि ।

पिंगल आकाशरे तुमर छिन्न नथिर पत्र
एइ उडे ।
शरतर शुभ्र बादल
आजि स्तब्ध ।
आपणाकु आपे उजाड़ करि
जलधिर मन्द्र निनाद गालि
मलयाअ, मोते मलयाअ
सुं असिछि ।

शस्यर शाश्वती वाणी, सुं आशा ।
चिमनिर आलिम्फन लेखि
कार्पासर चूर्ण कथारे
काश किए ? काश !
तुमर विष्ट पेशीरे वज्रर विलाप
बाजु !

अकाल पक्व केश राशिरे चीनांशुकर स्पर्श लागु !
तुमर वक्षरे मुं अकाल वसन्तर तितिक्षा
सुं पुरु ।
कपालर घर्म तुमर ओष्ठपुटरे नई
मुं आसिछि, मुं आसिछि ।

कबंधों के नृत्य कौन रचता है ? इन्हें बंद करो
विकृति के विग्रह कौन बनाता है ? दूर हटो
बन्दूक का रास्ता रोककर मैं आया हूँ।
ओ बेकार लोगो ! सबेरे के चीत्कार को आज पोंछ डालो
अरे ओ क्लर्क ! रात का प्रलाप आज पोंछ डालो
पशुत्व की व्यवधान-मुखी बाँझ नारी की प्रीति का भ्रूण
मैं आया हूँ।

पीले आकाश में तुम्हारे नत्थी किये फटे कागज
वे उड़ते हैं,
शरत् का शुभ्र बादल
आज चुप है,
अपने आपको उजाड़कर
जलधि के मंद्र निनाद के समान
प्यार करो, मुझे प्यार करो,
मैं आया हूँ।

मैं फसलों की शाश्वत वाणी हूँ, मैं आदेश हूँ।
चिमनी की कालिख से लिखकर
कपास की छिन्न-भिन्न कंथा में
कौन खाँस रहा है ? खाँसो,
तुम्हारे पिसे हुए मांस-पिंडों में वज्र का विलाप
बजने दो।
बुढ़ापे से पहले ही सफेद हो गए बालों में
रेशमी वस्त्र का स्पर्श लगने दो।
युग के वक्ष पर मैं अकाल वसंत की तितिक्षा हूँ
मैं पुरु हूँ।

मैं तुम्हारे कपाल का पसीना हूँ, तुम्हारे होठों पर चूकर
मैं आया हूँ, मैं आया हूँ।

यन्त्र मुखर दिबाकु निर्निमेष नीरबतारे
दोर्ण करि
आसिचि, मुं आसिचि !

आणविक खड्ग धर किए ? दूर हुअ
वैद्युतिक वात्या आण किए ? दूर हुअ ।
आसिचि मुं आसिचि,

याचञार अर्जि स्तूप ठेलि मुं आसिचि
स्थविरतार मर्म भेद करि
मुं आसिचि तारुण्यर अभिमान ।

लंगळर पथ रोधकर किए ? भरतर ।
शष्यर स्मित रोधकर किए ? पंगपाळ ।
आत्मार कंठ रोधकर किए ? आततायी ।
अनिरुद्ध स्मित मोर छुटे
दिक् दिगन्तर छुटे,

प्राणर प्रणवरे दूर हुअ
कातराशुर प्रेत,
आसिचि मुं आसिचि
हुत कर्पर ज्वलदर्चिवर्ति।

अनंत पट्टनायक

यन्त्र-मुखर दिन की निर्निमेष नीरवता में
खंड-खंड करके
मैं आया हूँ, मैं आया हूँ।

अणु-खड्ग कौन पकड़ता है ? दूर हटो
वैद्युतिक पवन कौन लाता है ? दूर हटो
आया हूँ, मैं आया हूँ।

विनीत अनुरोधों के अर्जी—स्तूप को हटाकर मैं आया हूँ
स्थविरता का मर्म भेद करके
मैं आया हूँ।

मैं तारुण्य का अभिमान हूँ।
हल का रास्ता कौन रोकता है ? पत्थर ?
फसल का विकास कौन रोकता है ? टिड्डी-दल ?
आत्मा का कंठ-स्वर कौन रोकता है ? आततायी ?
मेरा बाधा-हीन विकास आगे बढ़ता है
दिक्-दिगन्त में आगे बढ़ता है

प्राण की भावनाओं से दूर हो जाओ
कातर अश्रु के प्रेत।
आया हूँ, मैं आया हूँ।
हृत्कंपन की जलती हुई अग्नि-शिखा की बाती।

अनंत पट्टनायक

ऐक्य आह्वान

कुलिश विद्युत झड दुर्दिन ए धारा श्रावणर
लोडुथिला आर्त कंठे भेटिबाकु विश्व चराचर
तस वक्षे लोडुथिला तृषिता धरत्री पुणि थरे
सुशीतल प्राण स्रोत मर्त्यर ए मृत्तिका उपरे।
करिबाकु आवाहन आलोकर नूतन प्रभात
लोडुथिला अन्धकारे अनाहत अशुर आघात।
पल्लवित श्यामक्षेत्रे जनमाइ शष्य यव धान्य
देबाकु क्षुधित मुखे बाढ़ि पुणि निबार नवान्न,
घुंचाइबा पाइं एक मन्वन्तर अभावर व्यथा,
आकाश धरणी मध्ये आसिआछि अखंड एकता।
दूरतम जडमध्ये दृढ़तर प्रेमर स्पन्दन
अच्छेद्य ये चिरकाल नियमित ग्रन्थिर बंधन
बिभेद विरोध परे बाजे ऐक्य छन्दर झंकार,
सहज आदिम सत्य सरल उपमा अलंकार।

मेघच्छले दूरतम उच्चतम महाव्योम यथा
नत हुए धरापृष्ठे कहिबाकु स्वाधीन वारता,
दूरे बहु दूरे तथा स्वाधीनता एहि भारतर
शून्य ठारु महाशून्य वाष्पठारु थिला वाष्पतर
शेषरे आसिछि नइं पुरातन देश परे ताहा
चमकाइ नववज्र विद्युत् मन्द्रित घन छाया

ऐक्य आह्वान

यह श्रावण की धार,
वज्र, विद्युत्, झड़ी और दुर्दिन के सहित
आर्तस्वर से संपूर्ण जग से मिलने को चाहती थी,
प्यास से जलती, धधकती भूमि
चाहती थी बदन पर अपने, सुशीतल प्राण की रस-धार।
आलोक का नवीन प्रभात आह्वान करने को
अनाहत अश्रु का आघात
अंधेरे में घुमड़ता था।
पल्लवित श्याम-क्षेत्र में
अंकुरित कर हरा-भरा जब धान
भूखों को खिलाने के लिए नीवार
एक मन्वन्तर अभाव की व्यथा दूर करने के लिए
भूमि और नभ-बीच, अखंड एकता आई है।
दूरतम जड़ता में दृढ़तर प्रेम का स्पन्दन
जो चिरकाल से अच्छेद्य, नियम के ग्रन्थि का बंधन,
वही सृष्टि के उस प्रथम सत्य, सरल उपमा-अलंकार

ऐक्य, छन्द,
भेद-बाधाओं के ऊपर गुंजरित हो रहा है।
मेघ के मिस जिस तरह आकाश
दूर से—अति दूर से
उतर आता है धरा पर,
बात कहने के लिए स्वाधीनता की
वैसे ही,
कभी जो शून्य थी, बाष्प थी
वही भारतवर्ष की स्वाधीनता
अंत में उतर आई है पुरातन देश पर
नव-वज्र विद्युत्-मंद्रित घनछाया चमकाकर।

झराइ रुधिर धारा विचार वा अविचार बले
श्रावणर वारि सम अंकुराइ प्राण शष्य तले
क्षणे थाए अपसारि संघर्षर मरण आह्वान
चाहि आणे पुनर्जन्म शान्तिर मेदुर ऐक्य तान
मिलनर छंद नाचे जड़प्रकृतिर अंगे अंगे
स्वाभाविक नुहे किसे मनुष्य ओ मनुष्यर संगे ?

कीट पतंगर राज्ये ये मिलन संभवइ नित्य
बुझिबाकु असमर्थ हेब कि ता मानवर चित्त ।
श्रावणार वाणी घेनि स्वाधीनता आसिचि दुआरे,
एकतार मिलनर वाणी से ये बन्दइं ताहारे ।
उठिछि मुक्तिर सूर्य धुँचिथाए दुःख अमावास्या
एइ स्वाधीनता पछे अछि येते त्याग ओ तपस्या ।

अछि ये रक्तर वन्या जलिछि यन्त्रणा दावानल
राखिवाकु धरिताहा करिवाकु अधिक उज्ज्वल
देशे देशे प्रकटिछि रूप तार विचित्र मंगेरे
आसिछि भारते शेषे येते गिरि संकट लंघि से !

अग्रपंथी उग्रपंथी नाम धरी प्राचीन नवीन,
पुराण ए भूभारथे सर्वे आस आजि शुभ दिन,
आस धनी, सर्वहरा, मज़दूर श्रमिक बेकार,
ढुल होइ मूल्य तार आउ थरे कर हे स्वीकार,

विचार या अविचार से धारा बहाकर रक्त की।
श्रावण के जल समान,
अंकुरित कर जीवनमय,
क्षण में ही हट जाता है संघर्ष का मरण-आह्वान
और बहा लाता है पुनर्जन्म शांति की स्निग्ध ऐक्य तान,
जड़ प्रकृति के कण-कण में जो मिलन-गीत समाविष्ट
क्या वह स्वाभाविक नहीं
मनुष्य का मनुष्यों के साथ ?
कीट-पतंगों के राज्य में जो मिलन सम्भव होता है नित्य
क्या उसे समझने में मानवों की शक्ति है असमर्थ ?

श्रावण की वाणी सहित
स्वाधीनता आई है द्वार पर
एकता की मिलन की वाणी वह, उसे नमन करता हूँ।
जो त्याग और तपस्या है इस स्वाधीनता के साथ
है जो रक्त की बाढ़, जो यंत्रणा का दावानल, जला है
उसे संचित कर रखने के लिए,
उसे अधिक उज्ज्वल करने के लिए
उठा है मुक्ति का सूर्य
हटता है दुःख का अंधकार।
भिन्न-भिन्न देश में प्रकट हुआ है उसका रूप भिन्न-भिन्न मुद्रा में,
अंत में वह
आई है भारत में,
गहन गिरि-सर-सरिता लाँघकर
आई है भारत में।
आओ हे देशवासी
अग्रपन्थी, उग्रपंथी, प्राचीन, नवीन,
आओ सब, आज शुभ दिन है,
आओ धनी, मानी, सर्वहारा मजदूर, श्रमिक, बेकार
साथ ही मिलकर फिर एक बार उसका मूल्य स्वीकार करो।

धैर्यशील शिल्पी आस गढ़िबाकु संख्यातीत बाकि
राजनीति दलादलि से कवल शब्दधन्दा फाँकि

ऐक्य, स्वाधीनता, शान्ति एक अर्थ भिन्न खालि शब्द,
बंचाइबा पाइं लोड़ा धैर्य क्षमा याहा दुःख लब्ध,
क्षणे थिब अपसरि संघर्षर मरण आह्वान,
कालर अन्तिम इतिहासे राजे शान्ति ऐक्य तान ।

कालिन्दीचरण पाणिग्राही

अभी जो अनन्त-पथ बीहड़ है, जो बहुत-सा बाकी रहा है
उसे गढ़ने को फिर से
धैर्यशील शिल्पी आओ,
राजनीति-दलबन्दी है सिर्फ धोखा और निःसार
एकता, स्वाधीनता और शांति का अर्थ एक है,
भिन्न-भिन्न शब्द, एक अर्थ के ही द्योतक हैं,
दूसरी रक्षा के लिए
धैर्य, क्षमा और कठिनाई की ज़रूरत है
पल में हट जायगा संघर्ष का मरण-आह्वान
काल के अंतिम इतिहास में
विराजा करती है शांति ऐक्य तान।

कालिंदीचरण पाणिग्राही

झडर सहस्र पद-ध्वनि

माटिरे फलाइ सुना
निजे सिए होइ गला माटि
नडार कुडिआ तले छाइ सारा रहि,
तुम पाइं देइथिला गढि इटा भाटि,
बुकुर रक्त ढालि तुमरि उद्याने
फुटाइला गोलापर कलि
देह ता अंगार सम
जालि जालि ग्रीषम हुताशे
तुमकु करिला शुद्ध सुना
झडिगला निजे होइ मलि ।

निजे होइ दिगम्बर साजिला तुमर राजवेश
तुमकु निश्चिन्त करि
चिन्ता रे से होइला निःशेष
निजे हेला अथा छाया
कला कला सुख शान्ति ढालि
तुम घरे साजिला पूर्णिमा

जीवनर येते समारोह
सबु सिए देला तुम जिमा ।
तुमरि सजधे भरि कुसुमसुवास,
निजे सिए होइला दुर्गंध
निजे होई छन्दहीन
जीवने भरिला तुम छन्द ।
लहुरु लहुणी काढी देला तुम हाते
झाडि झाडि आपणार देहे गेला येते रोग
करिला कण्टकाकीर्ण पथ तार
येतेक दुर्योग ।

तूफान की सहस्र पद-ध्वनि

मिट्टी को सोना बनाकर
वह खुद हो गया मिट्टी
छाया की तरह फूँस की झोंपडी में रहकर
उसने गढ़ दी तुम्हारे लिए ईंट की भट्टी।
छाती का रक्त-दान देकर
उसने गुलाब की कलियाँ खिलाईं
तुम्हारे बाग में, गरमी आग में
उसने झुलसाया अपने शरीर को
तुम्हें शुद्ध सोना बना दिया
और खुद ही राख बनकर बिखर गया।

खुद होकर दिगम्बर, तुम्हें राजकीय पोशाक से ढक दिया
तुम्हें बेफिकरी दी,
और वह स्वयं चिन्ता में निःशेष हो गया।
खुद हुआ अमा-छाया
और तुम्हारे घर को उसने सुख-शान्ति और
पूर्णिमा के चाँद से सजा दिया।

जीवन के सभी सिंगार
उसने तुम्हारे लिए छोड़ दिए
तुम्हारे घर को फूलों की सुगंध से सुवासित करके
स्वयं दुर्गंध बनकर रह गया।
खुद होकर छन्दहीन
उसने तुम्हारे जीवन को छंदमय बनाया।
अपने जीवन-रक्त को मथकर
सभी सार उसने तुम्हें दे दिया
तमाम रोगों को स्वयं धारण करके
उसने तुम्हें स्वस्थ बनाया
उसकी राह काँटों से पटकर
अगम बन गई।

स्वेदर सागरु तुमे लक्ष्मी नेल टाणि
निजे सिए होइगला मूक
तुमेरि वीणारे भरि वाणी ।

नाहिं तार शिलालिपि नाहिं पदचिह्न
परिचय हीन परिचय
विस्मृतिर वेलाबालि परे
विलय गाइला तार जीवनर जय ।
ललाटर लिपि मानि
केबे आसि केबे पुणि
मिशिगला घन अंधकारे
भासिगला बन्या जले
देखाइ कंकाल
ढलि वा पडिला पथ धारे ।
भासिगला चिमिनिर धुआँ साथे
कल त बुझिला नाहिं भाषा
विन्दु विन्दु धुस भस्म सम
भाजिगला लक्ष लक्ष आशा
डाकि डाकि माटिकि से शेषे
देला उपहार
निजर मुदार
पारे नाहिं रखि येहु निजर सम्मान
दस्यु आगे छिड़ा हुए पद माँगि माँगि
स्वल्प धन लागि
से करिब ध्यान !
भगवान !
अर्जिब से पुण्यराशि लगिबाकु स्वरग बैकुंठ
पठाइछि यहिं ताकु तुम जेल, तुम फासि खुण्ट एठ ।
एक हत्या अपराधे
लक्ष कोटि हत्याकारी परम संन्यासी

उसके पसीने के सागर से तुमने उसकी लक्ष्मी का हरण किया
और वह तुम्हारी वीणा में वाणी भरकर
स्वयं मूक हो गया ।
उसका कोई शिलालिपि नहीं, कोई पदचिह्न नहीं
वह परिचयहीन परिचय है ।
विस्मृति के तट पर उसका जीवन-जयगान
रेत पर लिख दिया गया
भाग्य-लेख को ही प्रबल मानकर
वह कभी आया था,
पता नहीं कब गहन अंधकार में
विलीन हो गया ।
धँस गया बाढ़ के पानी में
दिखाकर कंकाल-मात्र
राह की कठिनाई ने निगल लिया उसके जीवन को ।
जिंदगी छिन्न-भिन्न होकर उड़ गई चिमनी के धुएँ के साथ
किंतु उस दानवी यंत्र ने उसकी भाषा को समझा नहीं
और लुट गई उसकी सभी आशाएँ शत-सहस्र परमाणु बनकर
पुकार-पुकार कर मिट्टी को
उसने अपनी लाश उपहार में दे दी ।
रक्षा नहीं कर सकता जो अपने सम्मान की
अल्प धन के लिए जो माँगता है भीख दस्यु से
वह ध्यान करेगा,
भगवान् ?
वह क्या कमाएगा पुण्यराशि स्वर्ग वैकुंठ पाने को ?
एक हत्या-अपराध में
जहाँ भेज दिया है—
'तुम्हें जेल हो, तुम्हें फाँसी का तख्ता मिले !'
किन्तु शत-सहस्र हत्या के भागी हत्याकारी
परम संन्यासी बने

सौधे योग साधे,
अश्रुर सागरे तेणु मरुभूमि धारे
जागिछि तोफान
पलातक दैब, भगवान,
पलातक अतीतर प्रेत
श्मशानर छाया
कूट चक्री इन्द्रजाल माया
पलातक झरा पत्र सम
येते रोग व्याधि
मणिषर शिकारी समाधि
शुणिथिलि यहिं दिने अत्याचारी
खड्ग झनझनि
तहिं शुणे नव युग अग्रदूत
झडर सहस्र पद-ध्वनि

कुंजबिहारी दास

सौध में बैठे
योग-साधन में लीन है,
इसलिए अश्रु-सिंधु में
रेगिस्तान की अपार बालुका-राशि पर
उठा है तूफ़ान
पलातक देव भगवान् ।
पलातक अतीत का प्रेत
श्मशान की छाया
कूटचक्री की इन्द्रजाल-माया
पलातक सब रोगव्याधि, मनुष्य के शिकारी, समाधि
झड़े हुए पत्ते के समान ।
जहाँ सुनी थी एक दिन
अत्याचारी के
खड्ग की झनझनाहट,
आज वहीं नवयुग का अग्रदूत
तूफ़ान की सहस्र-पदध्वनि
सुनता है ।

कुंजबिहारी दास

मूर्त्ति ओ मंदिर

शास्त्रर बाहारे पुणि तमे ए जे बुल
कह हे ईश्वर,
तमकु कि पारिछन्ति सते लोक केते
आम ए विश्वर ?
तमकु से पाइ किस करि जाइछन्ति
कह आहे कह,
तम भलि धन पाइ से कि पारिछन्ति
नाशि दुःखी लुह ?

तब नामे अनुष्ठान जाहा से गाढिले
काँहि हे मंगल,
दीन एक कृषकर कुटिरु त ताहा
नुहें महत्तर

दुनिआरे वैषम्यर स्थान यदि थाए
ताहात मन्दिर
कारागृह मो विचारे एहा ठारु भल,
एहाठुं रुचिर ।
आद्र आँखें बंदी बसि निज पाप नाशे
ढाले ग्लानि-नीर,
एठि जे मंजीर बाजे प्रत्यह प्रदोषे
व्यभिचारिणीर ।
तेबे तमे किस कर ए मन्दिरे बसि
मुं पचारे थरे,
एहि किबा काम तव मणिषकु नेवा
पिच्छिल पथरे ?
परकिया तव अगें निभाइबा
लभे प्रादुर्भाव,

मूर्ति और मंदिर

शास्त्र के बाहर तुम घूमते हो
हे ईश्वर, हे, बताओ
सचमुच क्या हमारे संसार के किसी आदमी ने
तुम्हें पाया है ?
बताओ, बताओ, तुम्हें पाकर उन्होंने क्या किया ?
तुम्हारी-जैसी निधि पाकर क्या वे दुखियों के आँसू पोंछ सके ?

तुम्हारे नाम पर जो अनुष्ठान हुए
क्या वे मंगलकारी सिद्ध हुए
इनका महत्त्व एक दरिद्र किसान की कुटिया से बढ़कर नहीं है

यदि इस दुनिया में कहीं वैषम्य है
तो वह तेरे मंदिर में,
मेरे विचार में उससे तो कारागार कहीं अच्छा है, कहीं सुंदर है,
बन्दी भीगी आँखों से पश्चात्ताप के आँसू बहाकर अपने पाप धोता है
किन्तु यहाँ की प्रत्येक संध्या
व्यभिचारिणी की नूपुर-ध्वनि से अनुगुंजित होती रहती है,
मैं पूछता हूँ, तो फिर इस मंदिर में बैठकर तुम क्या करते हो ?
क्या मनुष्यों को पाप के पथ में ले जाना ही तुम्हारा काम है ?
जिस परकीय भाव के तुम स्वयं प्रवर्त्तक हो,
उसने व्यापक रूप धारण कर लिया है।

सीतारा दहन तव सती दाहे यथा
होइला सम्भव
तेवे थिब, थिब पुणि तम इतिहास,
थिबे प्रवंचक
कोटि युगे न पारिब भारत उद्धारि
कौणासि पावक ।
भरतिआ विभु नाम गाए जेउंदेशे
मृग करे स्तुति,
अति भण्ड जेउँ देशे साधु होइपारे
माखिले विभूति,
बृक्षरे सिंदूर बाजुं तमे जन्म निअ
से देशु, किपरि,
निर्वासित तमे हेव, हे पाषाण प्राण,
वृक्षमय हरि ।
मंदिर भांगिब सत शीळा त रहिब,
रहिब त तरु,
तेबे किबा एहि देशे करिबाकु हेब
आरबर मरु ?
बेदुइन परि पछ जीबन काटिबा
ताहा बरं श्रेय,
ध्वंस हेउ अन्धकार कुम्भीपाक बास
ए जीवन हेय ।

ज्ञानीन्द्र वर्मा

वैसे ही जैसे कि सीता की अग्नि-परीक्षा सती-प्रथा का मूल कारण बनी,
तुम रहोगे, तुम्हारा इतिहास भी रहेगा, और प्रवंचक भी रहेंगे।
कोटि-कोटि युग में कोई भी शक्ति
भारत का उद्धार नहीं कर सकेगी
जिस देश में 'भरतिआ'[1] ईश्वर का गुण-गान करता है
जहाँ मृग स्तुति करता है
जिस देश में धूर्त पाखंडी धूनी रमाकर साधु हो सकता है
जहाँ वृक्ष में सिंदूर लगते ही तुम जन्म लेते हो
उस देश से तुम्हारा निर्वासन कैसे हो सकेगा
हे पाषाण—प्राण, वृक्षमय हरि!
यह सच है कि मंदिर भग्न हो जायगा
किन्तु पाषाण तो रहेंगे, वृक्ष तो रहेंगे,
तो क्या इस देश को अरब—रेगिस्तान बनाना पड़ेगा?
बेदुइन के समान जीवन बिताना अधिक श्रेयस्कर है।
इस अंधकारमय नारकीय एवं हेय जीवन को विनष्ट होने दो।

ज्ञानीन्द्र वर्मा

१ भरतिआ—एक पक्षी विशेष।

पंगपाल

पंगपालर कबलरु
मणिष-फुलकु बंचाइबाकु पडिब
बंचाइबाकु पडिब मानविकतार शस्य
मणिषर सूर्यमुखी मन
सस्मित ओ सुविमल आस्य
सेइ पंगपालर दल आजि आकाश भान्तरे
जीवनर सबुज बन्दरे
हरित केदारे पुणि मणिषर आलोक मन्दिरे
मेलिछन्ति ध्वंसकारि डेपा
रक्तशोषी पाटि
मारिबाकु पंगपाल दल
आयोजन करे रक्तमाटि
माटिर मणिष जदि ए माटिरे चाहे बंचिबाकु
बंचिबाकु चाहे जदि ए माटिरे मनुष्य समाज
मणिषर गीतिगाइ
ए माटिरे फसल से करि
प्राणे धरि
अग्निकण, मानवता, मुक्ति ओ ऐक्यर
मारिबाकु पंगपाल आजि
शीघ्र सबा आयोजन कर ।

पंगपालर बंश निर्मूल करिबाकु पडिब
निर्मूल करिबाकु पडिब सबुज शस्यर शत्रु
देशे देशे—ए विश्वर विपुल आकाशे
तेबे त आसिब मुक्ति
धरणीर आलोक बतासे
मुक्त हेब मणिष फसल
विकसित हेब सारा विश्वे
सर्यमुखी जीवनर फुल ।

चिन्तामणि बेहेरा

टिड्डी-दल

टिड्डी-दल के घेरों से
मनुष्य-फूल को बचाना होगा
बचानी पड़ेगी मानवता की फसल
मनुष्य का सूर्यमुखी मन
सस्मित और सुविमल शस्य
आज आकाश-प्रान्तर में
जीवन के सब्ज बन्दरगाह में
हरित केदार में और मनुष्य के आलोक मंदिर में
उसी टिड्डी-दल ने फैलाये हैं
अपने ध्वंसकारी पंख, और
लहू चूसने के लिए खोला है अपना मुख
टिड्डी-दल के विनाश के हेतु
किया है खेत-मिट्टी ने आयोजन

मिट्टी का मनुष्य अगर चाहता है बचना इस मिट्टी पर
यदि चाहता है मानव-समाज अपने अस्तित्व की रक्षा
करके मनुष्य का जय-गान
उगाकर इस धरती में फसल
प्राण में भरकर
अग्नि-कण, मानवता, मुक्ति और ऐक्य-भाव
तो मारने को टिड्डी-दल आज
हे सखा, शीघ्र आयोजन करो।

टिड्डियों का वंश निर्मूल करना पड़ेगा
निर्मूल करना पड़ेगा लहलहाते हुए खेतों के शत्रु को
देश-देश में इस विश्व के विस्तीर्ण आकाश में।
तब तो आयगी मुक्ति
धरती के आलोक में, वायु में
मुक्त होगी मानव-फसल
विकसित होगा सारे विश्व में
सूर्यमुखी जीवन का फूल!

चिन्तामणि बेहेरा

त्रयी

दुर्मद नदीर घूर्णी भितरे
झाम्प दिए गोटिए फुल
गोटिए सतेज फुल ।
से फुल साहसर ।

उन्मत्त झडर ओठ
चुम्बन करे
गोटिए पत्र
गोटिए सबुज पत्र ।
से पत्र प्रत्ययर ।

अन्धकारर बलुरी
घरे गोटिए काढि
से काढि आलोकर ।

दुर्गाचरण परिडा

त्रयी

दुर्मद नदी की भँवरों में
छलाँग लगाता है एक फूल
एक तेजस्वी फूल, वह साहस का फूल।

उन्मत्त प्रभंजन के होंठ चूमता है
एक पत्र
एक हरित पत्र, वह पत्र प्रत्यय का।

अंधकार की वल्लरी पर
अंकुरित एक कली
वह कली आलोक की।

दुर्गाचरण परिड़ा

भूखा है भगवान

भूदान भूदान किएरे मागुछि किए देब कारे दान ?
मातार स्तन्यु एका पाए भाग से केउँ भाग्यवान ?
यज्ञी यज्ञी शब्द उठुछि किए उद्‌गाता तार,
आपणा उदरे चरु हवि भरि कर किए स्वाहाकार ?
बंदकर ए क्रन्दन रोल भूमिदान भूमिदान,
नन्दिघोष मो स्यन्दन डाके भूखा है भगवान ।

पाणिरु पाउणा किए निए, कार पवने पाउति कटा,
आकाश आलुए स्वत्व काहार इस्त मुरारि पटा ?
ए भूइं माँगि रखिछिरे किए खारा दखलरे निज
माआ पेटरु के आसिथिला धरि दलिल दस्ताविज ?
निर्भूमि केउँ बादशाह आजि करुछिरे भूमिदान ?
सार्वभौम शकति डाकुछि भूखा है भगवान ।

आरे ए इन्द्र इन्द्रिया भोगी, आरे सहस्र योनि,
तोहरि पांपरु पडि अछि पथे देख अहल्या भूमि ।
उद्धार तारे करिबि राम गुं होइबि जगत जिता,
दान देब मोते जनकर हात जात करि क्षेतु सीता ।
शिव धनु परे गुण दिएं शुण न हुए कम्पमान
समाल, समाल, बज्रायुधरे भूखा है भगवान ।

मथुरा फटके बसिछि कंस करिअछि धनु याग
कुबलया बळे बलियान चादु चाणुरर उत्पात,
उपरे देखाए अक्रुर भाव विपमय परिणाम
मंचारे बसि पाँचे मारिब कृष्ण ओ बलराम,
छद्मबेश ए पद्धती येते हेब तार अवसान
लंगल हल धारी हालि केहे भूखा है भगवान ।

भूखा है भगवान्

भूदान-भूदान कौन माँगता है ? कौन देगा किसे दान ?
माता के स्तन से अकेला ही हिस्सा बँटाता है, कौन है वह भाग्यवान ?
'यज्ञी यज्ञी' आवाज आती है, कौन है उद्‌गाता उस यज्ञ का ?
अपने पेट में चारु हवि भरकर करते हो क्या स्वाहाकार ?
बंद करो यह क्रंदन चीत्कार भूमिदान, भूमिदान।
मेरा नन्दी-घोष रथ पुकारता है, भूखा है भगवान्।

पानी का लगान कौन किससे लेता है, हवा में रसीद कौन काटता है ?
आकाश के प्रकाश पर किसका अधिकार है इस्तमरारी पट्टा किसका है ?
इस भूमि को तोड़कर किसने रखा है खास अपने अधिकार में
माता के पेट से कौन आया था दलील दस्तावेज लेकर ?
कौन निर्भूमि बादशाह आज करता है भूमिदान ?
सार्वभौम शक्ति पुकारती है, भूखा है भगवान्।

अरे ओ इन्द्र इंद्रिय-भोगी ! अरे ओ सहस्र-योनि !
तुम्हारे ही पाप से रास्ते में पड़ी है देखो वह अहल्या भूमि।
मैं राम इसका उद्धार करूँगा, मैं जगज्जेता बनूँगा
झे दान देगा जनक का हाथ, खेत से सीता को जन्म देकर
शिवधनु खींचता हूँ, सुनो, काँपो मत।
सँभल, सँभल, अरे ओ वज्रायुध, भूखा है भगवान्।

मथुरा-नगर में बैठा है कंस, उसने धनु-यात्रा रचाई है,
कुवलया शक्ति से बलवान, चापलूस चाणूर के उत्पात हो रहे हैं।
ऊपर से दिखाकर दयावान का भाव, परिणाम विषमय निकलता है।
मंच पर बैठकर सोचता है कि मैं कृष्ण और बलराम को मारूँगा
कपट-मूलक जितनी भी यह पद्धति है, उसका अवसान होकर रहेगा
हल को चलाने वाला हलधर कहता है, भूखा है भगवान्।

क्षुद्र मानव असिचि आजिरे भद्र बामन रूपे,
भिक्षा दबार दीक्षा किएरे वहिछ धरार बुके,
दातापणे आजि तोलि धर कर कमण्डलुरु जल,
तिनिपाद भूमिदान देइ मोते देखाअ मनर बल
शुण शुण दानशीलारे मानवा, बलिठारु बलियान,
नाभि कमलरु नाद उठे मोर भूखा है भगवान ।

प्रथम पादे मुं मागुछि हृदयु दिअ मोते अपहारी,
द्वितीय पादे तो बुद्धि कलम इलमर इजाहारी,
तृतीये मागे मुं तीर्थ उदक तमरि श्रमर झाल,
भलियिब मन मणिप प्रेमरे टलियिब जंजाल,
भूदान भूदान चित्कारे हेब दुःखर अवसान
नाभि कमलरु श्रम डाके एणे भूखा है भगवान ।

भूमिदान नुहँ तिल कांचन अटे ए प्रायश्चित्त,
आरे मला येते मालिक भूमिर शुण कहें तुम हित ।
ए नुहें भिक्षा, शिक्षा तमर दीक्षा देउछि गुरु,
घर अक्षत अक्षते येबे बरतिब यम पुरु ।
भूमि भारा बहि बासुकी रे मुहिं धेन भोर कल्याण
खाइला धरर पिले शुण सबु, भूखा है भगवान ।

तेणे उद्योग परब लगाए श्रेणीहीन से शकुनि
विप्लवकर विप्लवकर उठे घन घन ध्वनि,
झाल बुहांकर झालरे कलुष तलु होइयाए धोइ
एहाठारु बलि विप्लव काहिं नोहिछि नाहिंना होइ ।
रकतर नदी बदले प्रेमर वन्यार हेउ टाण
नन्दीघोषमो स्यन्दन डाके भूखा है भगवान ।

नित्यानन्द महापात्र

क्षुद्र मानव आज आया है, भद्र वामन के रूप में।
भिक्षा देने की दीक्षा पृथ्वी के किस राजा ने ली है ?
आज दाता की भावना से हाथ से कमंडल उठाकर जल दो।
त्रिपाद भूमि दान देकर मुझे अपने मन का बल दिखाओ।
सुनो सुनो रे दानशील मानव ! तुम बली से भी बलवान हो
मेरे नाभि-कमल से नाद उठता है, भूखा है भगवान्।

मैं प्रथम पाद में माँगता हूँ मन से दो ओ अपहरण करने वालो।
द्वितीय पाद में तुम्हारी बुद्धि की कलम माँगता हूँ, ओ कलम चलानेवालो !
मैं तृतीय पाद में माँगता हूँ तीर्थ-जल तुम्हारे श्रम का पसीना
मनुष्य प्रेम में मन भर जायेगा, जंजाल टल जायेगा,
भूदान-भूदान चीत्कार से होगा दुःख का अवसान
इधर नाभि-कमल से श्रम पुकारता है, भूखा है भगवान्।

यह भूमिदान नहीं है, तिल-कांचन है जो प्रायश्चित्त में दिया जाता है।
अरे ओ मुर्दो ! अरे भूमि के मालिको ! सुनो, मैं तुम्हारे हित की बात कहता हूँ।
ये भिक्षा नहीं, यह तुम्हारी शिक्षा है, गुरु दीक्षा देता है,
पकड़ो अक्षत-अक्षत में यदि यमपुर से बचना चाहते हो
मैं वासुकी भूमि-भार ढोता हूँ, मेरा कल्याण लो,
धनी घर के बच्चो, तुम सुनो, भूखा है भगवान्।

उधर उद्योग-पर्व लगाता है वह श्रेणीहीन शकुनी
विप्लव करो ! विप्लव करो ! यह ध्वनि बार-बार उठती है
श्रमिक के पसीने से पाप नीचे से धुल जाता है
इससे बढ़कर विप्लव कहीं नहीं हुआ, नहीं हुआ, नहीं हुआ,
रक्त की नदी के बदले में प्रेम की बाढ़ जोर पकड़ेगी,
मेरा नंदि-घोष रथ पुकारता है, भूखा है भगवान्।

नित्यानंद महापात्र

जीव-हंस

जीव हंस स्वाते गणि सुधार सागर
मल जले उत्साहिते मजाइलु मन
सेहि क्षुद्रे रहि बूडि क्षीणायीलू बल
पंककीट हेला तोर परम भोजन ।

सुन्दर धवल कान्ति कलुरे मलिन
संग्रामे मातिलु सेहि पंककीट पाइं
पल्वल दाबिरे तोर कटिगला दिन
ताठू स्वादू अदिकिछि नाहिं परा ध्यायि ।

माति रहि गुढ़तार सदय सगाधाने
भूलि याई चिरन्तन, भूलि पूर्व, पर
मिथ्यारे सजाई पूजा कलु सत्यस्थाने
अपदार्थे बोध करि जीवन सम्बल

उठ हंस, दिअ झाडि गुढ़ निरवारण
उर्ध्वे उठि विराटर कर आस्वादन ।

मायाधर मानसिंह

जीव-हंस

जीव हंस ने एक गड्ढे को सुधा का सागर समझा
और उस मल-जल में उत्साह से मन ने मज्जन किया
उसी क्षुद्रता में डूबे रहकर बल क्षीण हुआ
तेरा परम भोजन पंक-कीट बना।

सुंदर धवल कांति को काला और मलिन बनाया,
उन पंककीटों के लिए लड़ने में मस्त होते रहे,
तेरे दिन कट गए उस कीचड़ के पल्वल के हिस्से का दावा करने में,
यही सोचने में कि इससे स्वादु और कुछ नहीं हो सकता।

मूढ़ता के सदय समाधान में भरे रहे
चिरंतन को भूल गए, पूर्वापर भूल गए,
मिथ्या की पूजा की, उसे सत्यस्थान पर पूजित किया,
अपदार्थ को ही जीवन-संबल तुम समझे।

उठो हंस, मूढ़ विस्मरण को झाड़ दो
ऊर्ध्व उठकर विराट् का आस्वादन करो।

मायाधर मानसिंह

ग्राम-पथ

एक

दूरे तालवण आकाशे शुणाए
मादिर कविता कि रे
ए ग्रामर पथ तहिं दिगन्त मिशे ।
क्षेत परे क्षेत
काश फुल आउ
वेणारे जटिलपाट,
पाट परे वण वण पारि हेले
मासु घर गांआ दिशे ।

दुइ

पथर से पाखे घुणा हरड ओ घुट,
आगरे चारण पडिआ गोरुर गोठ,
शिमुलि शाखारे
बाहुने कपोती
उड् पुत उड्
उठ् पूरिलाणि माण,
ए पाखे कंहर पोखरी गाधुआ तुठ

तिनि

भुआसुणी माजे पादर पाहुड एथि
मुकुला बेणीरे पखाले देइण गोशि
नणन्द ताहार
अधिक चतुरी
गालरे हलदी माखे
हलिला पाणिरे मुँहर छाइकि देखे

ग्राम-पथ

एक

दूर का ताल-वन आकाश को सुनाता है,
धरती की कविता जैसे
यह ग्राम-पथ वहाँ क्षितिज के साथ मिलता है,
खेतों के बाद खेत,
काँस के फूल और खस से घनीभूत बंजरभूमि
बंजर के उस पार जंगल और जंगल को पार करते ही
दिखाई देता हैं मामा का गाँव ।

दो

रास्ते से सटा हुआ एक तरफ अरहर और चने का खेत
सामने है चरागाह और गायों का झुंड
सेमल की डाल पर
कपोती रोती है
उठ बेटा उठ, उठ पूरा हो गया है 'माण'
पथ के एक ओर छोटे-से सरोवर में खिले हुए कुमुद
और हैं नहाने का घाट ।

तीन

यहाँ पर नई दुलहिन माँजती है अपने पैरों की पायल
और खुली हुई बेणी को मेथी लगाकर धोती है,
ननद उसकी बड़ी चतुर है
वह अपने गालों में हलदी लगाकर देखती है
प्रकंपित पानी में अपनी मुख छवि ।

चारि

पोड़शाग आउ पाणि कखारुर लता
माडि माडि आसि टपिलाणि घर मथा,
राजनार शाखुं
झरि पडे केते फुल
बाड देहे पुणि अपराजितार छटा ।

पाँच

सेइ पथे फेरे ग्राम बधू सारि
सकाल स्नाहान एका
धूलिरे आँकि सजल चरण रेखा
माआ बोलि थरे
डाकि बाकु प्राण लोडे,
पृथीवीर सम सहनशीला से
असीम करुणावती
नयने शतेक युगर वेदना लेखा ।

छअ

ए पथे ग्रामर तरुण विदेशी थाए
लेउटा पथकु नूतन धरणी
आकुले अनाइ थाए ।
कि बारता तारे आणे
किए जाणे
अधार लोभी ए काक ।
ए ग्राम देवती
से व्यथा बुझे कि हाय ।

चार

पोई की बेल और कुम्हड़े की लता
फैलती हुई घर के ऊपर छा गई है,
सहजन की शाखों से झर जाते हैं बहुत-से फूल
और फिर घर के चारों ओर की बाड़ में
लगे हुए अपराजिता के पुष्प शोभायमान हैं।

पाँच

उसी पथ में जब ग्रामवधू सवेरे अकेली नहाकर
सजल चरण-चिह्न-रेखा अंकित कर लौटती है,
एक बार माँ कहकर बुलाने को जी चाहता है,
पृथ्वी के समान सहनशीला वह
असीम करुणावती,
आँखों में उसकी युग-युग की वेदना छिपी हुई है।

छः

इसी पथ से विदेश को जाता है ग्रामीण युवक
आकुल अंतर से उसके लौटने की राह देखती है नव-विवाहिता पत्नी,
खाने का लोभी कौआ न जाने क्या संदेस उसे देता है?
कौन जाने इस गाँव की देवी उसका दुख समझती है या नहीं?

सात

ए पथरे ग्रामे प्रवेश हुअइ बधू
वितरि कुंकुर मगता मुखर मधु
पुअ झुअ नाति नातुणी रे रखि
मशाणि ए पथे फेरे
आसिबा जनर साक्षि ए पथ
फेरिबा जनर बंधु

आठ

जबा ए पथे ढालइ रजत माया
कुमारी दलर मिलित कंठु
संगीत उठे आहा,
धान क्षेते चले
कृषक तरुण
रात्रि शयन पाइं
प्रान्तर डेइँ धाएँ देख देख
मसाणि मेघर छाया ।

नअ

धूलिधर छाड़ि ए पथे चलइ
शाशुधर गाआँ झुअ
माआर पणते वन्या रचइ
अमानिआ आखिलुह ।
ए पथर स्मृति चेतना लेखइ
से केँउ जनम कथा ।
छाति फाटि याए क्रन्दने तार
विधाता किपाइं ए विधान कला कुह ।

सात

वधू इसी पथ से ग्राम में प्रवेश करती है
हृदय की ममता, मुख का मधु बिखराकर,
पुत्र, कन्या नाती-नातिन को रखकर,
इसी पथ से लौट जाती है श्मशान को
यह पथ, आने वाले का साक्षी है
यह पथ, जाने वाले का बंधु है।

आठ

इसी पथ पर बिखरता है चाँद अपनी रजत माया
ग्राम-बालाओं के समवेत स्वर से गूँजे उठती संगीत-लहरी
रात में सोने के लिए कृषक तरुण इसी पथ से जाता है धान के खेत में
और इसी पथ में दौड़ते हुए मेघों की छाया
खेतों को पार करती हुई निकल जाती है।

नौ

गुड़ियों का खेल छोड़कर ग्राम-बाला इसी पथ से सास के घर जाती है,
उसके अविरल आँसुओं की धार से माँ का आंचल भीग जाता है।
इसी पथ की स्मृतियाँ मन में जगा देती है जन्म-जन्मान्तर की बातें,
छाती फट जाती है उसके करुण विलाप से
बोलो, विधाता का यह कैसा विधान है?

दश

श्याम प्रान्तरे उलगं शिशुराग
ए पथ घुगाए
नील नगे यथा
छाया पथ मनोरम ।
ग्राम झरणारे
लंघि ए पथ
सरग सीमाकु धाएं
संन्यासी सोकि, वितरि करुणा घन ।

एगार

वन्दना तते करइंरे माग पथ ।
बालक वेलर हे मोरप्रिय साथि
अयुत दंडवत,
तरुण दिनर
केलिकुंज
तो तनु कर्पूर रेणु,
तोर वेणुवन विताने मूं आजि
क्लान्त दिवस यापन रे उपगत ।

बार

भिक्षाशी प्राण पीड़े मते अहरह
पाथेय विहीन पथिक मुं गणे
यात्रा ए दुरुवह
खड् ओ तुलारे शुभ्र करि तो तनु
रामनाम सत मन्त्रे चलिबि
तो तीर श्मशाने
कैवे काहु कैवे काहु ।

विनोदचन्द्र नायक

दस

नीलांबर में मनोरम छाया-पथ की भाँति
श्यामल प्रांतर के अंक में नग्न शिशु की तरह यह पथ सोता है
गाँवों के निर्झर को लाँघकर यह पथ स्वर्ग की सीमा के पास दौड़ता है
जैसे कि संन्यासी अपनी करुणा का धन बाँटकर जा रहा हो।

ग्यारह

हे ग्राम-पथ, तेरी वंदना करता हूँ,
मेरे बचपन के प्रिय साथी, तुम्हें अयुत प्रणाम करता हूँ।
मेरा तरुण-कालीन-क्रीडा-कुंज, तेरा शरीर कर्पूर-रेणु से भरा हुआ है
तेरे वेणु-वन-वितान में
आज मैं अपने क्लांत दिवस व्यतीत करने आया हूँ।

बारह

भिक्षु प्राण, मुझे हमेशा दुखी रखता है
पाथेय-विहीन पथिक मैं इस यात्रा को दुर्वह समझता हूँ
'लाई' और 'रुई' से तेरे शरीर को शुभ्र कर
'राम नाम सत्य' की वाणी के बीच तेरे समीप श्मशान को चलूँगा।
कहो कब, कहो कब?

विनोदचन्द्र नायक

बुला कुती

"कि कल बाबा तुमे !"... कहुछि आसि कन्या
कनिष्ठ पुत्र बेनि नयने अश्रु बन्या ।

ता वयोज्येष्ठ पुणि ओजर करे कान्दि,
दुष्टा मेहेन्तर कुतीकि नेले बान्धि ।
गलाइ गले तार नेले से यम धरि
बारण कल नाहिं ? रहिल मूक परि ।
सूचीरे बिष फोडि आजि करिबे शेष,
भालि पारिल नाहिं छुआटा दुआ क्लेश ?
आखि फिटिछि एबे करिन तिले लक्ष
जनम करिबार होइनि देढ पक्ष ।
पालिब ताकु किए के देब खीर कले ?
गोटाक लागि सिना छुआटा प्राणी गले ?
कहुछि सर्व ज्येष्ठ "रातिरे आजि जाण,
छुआटा बोबालिरे फटाइ देबे कान ।
सहि पारिब किए बिकल ताक रडि,
मरिबे छुआ प्राणी पथ घाटरे पडि ।"
कहिलि निर्विकारे, "कुतीटा लागि शोक ?
जाणुछ तार पाशे मरन्ति केते लोक ?
माणिष गलाउछि माणिषपणेके तार,
पडुछि कोटि मूक फाकुति काने कार ?
न खाइ मरुथिला कुतीटा शाहे थर
सरगे पठाइला बुभुक्षु मेहन्तर ।
लभिब पुरस्कार पइसा आठअणा,
बुला कुतीर रडि दुःखरे पुणि गणा ?
माणिष पिला लागि नमिले यहिं थान,
जनम कले किआं आठटा महाप्राण ?
शिआल एथि मध्ये दिओटि कला शेष,

आवारा कुतिया

"क्या किया पिताजी तुमने" कन्या ने आकर कहा
कनिष्ठ पुत्र की दोनों आँखों में आँसुओं की बाढ़ आ गई,

उसके बड़े भाई ने भी रोकर कहा
दो जमादार कुतिया को बाँधकर ले गए
गले में तार का फन्दा डालकर, यम के समान ले गए
मना नहीं किया तुमने ? रहे हो मूक के समान ?
सुई द्वारा विष प्रविष्ट कर आज करेंगे वह उसका जीवन निःशेष
सोच नहीं सके तुम उसके छः नवजात बच्चों का क्लेश,
अभी तो उनकी आँखें खुली हैं, यह भी तुम न देख सके
जन्म हुए अभी डेढ़ पक्ष भी तो नहीं हुए
कौन उन्हें पालेगा ? कौन पिलायेगा घूँट भर दूध ?
एक के लिए छः प्राणों का अंत होगा
सबसे बड़े भाई ने कहा, देखो आज रात में ही
छहों के रोने से कान फटेंगे
कौन सह सकेगा उनका वह विकल क्रंदन
मार्ग में भटककर मरेंगे छः प्राण
निर्विकार होकर कहा मैंने, एक कुतिया के लिए इतना दुःख ?
जानते हो तार के फन्दे में मरते हैं कितने लोग ?
मनुष्य के गले में मनुष्य डालता है फन्दा
करोड़ों मूक लोगों की विनम्र प्रार्थना किसके कान तक पहुँचती है ?
भूख की ज्वाला से मरती थी कुतिया शत बार
उसे स्वर्ग में भेज दिया है भूखे जमादार ने
मिलेंगे उसे आठ आने पुरस्कार में
आवारा कुतिया की चीत्कार भी क्या कोई दुःख की बात है ?
मानव-शिशुओं को जहाँ नहीं मिलता है आश्रय
वहाँ क्यों जन्म दिया उसने आठ महाप्राणों को
दो को खाकर अपने पेट की ज्वाला शान्त की सियारों ने

छअटि से विधिरे स्वर्गे भुलिबे क्लेष।"
जल्पन्ति माता करि वदन व्यादान
"वयस वृद्धि हरे लाज अपमान।
ता संगे पुणि बुद्धि वृत्ति याए हजि,
कुती उपरे येते पौरुष मरजि।
नअ दश प्राणीकं होइण जनक
लाज नाहिंकि तिले आहे धर्म वक ?
तुम सन्तान माता वेके गलिले तार
बुझन्त छ छअटा मूकंक नारखार।
ए भलि थान्ति पुणि लुहार मणिष ?
आपणा स्वार्थ छाडि, लागे सबु विष"

मो 'लुहा मणिष' से जड स्तम्भीभूत
छुटइ अग्नि नेत्र लोतक विनुत।
कशाघात करे के नितम्बे जानुजंघे
विचार अपेक्षारे मुं अपराधी संगे।
छार से चन्द्रकुती अवा विश्व जननी।
कंकाल हाड कल पनारे नोहे गणि
छुटि आसि कनिष्ठ कुहइ एकाले
"से साहिरु नेलेणि पुणिकुक्कुर माले,
शुभुछि गाड़िचक : के जाणि तुमे गले,
छाडि दिअन्ते डरे नहेले पिला मले।
याअ ना वावा देव चारणा हात गुंजा,
एडे निष्ठुर तुमे। एतिकि नोहे बुझा"

वैसे ही यह छहों भी भूल जायँगे स्वर्ग में अपने क्लेश।
यह सुनकर माँ चिल्ला उठी····
उम्र बढ़ जाने से लाज-शर्म भी चली जाती है
और उसके साथ विवेक भी नष्ट हो जाता है
एक निरीह कुतिया पर अपने पौरुष की डींग हाँकते हो
नौ-दस बच्चों के पिता होकर भी
तुम्हें जरा भी लाज नहीं आती, हे धर्मोपदेशक ?
तुम्हारे अपने शिशुओं की माँ के कंठ में लगने से फन्दा
तुम्हें मालूम होता छः-छः मूक शिशुओं की बरबादी
क्या ऐसे भी होते हैं पाषाण-हृदय,
जिन्हें अपने स्वार्थ की सिद्धि ही अभीष्ट है

और सब है हेय, तुच्छ और उपेक्षित ?
यह सुनकर मेरा पाषाण हृदय हो गया जड़ स्तब्ध
बह निकली आग्नेय नेत्रों से परिताप अश्रु-धारा
लगा, जैसे किसी ने कशाघात किया हो नितम्ब, जानु, जंघा में
और मैं अपराधी की भाँति बैठा हूँ न्यायालय में
निर्णय की प्रतीक्षा में
वह निरी कुतिया हो, अथवा विश्व-जननी
कंकाल अस्थि की गणना कल्पनातीत है
इसी समय कनिष्ठ पुत्र ने हाँफते हुए कहा
उस मुहल्ले से भी कुछ कुत्ते ले गए हैं भरकर
लो सुनो गाड़ी के पहियों का स्वर
हो सकता है तुम्हारे मना करने पर
वे छोड़ दे भय से
अन्यथा उनका अंत सन्निकट है
यह निश्चित समझो,
जाओ, पिताजी, कुछ पैसे देकर उनकी रक्षा करो,
क्या, इतने निष्ठुर हो तुम, इतना भी नहीं समझते हो ?

न याए बुझा शिशु   नर धा कुपकुर,
निखिल सृष्टि ध्यान   कल्पना करे सूर ।
परम अपराधी समान आत्मा कादु,
कहे,...... "थिनार भाणी न फेरे आउ थाबु
से छुआटिकु निअ खन्दारे गिशाइ
आशुं ए वंशे तुमे पोल भउणी भाई"

सबुज

भेद नहीं है मानव-शिशु या श्वान-शिशु में
निखिल सृष्टि ही चूर करती है श्वान कल्पना को
परम अपराधी के समान मैं बैठ गया हूँ मूक हतप्रभ
कहा मैंने ....“ जो चला गया वह चला गया
इन छः अनाथ बच्चों को मिला लो अपने में
आज से इस कुटुंब में तुम दस नहीं
सोलह भाई-बहन हो । ”

सबुज

उर्दू

चयन : मौलाना अबुलकलाम आज़ाद

हिंदी अर्थ : 'सागर' निज़ामी

कवि-नाम	कविता
अली सिकन्दर 'जिगर' मुरादाबादी	ग़ज़ल
अली सरदार जाफ़री	ग़ज़ल
'अर्श' मलस्यानी	ग़ज़ल
आले अहमद 'सरूर'	ग़ज़ल
जगन्नाथ 'आज़ाद'	बाज़गश्त
'जोश' मलस्यानी	ग़ज़ल
'जोश' मलीहाबादी	अक़्लो-होश
नवाब ज़ाफर अली ख़ाँ 'असर' लखनवी	ग़ज़ल
मुइन अहसन 'जज़्बी'	ग़ज़ल
राही मासूम रज़ा	चिराग़ जल रहा है

ग़ज़ल

जो तेरी याद से मामूर[1]-ओ-नग्मा-रेज़ाँ[2] गुज़रे,
वो लम्हे कितने हसीं[3] किस क़दर जवाँ गुज़रे।

कोई न देख सका जिनको दो दिलों के सिवा,
मुआमलात[4] कुछ ऐसे भी दरमियाँ गुज़रे।

रहे-वफ़ा[5] में इक ऐसा मुक़ाम भी आया,
हम आप अपनी तरफ़ से भी बदगुमाँ[6] गुज़रे।

ख़ुलूस[7] जिसमें हो शामिल वो दौरे-इश्क़ो-हवस[8],
न रायेगाँ[9] कभी गुज़रा, न रायगाँ गुज़रे।

कहाँ का इश्क़ कि ख़ुद हुस्न[10] को ख़बर न हुई,
रहे-तलब[11] में कुछ ऐसे भी इम्तिहाँ गुज़रे।

अभी से तुझको बहुत नागवार[12] हैं हमदमों[13],
वो हादसात[14] जो अब तक रवाँ-दवाँ[15] गुज़रे।

जिन्हें कि दीदा-ए-शायर[16] ही देख सकता है,
वो इन्क़िलाब तेरे सामने कहाँ गुज़रे।

वो जिनके साये से भी बिजलियाँ लरज़ती[17] हैं
मेरी नज़र से भी कुछ ऐसे आशियाँ[18] गुज़रे।

बहुत हसीन मनाज़िर[19] भी हुस्ने-फ़ितरत[20] के,
न जाने आज तबीअत पै क्यों गिराँ[21] गुज़रे।

---

१. भरे हुए २. गाते हुए ३. सुन्दर ४. मामले ५. वफ़ा का रास्ता ६. बुरा सन्देह करने वाले ७. सच्चाई ८. इश्क़ो हवस का दौर ९. बेकार १०. सौंदर्य ११. तलब की राह १२. जो गवारा न हो १३. संगी, साथी १४. दुर्घटनाएँ १५. तीव्र गति से १६. शायर की आँख १७. काँपती हैं १८. घोंसले १९. दृश्य २०. प्रकृति के सौंदर्य के २१. भारी

मेरा तो फ़र्ज़[२२] चमनबन्दी-ए-जहाँ[२३] है फ़क़त,
मेरी बला से बहार आये या ख़िज़ाँ गुज़रे।

कहाँ वो जाये तेरी बज़्मे-नाज़[२४] से उठकर,
तेरे बग़ैर जिसे ज़िन्दगी गिराँ गुज़रे।

'जिगर' मुरादाबादी

---

२२. कर्तव्य २३. दुनिया का बाग़ लगाना २४. महबूब की महफ़िल

ग़ज़ल

फिर शमीमे[1]-गुल-नवेदे[2]-जाँफ़िज़ा[3] लाई है आज,
मेरे गुलशन में बहारे-रफ़्ता[4] फिर आई है आज।

फिर उठा है वादिये[5]-गंगा से अब्रे-नौबहार[6],
मस्त रावी[7] से हवाए-मेहरबाँ[8] आई है आज।

आज फिर है इत्तहादे-शीशा-ओ-साग़र[9] का दौर[10],
महफ़िले-रिन्दाँ[11] में जशने-बादा[12] पैमाई है आज।

जिस्मे-साक़ी[13], तुझमें सारा मैकदा[14] आबाद है,
क़ामते-राअना[15] में मौजे-मै[16] की अंगड़ाई है आज।

खुल गये हैं हसरते-दीद[17] में आँखों के दर[18],
दोस्तों की खानये-दिल[19] में पज़ीराई[20] है आज।

आ मिले हैं सीना चाकाने-चमन से सीना चाक[21],
शोर[22] है महफ़िल[23] में दीवानों की बन आई है आज।

फिर वही गलियाँ वही अगला तवाफ़े-कूए-दोस्त[24],
इश्क़[25] को मुज़दा[26] कि फिर सामाने-रुसवाई[27] है आज।

कौन है जिससे सँभाला जायेगा मेरा जुनूँ[28],
ख़ुद ही पाये-शौक़[29] को ज़ंजीर पहनाई है आज।

---

१. फूल की सुगन्ध २. शुभ सन्देशा ३. आत्मा को प्रसन्न करने वाला ४. बीती बसन्त ५. गंगा की तलहटी ६. नव बसन्त का मेघ ७. पंजाब का एक दरिया ८. प्रेम में डूबी हुई हवा ९. प्याले और बोतल का मिलाप १०. चक्कर ११. मस्तों की सभा १२. सुरा पीने का जशन १३. साक़ी का शरीर १४. मधुशाला १५. सुन्दर शरीर १६. सुरा की लहर १७. दर्शन की कामना १८. द्वार १९. हृदय रूपी घर २०. स्वागत २१. बाग़ के विशीर्ण हृदय वालों से विशीर्ण हृदय वाले आ मिले हैं २२. उल्लास का शोर २३. सभा २४. प्रेमिका की गली के चक्कर २५. प्रेम २६. शुभ समाचार २७. बदनामी का सामान २८. उन्माद २९. प्रेम के चरण

डर रहा हूँ जानो-तन[30] को फूँक डालेगी, ये आग,
मेरे सीने में जो ज़ब्ते-ग़म[31] ने भड़काई है आज।

आज बेबाकी[32] में है अहले[33]-ख़िरद की मसलहत[34],
सरफ़रोशी[35] ही में अहले-दिल[36] की दानाई[37] है आज।

मुस्कराये ज़ख़्मे-दिल[38], हँसने लगे सीने के दाग़,
रूहे[39]-इस्तबदाद कैसी कैसी शरमाई है आज।

ख़ूने-नाहक़[40] लालाओ-गुल[41] बन के फूटा ख़ाक से,
तेशाज़न[42] के ख़ूँ से दश्तो-दर[43] की ज़ेबाई[44] है आज।

कह दो सैय्यादों[45] से गुलचीनों[46] को कर दो होशियार,
फ़स्ले-गुल[47] ने दूर तक ज़ंजीर फैलाई है आज।

हाँ यही है रोज़े-महशर[48] हाँ यही रोज़े-हिसाब[49],
तेरी रुसवाई[50] है या अब मेरी रुसवाई है आज।

फिर है मीनारों पै राशा[51] फिर है गुम्बद सरनिगूँ[52],
फिर नवा शायर की एवानों[53] से टकराई है आज।

आज फिर क़दमों पै मेरे झुक रही है कायनात,
मेरे क़ब्ज़े में जहाने-नौ[54] की दाराई[55] है आज।

ख़ाक पर झुकती नहीं, अफ़लाक[56] पर रुकती नहीं,
जो निगाहे[57]-तक़दीरे[58]-आलम की तमाशाई[59] है आज।

---

३०. आत्मा और शरीर ३१. दुःख की सहन ३२. निस्संकोचपन ३३. बुद्धिमानों ३४. भलाई ३५. सर बेचना ३६. दिल वाले ३७. बुद्धिमानी ३८. हृदय के ज़ख़म ३९. पापी आत्मा ४०. वह ख़ून, जो बेजा तौर पर किया गया ४१. लाल फूल ४२. तेशा चलाने वाला (फ़रहाद) ४३. मरुभूमि ४४. शोभा ४५. व्याधों ४६. मालियों ४७. वसन्त ऋतु ४८. प्रलय का दिन ४९. हिसाब का दिन ५०. अपमान ५१. कँपकँपाहट ५२. झुका हुआ ५३. राजमहलों ५४. नवसंसार ५५. राजपीठ की शक्ति ५६. आकाश ५७. नज़र ५८. संसार का भाग्य ५९. दर्शक

एक साहिल[60] है कि उभरा है भँवर की गोद से,
एक कश्ती है कि तूफ़ानों से टकराई है आज ।

रंग है हुस्ने-निगाराँ[61] जश्ने-गुल[62] फ़स्ले-बहार[63],
हिन्द की रूहे-जवाँ[64] शेरों में खिंच आई है आज ।

जल उठा नब्ज़ों में ख़ूँ, रौशन हुए दिल में चिराग़,
शायरे-आतिश-नवा[65] ने आग बरसाई है आज ।

अली सरदार जाफ़री

---

६०. किनारा ६१. प्रेयसियों की सुन्दरता ६२. फूलों का मेला ६३. वसन्त ऋतु ६४. वीर आत्मा ६५. अग्नि-भाषी कवि

ग़ज़ल

ग़म की नवा,[1] तरब[2] की सदा[3] जुर्म हो गई,
जीने की एक-एक अदा जुर्म हो गई।

होने लगी है अहले-वफ़ा[4] से भी बाज़पुरस,[5]
नाक़दरीये-जहाँ[6] से वफ़ा जुर्म हो गई।

ऐसी हवा चली चमनिस्ताने-दहर[7] में,
गुलबोसी-ए-नसीमो-सबा[8] जुर्म हो गई।

जो दिल है पाको-साफ़[9] वही नामुराद[10] है,
पाकीज़गीये-क़ल्बो-सफ़ा[11] जुर्म हो गई।

इक रह गई थी मज़हबे-इंसानियत[12] की बात,
वो बात भी बफ़ज़ले-ख़ुदा[13] जुर्म हो गई।

इस दर्जा[14] बढ़ गये हैं ख़ुदायाने-ज़ुल्मोज़ोर,[15]
बन्दों की आरज़ूये-बक़ा[16] जुर्म हो गई।

मज़लूम की दुआ में असर मानते हैं सब,
लेकिन ये क्या हुआ कि दुआ जुर्म हो गई।

दर्दे-ग़मे-हयात[17] के बढ़ने का ग़म नहीं,
रोना तो है कि उसकी दवा जुर्म हो गई।

---

१. आवाज़ २. दुःख ३. आवाज़ ४. प्रेम करने वाले ५. पूछ-ताछ ६. संसार का निरादर ७. संसार का बाग़ ८. बाग़ में चलने वाली हवाओं का फूलों को चूमना ९. पवित्र १०. जिसकी कामना पूरी न हो ११. हृदय की पवित्रता १२. मानवधर्म १३. ईश्वर की कृपा से १४. इतने अधिक १५. कठोरता के अनेको प्रभु १६. जीवन की कामना १७. जीवन के कष्ट

इस दर्जा हुक्मे-ज़ब्ते-फ़ुग़ाँ[18] है कि इन दिनों,
सोज़े-दिले-हज़ीं[19] की सदा जुर्म हो गई।

इस तमकनत[20] पै हुस्न को रोना पड़ेगा 'अर्श',
जिस तमकनत के दम से वफ़ा जुर्म हो गई।

'अर्श' मलस्यानी

१८. आहों को दबाये रखने का आदेश १९. दुखित हृदय की आवाज़
२०. घमंड

ग़ज़ल

ग़में-दुनिया[1] से ऐसी पायमाली[2] होती जाती है,
तेरी सूरत भी तस्वीरे-ख़्याली[3] होती जाती है।

कभी सर उनके क़दमों[4] में, कभी हाथ उनके दामन[5] पर,
तबीयत इन दिनों कुछ लाउबाली[6] होती जाती है।

निगाहें मुंतज़िर[7] थीं कब किरन फूटे, सहर[8] जागे,
मगर ये रात तो कुछ और काली होती जाती है।

न जाने बढ़ गये हैं कितने ख़म-गेसूये-जानाँ[9] के,
मुसल्लम[10] अब मेरी आशुफ़्ता-हाली[11] होती जाती है।

न ज़ुल्फ़ों के फ़िदाई[12] हैं न ज़ंजीरों के शैदाई[13],
ये दुनियाँ अब तो दीवानों से ख़ाली होती जाती है।

मेरा सारा लहू जिसकी हिना-बन्दी[14] में काम आया,
ख़ुदाया[15] अब वो जन्नत भी ख़याली होती जाती है।

मेरी तशनालबी[16] क्या मेरी मीनों[17] में छलक आई,
वो पैहम[18] भरते जाते हैं ये ख़ाली होती जाती है।

कब इतना होश बदमस्तों[19] को है जश्ने-बहाराँ[20] में,
बिसाते-रंगोबू[21] की पायमाली[22] होती जाती है।

---

१. संसार के दुःख २. बरबादी ३. काल्पनिक चित्र ४. चरण ५. आँचल ६. बेपरवाह ७. प्रतीक्षा में ८. सवेरा ९. प्रेमिका के बल खाये हुए केश १०. माना हुआ ११. अस्त-व्यस्त हालत १२. जान निछावर करने वाला १३. आशिक १४. मेंहदी लगाना १५. हे भगवान् १६. प्यास १७. मद्य-पात्र १८. लगातार १९. मदमत्त २०. वसन्त-उत्सव २१. रंग और सुगन्ध का बिछौना २२. बरबादी

किरन पड़ती है जूँ-जूँ शोखियों की इन निगाहों में,
'सरूर' उतनी ही सूरत भोली-भाली होती जाती है ।

आले अहमद 'सरूर'

---

२३. चंचलताओं

बाज़गश्त

ऐ मेरी अरज़े-वतन[1] ऐ अरज़े-पाक[2],
क़ल्बे-आलम[3] की ज़मीरे-ताबनाक[4]।

ऐ वतन ऐ ख़ित्ताये-अरबाबे-ज़ौक़[5],
ज़िन्दगी तेरी सरापा[6] जज़्बो-शौक़[7]।

हक़परस्तों[8] के, फ़क़ीरों के वतन,
दहर[9] के रोशनज़मीरों[10] के वतन।

नूर[11] का जौहर[12] है तेरी ख़ाक में,
इश्क़-रक़्साँ[13] है तेरे इदराक[14] में।

तेरा हर ज़र्रा है तारों से बुलन्द,
ख़ाक तेरी मिस्ले-अक्सीर[15] अरजुमंद[16]।

ऐ वतन ऐ हीर राँझे की ज़मीं,
सोहनी-ओ-महींवाल की बज़्मे-हसीं[17]।

ऐ मुहब्बत के परस्तारों[18] के देस,
ऐ शुजाओं[19] के जिगरदारों[20] के देस।

दायमी[21] है आज तेरी आबो-ताब[22],
तुझ पै चमके हैं हज़ारों आफ़ताब।

---

१. जन्म भूमि २. पवित्र भूमि ३. संसार का हृदय ४. चमकती हुई आत्म-शक्ति ५. कौतुकियों का स्थान ६. सिर से पाँव तक ७. खींचने की शक्ति ८. सत्य के पुजारियों ९. संसार १०. जिनके हृदय की आँख खुली हुई हो ११. ज्योति १२. मणि १३. नाचता हुआ १४. बुद्धि १५. रसायन के समान १६. कृतार्थ १७. सुन्दर सभा १८. पुजारियों १९. बहादुरों २०. वीरों २१. स्थायी २२. चमक-दमक

फ़िक्रे-वारिसशाह[२३] का मस्कन है तू,
क़ल्बे-हक़[२४]आगाह का मस्कन है तू।

तू है नानक की नज़र से फ़ैज़याब[२५],
क़ुतबे-दौराँ[२६] के असर से फ़ैज़याब।

रामतीर्थ तुझ पे नूर-अफ़्शाँ[२७] रहा,
अब्रे-मस्ती था सरूर[२८] अफ़्शाँ रहा।

ऐ वतन तू है वो पाकीज़ा[२९] जहाँ[३०],
जिस में गूँजा नारीये-ख़ुशहालख़ाँ[३१]।

और वो महरान[३२] गुल मर्दे-सलीम[३३],
जिस का दिल था बे-नियाज़े[३४]-यासो-बीम।

शायरे-रंगीं-मिज़ाजो-पुख़्ताकार[३५],
जावेदानी[३६] ज़िन्दगी का राज़दार।

वो बहादुर वो फ़क़ीरे[३७]-बेगलीम,
था तेरे ही तूरे[३८]-मानी का कलीम[३९]।

ऐ वतन ऐ मेरी उल्फ़त के चमन,
मेरी देरीनै[४०] मुहब्बत के चमन।

---

२३. पंजाबी लोक महाकवि वारिसशाह के चिंतन २४. सत्य को जानने वाला हृदय २५. कृतार्थ २६. हज़रत दाता गंजबख़्श (लाहौर) की उपाधि २७. ज्योति बरसाता रहा २८. हल्का-हल्का नशा २९. पवित्र ३०. संसार ३१. दर्रा खैबर का एक सूरमा और पश्तो ज़बान का महाकवि ३२. पश्तो ज़बान का एक कवि ३३. नेक आदमी ३४. आशा-निराशा से बेपरवाह ३५. अनुभवी ३६. अमर ३७. बिना कमली का साधु ३८. अरब देश की एक पहाड़ी पर मिलने वाला ज्ञान ३९. बात करने वाला ४०. पुरानी

तू अमानतदारे-माज़ी[41] है मेरा,
महरमे-असरारे[42]-माज़ी है मेरा।

मैं कि तेरा ही गुले-सदपारा[43] हूँ,
नकहते[44] गुल की तरह आवारा हूँ।

दश्ते-गुरबत[45] में वतन से दूर हूँ,
फूल हूं अपने चमन से दूर हूँ।

ऐ वफा रस्मो-निशात-आईं[46] चमन,
ऐ मेरे बिछड़े हुये रंगीं चमन।

आज फिर तेरी तरफ़ हूँ तेज़गाम[47],
देख इक पाबन्द[48] का जौके[49]-खराम।

दश्ते-गुरबत छोड़ कर आया हूँ मैं,
सुरते-बादे-सहर[50] आया हूँ मैं।

तू मुझे मेरी अमानत सौंप दे,
फिर मुझे अपनी मुहब्बत सौंप दे।

जगन्नाथ 'आज़ाद'

---

४१. बीते हुए ज़माने की अमानत रखने वाला ४२. पुराने युग के भेदों को जानने वाला ४३. बिखरा हुआ फूल ४४. फूल की सुगन्ध ४५. पराई ज़मीन ४६. निबाह और प्रेम की रीत रखने वाला तथा आनन्ददाता ४७. तेज़ चलने वाला ४८. कैदी, लाचार ४९. चलने का शौक़ ५०. सवेरे की हवा के समान तेज़

ग़ज़ल

वादा भी दर्दे-दिल का सहारा न हो सका,
बेचारगी का एक भी चारा न हो सका।

ग़म भी तेरा ही ग़म है ख़ुशी भी तेरी ख़ुशी,
दोनों में एक भी तो हमारा न हो सका।

सहरा से ऐ जुनूँ मुझे इनकार तो नहीं,
लेकिन अगर वहाँ भी गुज़ारा न हो सका।

ये जानते हुए भी कि बेसूद है फ़ुग़ाँ,
ख़ामोश तेरे दर्द का मारा न हो सका।

बेगाना ही रहा दिले-बेगानगी पसन्द,
कमबख़्त एक दिन भी हमारा न हो सका।

निकला मैं बू-ए-गुल की तरह छोड़कर चमन,
फूलों की शोख़ियों में गुज़ारा न हो सका।

वो क़तरा[12] क्या सदफ़[13] में जो गौहर[14] न बन सका,
वो ज़र्रा[15] क्या जो आँख का तारा न हो सका।

सदमा[16] शिकस्ते-अहद[17] का शायद उन्हें भी है,
क़ौलो-क़रार[18] फिर जो दोबारा न हो सका।

---

१. मजबूरी २. इलाज ३. मरुभूमि ४. उन्माद ५. व्यर्थ ६. दोहाई ७. चुप ८. प्रेम ९. पराया १०. दूरी चाहने वाला हृदय ११. फूल की सुगन्ध १२. पानी की बूँद १३. सीपी १४. मोती १५. कण १६. ग़म, दुःख १७. प्रतिज्ञा का टूटना १८. वचन

होता न क्यों वक़ारे-मुहब्बत[19] किनाराकश[20],
अहले-हवस[21] में रह के गुज़ारा न हो सका।

ऐ 'जोश' अर्ज़े-हाल[22] पे नादिम हूँ इस क़दर,
कहने का हौसला भी दोबारा न हो सका।

'जोश' मलस्यानी

---

१९. प्रेम की प्रतिष्ठा २०. अलग २१. लोलुप लोग २२. अपनी बात कहना

अक़्लो-होश

न जाने कब सबीहे-नाज़ होगी ज़रफ़िशाँ साक़ी,
अभी तो चर्ख़ पर है सबहे-काज़िब का समाँ साक़ी।

ग़रीबे-शहर हूँ गोशो[6]-ज़बाँ से काम लूँ क्योंकर ?
न कोई दीदावर साक़ी न कोई नुक्तादाँ साक़ी।

वहाँ माक़ूलियत की और पुरसिश हो ये नामुमकिन,
जहाँ मजज़ूबियत[11] है दौलते-कौनो-मकाँ साक़ी।

मुसल्लम[13] हो जहाँ तौक़ीर[14] हैजानो-तअस्सुबों की,
वहाँ तमकीने-ग़ौरो-फ़िक्र[16] की हुरमत कहाँ साक़ी।

रिवायाते-कुहन[18] की आस्तीने[19]-तंग भरने को,
रुख़े[20]-अफ़्कार पर डाली गई हैं झुर्रियाँ साक़ी।

कहीं बेहतर है दानाई से कू-ए-ऐशो[21]-मस्ती में
वो नादानी उड़ा दे अक़्ल की जो धज्जियाँ साक़ी।

वहाँ इक जुर्म है अनफ़ासे-हिकमत[22] की सहर[23]-बारी।
जहाँ गूँजा हुआ है हर्फ़े[24]-ईमाँ का धुआँ साक़ी।

अहले[25]-ओ-अहरमन[26] गुंगो[27]-सुलेमाँ[28] आदमो-हव्वा।
मुक़द्दस[29] वाहमों[30] की देख तू ख़ल्लाक़ियाँ साक़ी।

---

१. सुन्दरता का सवेरा २. सोना बरसाना ३. आकाश ४. मुँह अँधेरे ५. अजनबी ६. कान और ज़बान ७. नज़र रखने वाला ८. सूक्ष्मदर्शी ९. यथार्थ १०. पूछ-ताछ ११. दीवानगी, कलन्दरी १२. संसार-भर की दौलत १३. प्रमाणित १४. इज़्ज़त १५. ऐंठन और भावनाओं का आवेश १६. सोच विचार की गंभीरता १७. इज़्ज़त १८. पुरानी परम्पराएँ १९. तंग आस्तीन २०. चिंतन का चेहरा २१. ऐश और मस्ती का कूचा २२. ज्ञान की साँसें २३. मोतियों की वर्षा २४. अन्धविश्वास २५. परमात्मा २६. आग परस्तों का ख़ुदा २७. पक्षी २८. सुलेमान; एक इज़राइली पैग़म्बर २९. पवित्र ३०. वाहिमा : वहम की शक्ति ३१ सृजन की शक्तियाँ

तसव्वुर[32] बोलता है एक जिस्मे-नाज़नीं[33] बनकर,
मुआज़-अल्लाह[34] फ़रेबे-नफ़स[35] की परछाइयाँ साक़ी ।

ये माना सख़्त प्यासा हूँ मगर आँखें नहीं फूटीं,
कहूँ क्योंकर सुराबे-मुर्दा[36] को आबे-रवाँ[37] साक़ी ।

हदीसे-अक़्ल[38] की आवाज़ कानों तक नहीं आती,
वो शोरिश[39] है दरूने-हल्क़ा-ए-रूहानियाँ[40] साक़ी ।

ये चर्चे हैं वहां अर्शे-बरीं[41] से नूर उतरता है,
थिरक उठती हैं ढोलक पर जहाँ दरवेशियाँ[42] साक़ी ।

उन्हें क्या इल्म जो इक जस्त[43] में जाते हैं मौला तक,
कि सदहा साल[44] में खुलता है इक सर्रेनिहाँ[45] साक़ी ।

क़यामत है ख़ुदी का देवता भी ये नहीं कहता,
कि ऐ इन्सान तू ख़ुद है ख़ुदाये ईन-ओ-आँ[46] साक़ी ।

पहन कर मग़रिबी[47] दानाओं की सर से बड़ी टोपी,
नया मुल्ला सुनाता है पुरानी दास्ताँ[48] साक़ी ।

ये नामुमकिन है क़दमों को मिला कर कूए-दानिश[49] में,
चले नटशे[50]-ओ-हल्लाजो[51]-ह्यूमो[52]-बरगसाँ[53] साक़ी ।

क़यामत है कि अब भी इस ख़राबाते-मसायल[54] में,
नई धज से पुराना इश्क़ है पीरे-मुग़ाँ[55] साक़ी ।

---

३२. ध्यान ३३. कोमल शरीर ३४. अल्लाह की पनाह ३५. श्वास का धोखा ३६. मृगतृष्णा ३७. बहता जल ३८. अक़्ल की हदीस : सच्ची बात ३९. ऊधम, चीख़-पुकार ४०. रूहानी लोगों के घेरे के अन्दर ४१. ऊँचा आकाश, गोलोक ४२. साधुपन ४३. छलाँग ४४. सैकड़ों ४५. छुपा हुआ भेद ४६. इस जहान और अगले जहान का ख़ुदा ४७. पश्चिमी ४८. दास्तान, कहानी ४९. अक्ल की गली ५०. जर्मन फ़िलासफ़र नीट्शे ५१. मनसूर ५२. यूरोपियन फ़िलासफ़र ह्यूम ५३. योरुपीय फ़िलासफ़र बेर्गसाँ ५४. धार्मिक विषयों की मधुशाला–संसार ५५. वयोवृद्ध सुरागुरु

वही इश्क़े-सुबुक-सर[56]-अक़्ल की जो ख़ैर से ज़िद है,
जिसे मुतलक़[57] नहीं अन्दाज़ा-ए-सूदो-ज़ियाँ[58] साक़ी।

वही इश्क़-फ़रेब-अंगेज़[59] जिसके दामों[60] में आकर,
दुमे-अज़दर[61] पकड़ लेता है तिफ़्ले-नातवाँ[62] साक़ी।

वही नाआशना-ए-आगही इश्क़े-जुनूँपरवर[63],
लिये फिरता है इक मुद्दत से जो तीरो-कमाँ साक़ी।

वही इश्क़ो-जुनूँ[64] जिसकी बदौलत दैरे-मस्ती[65] में,
बजाती है तमन्ना[66] घंटियों पै घंटियाँ साक़ी।

वही इश्क़े-ग़लत-अन्देश[67] जिस के इक इशारे पर,
ख़ुशी से ज़हर खा लेते हैं लाखों नौजवाँ साक़ी।

लिबासे-इश्क़[68] में जो ज़ब्त[69] है वो कौन समझेगा,
नहीं जिस इश्क़ की दस्ते-फ़रासत[70] में ईमाँ[71] साक़ी।

बहुत कम लोग वाक़िफ़ हैं कि इश्क़े-पुख़्ता-ओ-बालिग़[72],
निहाले-इश्क़[73] की है एक शाख़े-मैपैमा[74] साक़ी।

ख़ुशी से आतिशे-नमरूद[75] में जो इश्क़ कूदा था,
उसे हासिल थी इल्मो-अक़्ल[76] की ताबो-तवाँ[77] साक़ी।

---

५६. हल्के सिर वाला इश्क़　५७. बिल्कुल　५८. नफ़ा-नुक़सान का अन्दाज़ा　५९. धोखा देने वाला इश्क़　६०. जाल　६१. अजगर की दुम　६२. निर्बल बालक　६३. वही उन्माद को पालने वाला इश्क़ जो ज्ञान से बेगाना है　६४. इश्क़ और जुनून　६५. मस्ती का मंदिर　६६. कामना　६७. गलत मार्ग बताने वाला इश्क़　६८. इश्क़ का लिबास　६९. धीरज　७०. अक़्ल के हाथ　७१. ईमान　७२. पक्का　७३. प्रेम का पौदा　७४. सुरा बरसाने वाली टहनी　७५. नमरूद की आग—यहाँ एक कहानी की ओर इशारा है, नमरूद एक बादशाह था उसके सामने हज़रत इब्राहीम नाम के एक सामी पैगंबर ने जब नमरूद के धर्म के खिलाफ़ एक ख़ुदा के होने और उसकी भक्ति का प्रचार किया तो नमरूद ने उन्हें एक बड़े गढ्ढे में आग जला कर डाल देने का हुक्म दिया। आप खुशी-खुशी आग में कूद पड़े और वह आग बाग बन गई　७६. ज्ञान और बुद्धि　७७. चमक और शक्ति

नहीं लेता है पीरे-अक़्ल[78] से जब इज़्ने-जौलानी[79],
तो बन जाता है तिफ़्ले-अश्क[80] सैले[81]-बेअमाँ साक़ी।

ये कैसी तीरीं[82]-बख़्ती है कि बेख़ौफ़ो-ख़तर[83] अब भी,
यक़ीं[84] के शीशों[85]-ओ-मरमर पै रक़्साँ[86] है गुमाँ साक़ी।

ख़िरद के यावरे-अनसारों[87] ढूँढे से नहीं मिलते,
जुनूँ[88] की पुश्तें[89] पर है लश्करे[90]-लाहूतियाँ साक़ी।

चिराग़े-ख़ानों[91]-ए-बुक़रात है वो काफ़िला जिसने,
क़लन्दर[92] को बनाया है अमीरे-कारवाँ[93] साक़ी।

चढ़े बैठे हैं कब से आसमानों पर जहाँ वाले,
ज़मीं पर ले रहा है करवटें राज़े-जहाँ[94] साक़ी।

कभी गूँगे सितारों से न यूँ सरगोशियाँ[95] करते,
समझ सकते अगर एहबाब[96] ज़र्रों[97] की ज़ुबाँ साक़ी।

थके जब ग़ौर करने से तो शाख़े[98]-फ़िक्र से कट कर,
बनाया कुब्बा-ए-वजदानियत[99] पर आशियाँ[100] साक़ी।

---

७८. बुद्धि में गुरु ७९. इज़्न : इजाज़त : आज्ञा, जोलानी : तीव्रता ८०. आँसू रूपी बालक ८१. बेपनाह सैलाब ८२. दुर्भाग्य ८३. निर्भय ८४. विश्वास ८५. काँच और सफ़ेद पत्थर ८६. नाचता हुआ ८७. बुद्धि के सफल साथी ८८. उन्माद ८९. पीठ ९०. ब्रह्मानंद में रहने वालों की सेना ९१. एक नामी यूनानी फ़िलासफर बुक़रात के घर का दीप ९२. कलंदर : किसी बात की चिन्ता न करने वाला मस्त साधु, जो धर्म के नियम का पाबंद हो, यह भी सूफ़ी मत का एक चरित्र है। इक़बाल ने अपनी कविता में इसे खास स्थान दिया है। यह इक़बाल के आदर्श मानव का प्रतीक है। इक़बाल क़लन्दरी या औघड़पन की चाहना करता है, जो एक दार्शनिक के मुक़ाबिले में क़लन्दर या औघड़ को कोई स्थान नहीं देते ९३. काफ़िले का सरदार ९४. राज़ेजहा : संसार का भेद ९५. कानाफूसी ९६. मित्र, दोस्त ९७. कण ९८. सोच-विचार की टहनी ९९. अंतर्ज्ञान का शिखर १००. घोंसला या घर

जब उकताये दिमाग़े[101]-राज़जू के क़सरे[102]-संगीं से,
बनाये शर्क़ियों[103] ने दिल में शीशे के मकाँ साक़ी।

इबादत[104] के मुग़ोंदी[105] राहे-जौदत[106] में हुदी-ख़्वाँ[107] हैं,
लगाये तुर्रा हाये अफ़सरे[108]-यूनानियाँ साक़ी।

न जाने बरबते[109]-हिकमत पै कब मिज़राबें[110] दौड़ेंगी,
अभी तो हुक्मराँ[111] है शोरे-नाक़ूसो-अज़ाँ[112] साक़ी।

किसे समझाऊं किन अल्फ़ाज़ में और किस तवक़्क़ो[113] पर,
कि नूरे-अक़्ल[114] से रोशन है ये सारा जहाँ साक़ी।

कि दानिश[115] सिर्फ़ दानिश है लिबासे-मर्दे-कामिल[116],
कि हिकमत[117] सिर्फ़ हिकमत है कुलाहे-मुक़बिलाँ[118] साक़ी।

दयारे[119]-इश्क़ इक आज़ाद मण्डी है शरारों[120] की,
फ़राज़े-अक़्ल[121] पर है माहो-परवीं[122] की दुकाँ साक़ी।

बस इक तू दाद दे सकता है मेरी इस तबाही की,
कि मैं बेदार[123] हूँ सोते हुओं के दरमियाँ[124] साक़ी।

ये हिन्दो[125]-पाक क्या कुल एशिया इक ख़्वाबे-आबा[126] है,
ये तेरा 'जोश' बेदारी को ले जाये कहाँ साक़ी।

'जोश' मलीहाबादी

---

१०१. वह दिमाग़ जो भेद की खोज करता है १०२. पथरीले महल १०३. एशिया के रहने वाले १०४. (निर्बुद्ध) उपासना १०५. झिंझोरा पीने वाले १०६. प्रतिभा का रास्ता १०७. हुदी : वह गीत जो ऊँट हाँकने वाले ऊँटों को हाँकते समय गाते हैं। हुदी गाने वाला १०८. यूनान के विद्वानों के ताज का फुँदना १०९. दर्शन का सितार ११०. सितार बजाने का छल्ला १११. राज करने वाला ११२. शंख और अज़ान का शोर ११३. आशा ११४. बुद्धि का प्रकाश ११५. बुद्धि ११६. बुद्धिमान का लिबास ११७. दर्शन ११८. महान पुरुषों के सिर का ताज ११९. प्रेमनगर १२०. चिंगारियाँ १२१. बुद्धि का शिखर १२२. चन्द्रमा और तारे १२३. जाग्रत १२४. बीच १२५. भारत और पाकिस्तान १२६. पुरखों के समय से स्वप्न में मस्त

ग़ज़ल

साग़र[1] उठा लिया, कभी मीना[2] उठा लिया
तौबा जो याद आ गई, रक्खा उठा लिया।

लाता है रोज़ जान पै आफ़तें नई-नई
जा तुझसे हाथ ए दिले-शैदा[3] उठा लिया।

आई बहार आई चमनज़ारे-इश्क़ में
अश्कों[4] में रँगे-ख़ूने-तमन्ना[5] उठा लिया।

अब अश्के-ग़म खटकते हैं आँखों में इस तरह
गोया पलक से रेज़ाये-मीना[6] उठा लिया

क्या-क्या सितम गुज़र गये जाने-ग़यूर[7] पर
एहसाँ 'असर' जो हमने किसी का उठा लिया।

जाफ़र अली ख़ाँ 'असर' लखनवी

---

१. प्याला २. मद्य-पात्र ३. प्रेमी हृदय ४. आँसुओं में ५. कामना के लहू का रंग ६. मद्य-पात्र का कण ७. ग़ैरत वाली आत्मा

ग़ज़ल

जाग ऐ नसीमे[1] ! खन्दा[2]-ए-गुलशन करीब है
उठ ऐ शिकस्ताबाल[3], नशेमन[4] करीब है ।

तारीके[5] रात और भी तारीक हो गई
अब आमद आमदे[6]-मै-ए-रोशन करीब है ।

एवाँन[7]-ओ-पासबाँ[8] के हिजाबात[9] बेमहल[10]
इस दस्ते[11]-शौक़ से तेरा दामन[12] करीब है ।

हर साँस इन्तशारे[13]-फ़िरावाँ से बेक़रार[14]
इस कारवाँ से क्या कोई रहज़न[15] करीब है ।

इन बिजलियों की चश्मके[16]-बाहम तो देख लें
जिन बिजलियों से अपना नशेमन करीब है ।

मुईन अहसन 'जज़्बी'

---

१. ठंडी हवा २. बाग की मुस्कान, बसन्त ऋतु का आगमन ३. टूटे परों वाला ४. घोंसला ५. अंधेरी रात ६. पूर्णिमा के चन्द्रमा का निकलना ७. रंगमहल ८. चौकीदार ९. पर्दे १०. बेमौक़ा ११. चाहत का हाथ १२. आँचल १३. अधिक बिखराव १४. व्याकुल, बेचैन १५. बटमार १६. आपस की लड़ाई

चिराग़ जल रहा है

पत्थरों के क़ब्ज़े में,
नग़्मे-आबगीना है,
धूप में वो तेज़ी है,
मुज़महिल पसीना है।

रास्ते की सख़्ती से,
गीत टूट जाते हैं,
ज़ुलमतों से लड़ने में,
दोस्त छूट जाते हैं।

काग़ज़ों के सीने में,
गीत सरसराते हैं,
हर क़लम की आहट पर,
गर्दनें उठाते हैं।

फिर भी चाहता हूँ जो,
वो लिखा नहीं जाता,
ज़िन्दगी का अफ़साना,
यूँ कहा नहीं जाता।

आँसुओं की क़न्दीलें,
टूट-टूट जाती हैं,
क़हक़हों की वीणा को,
सिसकियाँ बजाती हैं।

नजदे के बयाबाँ से,
अब सदा नहीं आती,
इश्क़ की महक लेकर,
अब हवा नहीं आती।

राहे-वहशते-दिल को,
इन्तज़ार किस का है,
घंटियाँ नहीं बजतीं,
रास्ता अकेला है।

ज़ुल्फ़ की हसीं नागिन,
हुस्न ही को डसती है,
इश्क़ की घटाओं से,
तश्नगी बरसती है।

ज़िन्दगी की तलख़ी पर,
मौत मुस्कराती है,
ख़ल्वते-निगारों में,
घर की याद आती है।

ज़ुलमतों में छोड़ा है,
राहे-माहो-अख़्तर ने,
किस जगह पे रोका है,
कारवाँ को रहबर ने।

---

१ बुलबुले का प्रबंध २. उदास ३. अन्धेरों ४. सऊदी अरब का एक नगर, मजनूँ की जन्मभूमि ५. हृदय के पागलपन का रास्ता ६. प्यास ७. कड़वाहट ८. प्रेमिकाओं के शयनगृह ९. सितारों और चन्द्रमा का रास्ता १०. क़ाफ़िला ११. पथ-प्रदर्शक

आँगनों की अस्मतें भी,
राह भूल जाती हैं,
वादियों के किस्सों की,
साँस फूल जाती है।

हुजला-ए-अरूसी[13] में,
बेवगी[14] की तारीकी,
बाबुलों की डोला पर,
अब दुल्हन नहीं जाती।

टूटी-फूटी दीवारें,
दोस्तों को तकती हैं,
हर दराज़ की आँखें,
नूर[15] को तरसती हैं।

ये यतीम[16] खपरैलें,
रात-भर सिसकती हैं,
ओस के लबादे से,
आसमाँ को तकती हैं।

ज़िन्दगी के रस्ते में,
हर क़दम पै सख़्ती है,
महबसों[17] की पस्ती है,
दारों[18] की बुलन्दी है,

फिर भी गीत गाता हूँ,
फिर भी साज़ उठाता हूँ,
महफ़िलों की ज़ुल्मत में,
शमअ सी जलाता हूँ।

कारवाने-फ़रदा की,
हिम्मतें बढ़ाता हूँ,
दार की बुलन्दी से,
रास्ता दिखाता हूँ।

क्योंकि मैं समझता हूँ,
दिल में आस आती है,
ज़ुल्मतों[19] के बढ़ने से,
सुबह पास आती है।

ओस ही के आँसू से,
रंगे-गुल[20] निखरता है,
हर तबस्सुमे-गुनचा[21],
इन्तज़ार करता है।

रात की सियहकारी[22],
पेचो-ताब खाती है,
दूर उफ़क़[23] की चिलमन से,
धूप मुस्कराती है।

---

१२. सतीत्व १४. वैधव्य १५. ज्योति १६. अनाथ १७. जेलखानों १८. सूली १९. घोर अन्धेरे २०. फूल का रंग २१. कली की मुस्कान २२. पाप २३. क्षितिज

खेतियों की गोदी में,
आफ़्ताब[24] पलता है,
कारख़ानों के दिल में,
इन्क़िलाब पलता है।

आबशारों[25] की वहशतें[26],
अब रजज़[27] सुनाती हैं,
नद्दियों की शोख़ी[28] भी,
आरती चढ़ाती है।

कोहसारों[29] के दिल में,
एक आग जलती है,
अब वतन की मिट्टी भी,
करवटें बदलती है।

झोंपड़ों की ज़ुल्मतें[30] में,
इक यक़ीं[31] चमकता है,
आँगनों के ढाले में,
फ़ैसला महकता है।

अब तवे के सीने पर,
हौसला दहकता है,
रोटियाँ नहीं पकतीं,
इन्क़िलाब पकता है।

ख़ुश्क[32] रेत से कह दो,
महबसों[33] का ये प्याला,
वक़्त के समन्दर को,
क़ैद कर नहीं सकता।

ज़िन्दगी के मन्दिर में,
फूल ये चढ़ाये हैं,
कितनी आरज़ूओं से,
ये दिये जलाये हैं।

और लोग कहते हैं,
ज़िन्दगी के मन्दिर का,
वो दिया नहीं जलता,
जिससे ये उजाला था।

और मैं ये कहता हूँ,
ज़ीस्त[34] मर नहीं सकती,
ज़िन्दगी के सोते में,
रेत भर नहीं सकती।

जी रहा है खेतों में,
इन्क़िलाब का रहबर[35],
जी रहा है हर घर में,
शान्ति का पैग़म्बर[36]।

---

२४. सूर्य २५. झरनों २६. खिन्नता २७. वीर-रस की कविता २८. चंचलता २९. पहाड़ों ३०. अन्धेरा ३१. भरोसा, विश्वास ३२. सूखी ३३. बहुत-से जेलख़ाने ३४. जीवन ३५. पथ-प्रदर्शक ३६. परमात्मा का सन्देश लाने वाला

बर्फ़ के समन्दर में,
आफ़ताब की कश्ती,
टण्ड्रा के सीने में,
किसने ज़िन्दगी भर दी।

ज़ार के बयाबाँ से,
बस्तियाँ उभर आईं,
भूख के समन्दर से,
खेतियाँ उभर आईं।

नन्हे मुन्हे हाथों ने,
सूअरों का थन छोड़ा,
तेल के ख़ज़ानों ने,
साँप ही को डस डाला।

वालगा की लहरों में,
कौन गुनगुनाता है?
क़ाफ़ की बुलन्दी[37] से,
कौन मुस्कराता है?

वाक़िफ़े-रमे-आहू[38],
हर चमन में ज़िन्दा है,
इन्तिशार[39] का दुश्मन,
अंजुमन[40] में ज़िन्दा है।

राज़दारे-गुन्चा[41] था,
हर चमन में ज़िन्दा है,
ज़िन्दगी का यूसुफ़[42] था,
पैरहन[43] में ज़िन्दा है।

फ़न[44] को ज़िन्दगी देकर,
अहले-फ़न[45] में ज़िन्दा है,
वो जबीने[46]-इन्साँ की,
हर शिकन[47] में ज़िन्दा है।

जिसारे आदमीयत का,
हौसला सँभलता है,
हाफ़िज़े[48] की दुनियाँ में,
वो चिराग़ जलता है।

राही मासूम रज़ा

---

३७. ऊँचाई ३८. हिरन की दौड़ को जानने वाला ३९. बिखराव ४०. सभा ४१. कली के भेद को जानने वाला ४२. मिस्र का शाहज़ादा, एक पैगम्बर (एक सामी अवतार) ४३. लिबास ४४. कला ४५. कलाकार ४६. मानव का माथा ४७. सलवट ४८. स्मृति

कन्नड़

चयन : ए. एन्. मूर्तिराव

अनुवाद : हिरण्मय

कवि-नाम	कविता
अंबिकातनयदत्त (द. रा. बेंद्रे)	राह की कुतिया
कुवेंपु (के. वी. पुट्टप्प)	घर-घर की तपस्विनी के प्रति
के. एस. नरसिंहस्वामी	तेरी ध्वनि आ रही है सदा मेरे पीछे-पीछे
गोपालकृष्ण अडिग	गड़बड़नगर
चेंतवीर कणवि	नियमोल्लंघन
जयदेवि तायि लिगाड़े	भूख
जी. एस. शिवरुद्रप्प	क्रांतिकारी
वी. एच. श्रीधर	नव्य जीवन
रं. श्री. मुगलि	शीतल पवन
वी. कृ. गो. (वी. कृ. गोकाक)	मुक्त जीवी

बीदि नायि

बीदि नायि राधिगॆ
हॊट्टॆतुंब गॊलॆगळु
हॊट्टॆ तुंब ऎदॆय तुंब
जोलु गॊलॆय सालुगळु ।

बीदि नायि राधिगॆ
ऊरतुंब गॆळॆयरु
सर्व साक्षि इवळ मणय
नोडुववरु ऎळॆयरु ।

बीदि नायि राधिगॆ
असरंतवु गरिगळु
हॊट्टॆगॆंब चिंतॆयिल्ल
इवळॆ अपर हॊरॆवळु ।

बीदि नायि राधिगॆ
बेकु अवळिगॆल्लरु
हरक तिरुक हादिहोक
चोर पोर नल्लरु ।

राह की कुतिया

राधी है कुतिया राह की
उसके पेट पर भरे हैं थन,
लटकते थनों की हैं कतारें
पेट भर, वक्ष पर उसके।

राधी है कुतिया राह की
उसका स्नेही है गाँव-भर,
प्रणय उसका है सब पर प्रकट
छोटे लड़के हैं जिसके दर्शक।

राधी है कुतिया राह की
अनगिनत हैं जिसके बालक-बच्चे,
उसे है नहीं कुछ पेट की चिन्ता
पालन भी उनका करती है वही।

राधी है कुतिया राह की
गाँव में हैं सब उसके अपने,
मैले-कुचैले और भिखमंगे,
प्रेमी उसके हैं चोर औ' चमार भी।

राधी है राह की कुतिया
उनका न कोई धंधा न वेतन
कूड़ा-करकट गुदड़ी-मसान
उसकी है यही बपौती जागीर।

नीदि नायि राधिगे
मळॆ बिसिलिगॆ साधन
हुणिसॆ मरद नॆरळु हॊदलु
"एव्वने" आराधन

नीदि नायि राधिगे
मॊन्ने हेगॊ सत्तलु
दुरुळनॊब्ब एकॊ नक्क
हॊल सूळॆयु अन्तलु

अंबिकातनयदत्त

१. हुणिसॆ मरद कॆळगिरुव एलु मक्कळ तायि।

राखी है राह की कुतिया,
हवा-पानी से बचने का साधन
इमली के पेड़ की छाया है उसे,
जिसके तले करती 'एल्वैन'[1] आराधन।

राखी थी कुतिया राह की,
हाल में ही हो गई उसकी मृत्यु
जिसे सुन, एक दुष्ट हँस पड़ा
रो पड़ी वेश्या बाजार की।

अंबिकातनयदत्त

१. इमली के पेड़ के नीचे वास करने वाली सात बच्चों की माँ

मनॅ मनॅय तपस्विनिगॆ

मनॅ मनॅयलि नीनागिहॅ गृह श्रीः
हॅसरिळद हॅसरु निनगॆ 'गृहिणी' ।

हे दिव्य सामान्यॆ,
हे भव्य देवमान्यॆ,
चिरंतन अकीर्ति कन्यॆ,
अन्नपूर्णॆ, अहंशून्यॆ,
नमो निनगॆ नित्य धन्यॆ ।

राष्ट्र सभा अध्यक्षिणि
श्रीमति आ सरोजिनी,
झांसिराणि लक्ष्मि बाई
अवरिगॆल्लॆ महा तायि
नीनॆ बसिरु, नीनॆ उसिरु,
नीनिद्दरॆ अवर हॆसरु ।

भद्रता समितियल्लि
विजय लक्ष्मि वाग्मितॆ
आध्यात्मिक संपत्तिन
निन्न सूमदिदिरिनल्लि
राजकीयदल्पतॆ ।

अडुगॆ मनॆयॆ पर्णशालॆ,
ऒलॆय आग्नि मख ज्वालॆ ।
बिडुविलद कटुतपस्यॆ;

घर-घर की तपस्विनी के प्रति

घर-घर की तू ही गृह-श्री
तेरा नाम अनाम है गृहणी ।

हे दिव्य सामान्या,
हे भव्य देवमान्या,
चिरंतन अकीर्ति वन्या,
अन्नपूर्णा, अहं-शून्या,
नमन तुझे नित्य धन्या ।

राष्ट्र-सभा अध्यक्षिणी
वह श्रीमती सरोजिनी,
झाँसी रानी लक्ष्मीबाई
उन सबकी महामाता
तू ही गर्भ, तू ही साँस,
तुझसे ही उनका नाम

सुरक्षा-समिति में
विजयलक्ष्मी की वक्तृता
आध्यात्मिक संपत्ति की
तेरी विशालता के सम्मुख
राजनीति की अल्पता है ।

पाकशाला ही पर्णशाला,
आग चूल्हे की, मख-ज्वाला ।
अनवरत कठिन तपस्या,

हुण्णिमेयू अमावास्ये ।
आदरू अदीनास्ये,

नीनें नमगें धैर्य, आशें ।
निन्नपादकिदो पूजॆ,
पूत कवन धवल लाजॆ ।
बॆंकि, हॊगॆ, हॊगॆ, बॆंकि ।
मसि, मुसुरॆ, मुसुरॆ, मसि ।
आदरेनु । निश्शंकि
चौधराणि महायसि ।
नीनें गरति, नीनॆये रति,
ऎदॆ ऎदॆ यू हूबारतिः
नीनिरदिरॆ लोकद गति
दुर्गति, मृति, देवरॆ गति ।
रक्षिसु, ओ दैनंदिन
संसारद रसरूपद
चिरतापसि, सुर रूपसि,
यति सति शिवॆ, ओ पार्वति ।

हिडियदिरलि निनगादरू
गंडसरा कुत्तः
मख्यातिय पडॆयुवुदॊंदु
प्रापंचिक पित्त ।
हॊसलाचॆगॆ नीनोतरॆ
हॊस लीचॆगॆ बॆळकितः
हॆसरासॆगॆ नी सोतरॆ
उसिरासॆयॆ नमगिल्ल ।

पूर्णमासी भी अमावस्या ।
तो भी अदीनास्या

तू ही हमारी धैर्य, आशा ।
तेरे पद की करूँ पूजा,
पूत धवल कविता, लज्जा ।
आग, धुआँ, धुआँ, आग ।
कालिख, वासी, वासी, कालिख ।
तब भी निश्शंकिनी
चौधराणी महीयसी ।
तू ही गृहिणी, तू ही रति,
हृदय-हृदय की सुमन-आरती :
तू न हो तो, लोक की गति
दुर्गति, मृत्यु, विधि ही गति ।
रक्षा कर, ओ नित्य
संसार के रस-रूप की
चिर-तापसी, ख़ुर-रूप-सी,
यति सती शिवा, ओ पार्वती ।

तुझे न लगे कभी
पुरुषों की वह बीमारी :
ख्याति पाना है बड़ी
जग की एक बीमारी ।
देहली के उस पार तू जायगी
तो उसके इस पार आलोक नहीं :
नाम की भूखी तू हो जायगी
तो नहीं आशा हमारे जीने की ।

निमिदलॆ हिमॊदिद्दॆ

जन जनदा कुसंस्कृत
निमिदलॆ शॆडॆतडगिदॆ
मन मनदा असंस्कृति
रामायण महाभारत
शाकुंतल कादंबरि
बहु कविगळ रसाप्रिय
बहु कलॆगळ रसहप्रिय
तुष्टिगॆ मॆण् पुष्टिगॆ नीन्
देवतॆयागिरलॆ,
आ सीतॆयॊ महाश्वेतॆयॊ
सावित्रियॊ दमयंतियॊ
आरादरु सरियॆ
हॆगलॆणॆ निलगाणॊगॆगॆ
पिरिदनु नानरियॆ ।

ताळुसिदॆ बाळुसिदॆ
निमिदॆमा इळॆ ।
हे दिव्यॆ, सामान्यॆ,
मनॆ सनॆया ऊर्मिळॆ,
गृहिणि, गरति, देवि, तायि,
हॆसरिल्लद महिळॆ
मणिवनु इदॊ निसर्गगी
हुसिवॆ सरिगॊ भरळागद
हॆसरॊल्लद हसुळॆ ।

तुझसे ही दबी पड़ी है
जन-जन की कुसंस्कृति :
तुझसे ही दबी पड़ी है
मन-मन की असंस्कृति
रामायण-महाभारत
शाकुंतल-कादंबरी
बहु कवियों की रस-सृष्टि की
बहुकलाओं की रस-दृष्टि की
तुष्टि तथा पुष्टि के लिए
तू ही देवी है :
वह सीता महाश्वेता
सावित्री-दमयंती
चाहे जो भी हो
तेरे समान तेरा बड़प्पन है
सचमुच लासानी।

तुझसे ही बनता है, जीता है
हमारा यह संसार
हे दिव्या, सामान्या,
घर-घर की उर्मिला,
गृहिणी, कुलीना, देवी, माँ,
नाम-रहित महिला,
तेरे चरणों में नमन
करता है यह अबोध शिशु
जो न मोहित है झूठे नाम से।

सौख्यद नॆलॆ, शांतिय मनॆ,
सौंदर्यद शिव मंदिरॆ,
सामान्यद सिरितवरॆ,
हिडियदिरलि निनगवरा
हॊ गळिकॆया कीर्तिय शनि,
गृह गृह गृह तपस्विनी ।
पत्रिकॆ गळ दप्पक्षर
मेण् चित्रद क्षणिकक्कॆ नी
बॆप्पागदॆ हे जननी,
ऒप्पागिरु, ऒलवागिरु
निजमतदलि ऋजुपथदलि
नडॆसॆम्मनु, ऋतुदर्शिनि
हे मनुकुल कल्याणी

कुवॆंपु

सुख की खान, शांति की आगार,
शिव-मंदिर सुंदरता की
सामान्या की श्री-निधि,
तुझे न लगे उनकी
कीर्ति या प्रशंसा शनि,
गृह-गृह-गृह की तपस्विनी।
मोटे अक्षर अखबारों के
और चित्रों की चुलबुलाहट से
विचलित न हो, हे जननी,
सुंदर रह, स्नेहमयी रह,
सत्य-मत पर सत्य-पथ पर
हमें चला, हे प्रिय-दर्शिनी
हे मनु-कुल-कल्याणी।

कुवेंपु

अहोरात्रिगळलि बिडदु, नन्न बिडदु, निन्न दनि

अहोरात्रिगळलि बिडदु, नन्न बिडदु, निन्न दनि....
ओम्मारिगू तिळियदंते
आसेय कै गोणेयंते
उसिराडुव यंत्र दंते
नानु मुंदे सागिदंते,
बेन्नेहिंदे बेदट्टदंते बेळेयुतिहुदु निन्न दनि ।

गुडिय दीप उरियुतिरलि । नूरुघंटे मोळगुतिरलि ।
'नानु इल्लि इल्ल, इल्ल !
व्यर्थ निन्न श्रद्धेएल्ल ।
अय्यो ! नानु फल्ले ? अल्ल ।
ननगे अंथ आसे इल्ल,
ननगेके दूरगेबे, कंद ?' एंदे निन्न दनि ।

निन्न दनि: 'निन्न मुंदे नूरु बारि नडेदु होदे
शिलुबेहोत्तु क्रिस्तनागि
ज्ञान भिक्षु बुद्धनागि
लोकमित्र गांधियागी
बेलक होत्तु ओंटियागि ।
इल्ले उळियुवासे ननगे । नीनो 'निल्लु' एनदे होदे ।

निद्देयल्लि नूरु बारि फनवरिसितु निन्न दनि:
नन्न आसेयेल्ल नीनु ।
नाने निनगे इल्लवेनु ?

तेरी ध्वनि आ रही सदा मेरे पीछे-पीछे

तेरी ध्वनि आ रही है सदा मेरे पीछे-पीछे
छिपी-छिपी-सी
आशा की पुतली-सी
सजीव यंत्र-सी
जैसे-जैसे बढ़ता हूँ आगे
तेरी ध्वनि बढ़ती है पहाड़-सी मेरी पीठ के पीछे-पीछे।

चाहे मंदिर के दीप जलते जावें, चाहे सौ-सौ नगाड़े बजते जावें :
मैं यहाँ नहीं हूँ, नहीं हूँ।
वृथा है तेरी श्रद्धा।
अरे! मैं क्या पत्थर हूँ? नहीं,
ऐसी इच्छा मेरी नहीं,
मुझसे क्यों दूर हुआ, पुत्र? बोली तेरी ध्वनि।

तेरी ध्वनि : सौ बार चला हूँ तेरे सम्मुख
चढ़ा क्रास पर ईसा बनकर
ज्ञान-भिक्षु बुद्ध बनकर
लोकमित्र गांधी बनकर
दीप लिये एकाकी
यही बसने की आशा है मेरी तू तो कह न सका 'रुक जा!'

नींद में सौ बार आई स्वप्न बनकर तेरी ध्वनि
तू ही मेरी आशा।
पर मैं न हूँ तेरा कोई?

तंदॆ मुदुक नादरेनु
हितवलवे, निनगॆ नानु ?
निन्न कंडॆ कंडु नॊंदॆ चंदॆ नॊंदॆ उळिरलि ।

नव नॆरळु सरिद मेलॆ नव हॆसर तुडियमेलॆ
ऎल्लो ऒंदु मूलॆयलि
कंणु मरॆय काडिनल्लि
गुडिय कट्टि कालिनलि
तुडिदॆ नीनु, 'निल्लु' ऎन्लि
कल्लनॊल्लदॆन्न जीव 'कंदा' ऎंदॆ ऒरलुतिदॆ ।

ऎच्चरदलि नूरबारि निन्नविसितु निन्न दनिः
लोक गॊदलु नव्वादित्तु,
ईग अदुवॆ निन्नदायितु
बिट्टु कॊट्ट राज्यगळलि
नानदॆंतु आडियलिक्कलि ?
निन्न हृदयमंदिरवॆ नंदनवॆनगिळियलि ।

कॆ. एस. नरसिंहस्वामी

बाप बूढ़ा बना तो क्या हुआ ?
क्या न लगता तुझे भला ?
तुझे देखा, दुखी हुआ, उल्टे पाँव दौड़ आया ।

जब हट जायगी मेरी छाया, मेरे नाम की धूलि पर
एक किसी कोने में,
अति दूर जंगल में,
तू बोला रुको यहाँ,

मुझे पत्थर पसंद नहीं 'बेटा' कह पुकार रहा हूँ ।

जगत् में सौ बार बिनती कर गई तेरी ध्वनि :
लोक या पहले मेरा,
अब बन गया तेरा,
कैसे पग धरूँ उस राज्य पर
जिसको मैंने छोड़ दिया था ?
हृदय-मंदिर तेरा ही बने नन्दन-वन मेरा ।

के. एस. नरसिंहस्वामी

गॊंदलपुर

"...............it is a tale
Told by an idiot, full of sound and fury
Signifying nothing."

—Shakespeare (Macbeth V-IV)

मञ्जु,
कामालॆ कत्तलु,
बंदु मैमेलॆ अव्वरिसि ऎद्देदु बिक्कु बॊव्वरिदलॆव कामॊडि
: कुडिदु बिदिद्दॆ कणो, कडलपक्वानॆयालि गॊरगरॆव बिरिकि सोडा :
चाचि तन्न कबंधकैय घेरायिसिदॆ माया बजार घोड़ा ।
कबळिसितु दंडकारण्य कव्वॊगॆ सुरि कत्तलॊ बॊबायियन्नु,
मद्रासन्नु, बॆंगळूरन्नु, धारवाडवन्नु ।
शीत देशद तॊन्नुगंजु चीरटॆ हक्कि चिर चिरो चिरचिरो—
काश्मीरदिंद रामेश्वरद तनक थू ।
हाकिदॆसुरंग प्रति हॆज्जॆ हॆज्जॆगु कॆळगॆ, ययाक्करिसि
कॆवॆ हाकुत्त गितरु सुत्त चंडि, रणचंडि, चामुंडि,
इळुक्कलिल बिरिकुंटॆयोत्ति गुळुकिसु गुळुकि रैपप
वॆळकादिद मुरकुचंडि ।

पूर्वदल्लुदिसिद सूर्य ईग अपूर्व;
अपर मध्यकॆ मारि होदनल्ल;
परकॆ परदाडि कॆसरळि कुंटुब कमल
इहद मण्णनु मुक्कि मुरुटितल्ल
लक्षोपलक्ष आळिगुळिकार परिवार
हॊट्टॆ बॆकिगॆ रॆक्कॆ सुट्टितल्ल
मुसुकितु अमारॊ लोकरट्ट दवदगॆ मलगॆ

गड़बड़ नगर

"....................it is a tale
Told by an idiot, full of sound and fury
Signifying nothing."
—Shakespeare (Macbeth Act V Sc. IV)

अंधकार,
गाढांधकार,
तन पर आकर गरजकर उठ-उठ गिर-गिर घहराकर घिरने
वाला काला बादल
: पी लिया रे, सागर मयखाने में फेनिल विस्की सोडा:
कबंध हाथ अपना फैलाकर घेर लिया है माया बाज़ार घोडा
निगल लिया है दंडकारण्य को काले धुएँ ने घेरकर
कलकत्ता, बंबई, मद्रास, बैंगलोर, धारवाड़ को भी।
शीत देश का धवल हिम झींगुर झीं-झीं कर रहा है
काश्मीर से रामेश्वर तक।
पग-पग पर नीचे सुरंग खुदी है, चीत्कार कर खड़ी हैं
चंडि, रणचंडि, चामुंडि चारों ओर
वसंत में भी अजीब ठंडक।

पूर्व दिशा में उदित रवि अब आ गया है पश्चिम,
अपर-मध्य के हाथ वह तो बिक गया रे,
पर के लिए कातर कीचड़ में कुंठित कमल
इह की मिट्टी को खाकर मुरझा गया रे।
लाख-लाख कुली मज़दूर परिवार
अपनी ही जठराग्नि में जल गया रे।
आवृत्त हुई अमावस्या टिड्डी-दल का दबदबा कोलाहलः

: जग्गि कितवरास तगद तूबिन चूतु ?
नुग्गि बंदिसेनु यगन कोणन कोतु ?
कॅलसविलद गिरणि हाकि रुळ्ळॆ सीटि हूगुतिदॆ सुडिगाळाटॆ
इरुळ चक्रव्यूहदल्लि वीसुत्तलिदॆ कर्ण कॆ कुरुड सोटॆ ।

शिवध्यान भग्न, कैलासदल्लि अविघ्न
हिग्गुतिदॆ भूतगण चंडु नृत्य,
मॊरगिविय शापक्कॆ सॊरगि विघ्नेश्वर
कडुबिनदट्टविकळिदु कुळितुबिट्ट ।

मूक्त्तु कोटि देगुल शून्य, शून्य गर्भगुडि,
भग्न विग्रह स्तब्ध दीपनाडि;
अंधकासुर कॆदरि केश बारिसुतिरुव
रुण्णगंटॆय नग्न घंटामणि ।
गाळि तुंबा सिडिव सुडुव गद्दल, कॊडिट्टॆय नात,
कॊदट्टणदल्लि जव्ळु कुद्दुव सद्दु,

एंणॆगाणदि मरलनरॆव कार करद करॆ, गनॆय
तोटदल्लि कल्लुकुदिट्टगनटाटोप, छावणि मेलॆ
बडॆ:हॆब्बंडॆ चळुवाळि, पंजुर्लि, हायगूळि, बॊब्बर्य, जटिट्ग —

ऎलललल कॆ 'हू'
एत्ति हॊरटिवॆ कारिपताकॆ हाकुत्त कॆकॆ, उरुस कॆरि कॆरि
अंतरिक्षदल्लि अंतलगि हाकुतिवॆ, अरच्चुनालगॆ, अहा,
किरच्चु नालगॆ, ओहो, तुरिचॆ नालगॆ, काळ
कुडिदु बडियुत्तलिवॆ गाळि ढोल,
कत्तलिन कडलु अल्लोल कल्लोल ।
रात्रियॆल्ला बाण, बिरुसु, गरनालु ।

किसने दबोचकर हटा दी तम के नाले की ढक्कन ?
क्या बढ़ आया यम के भैंसों से जुता कोच ?:
बेकार मिलें झूठी सीटी देकर मचा रही हैं हल्ला
निशा चक्र-व्यूह में कर्ण कर घुमा रहा है सोंटा ।

शिव ध्यान मग्न हैं, कैलास में अविघ्न
भूतगण कर रहा है अनाड़ी नृत्य मदमत्त होकर,
गज-कर्ण पाने के शाप से खिन्न होकर
बैठ गया है विघ्नेश्वर मिष्ठान्नों की अटारी पर ।

तीस कोटि मंदिर हैं शून्य, शून्य गर्भगृह :
भग्न विग्रह की दीप-नाड़ी भी स्तब्ध,
अंधकासुर अपना केश बिखेरकर
बजा रहा है रुग्ण घंटी की नग्न घंटामणि
सर्वत्र हवा में जलने-भुनने का शोर-गुल, गोठ की बदबू,
ओखली में भैया कूटने की आवाज़,

कोल्हू में बालू पीसने की करकराहट,
घर के बाग में संगतराश का आटोप, छत पर
चट्टान की कड़कड़ाहट, भूत-प्रेत-पिशाच-शैतान

'ए ल् ल् ल् ल् के हू'
काली झंडी लिये निकल पड़े हैं नारा बुलंद कर,
गाँव-गाँव, गली-गली
अंतरिक्ष में उछल-कूद कर रहे हैं, जीभ फाड़-फाड़कर,
अहा, जीभ खरोंच-खरोंचकर,
ताड़ी पीकर पीट रहे हैं पवन ढोल,
तम सागर अल्लोल कल्लोल
रात-भर में आतिशबाजी की अठखेली

नच्च किविगॆं जडिदु कप्ति तागिसि आभ ऒडिगु फुरडु कालु,
फीलु तप्पिद कंठ यंत्र आगि अतंत्र फोनि बिदटोडिगु
फॊरकलॆंडॆगॆ ।

गलिगॆगिप्पत्तु अपघात आकाशदल्लि, नॆलदल्लि, पाताळदल्लि,
सिडिद सिडुळिन चूरु पडॆदु भूताकार फोरळ रॊडॆविळनॆरि
कुळितु
नॆगॆदॆद्दु चिम्मुतिदॆं हविळ पट्टणदल्लि, गुडिमठ मसीदि
इगर्जियल्लि,

शालॆ कालेजिनल्लि,
सभॆ मॆरवणिगॆयल्लि,
होटलल्लि चित्रमंदिर दल्लि,
पार्लिमॆंटिन वेदिकॆयमगॊलॆ प्रतियॊंदु पीठदल्लू गर्भ गोपुरद गॊलॆ
बायचडिदुकॊंडु लबॊलबॊ चॆल्लि फीबन्नु
क्षण क्षण कॆमत्तष्टु ऊदुत्तिवॆ,
कॊंबु वग्गिरि सुत हासुत्तिवॆ :
दारिबिडि, दारिबिडि, तॊलगिराचॆ,
कूतवरु, निंतवरु, मलगिकॊंडवरु,
एळिरॊ एळि ऍदेळि, नुग्गिरि मुंदे, फूगिरो फोरळ
सॆरॆ हरिवतनक,
कुदुरॆयॊ कत्तॆयॊ मोटारॊ सैकल्लो इल्ल गाडिगाळिनल्लो
अंतु ऒडिरि गुंदॆ, कुंतवर तुळियिरो,
मूलॆयल्लि कूतु योचिसुत्तिरुव घातका, एळु, इल्लवो गर्भ
एळलारॆ ।

ऎल्लिगॊतवक्कॆ ऍदु कॆळुवव हेडि,
ताळि ऍववनॊब्ब दॊड्ड खोडि,

दिमाग चूर-चूर, खाली खप्पर, सीसे की तिलमिलाती अंधी आखें,
कील छूटकर, कंठ-यंत्र अतंत्र होकर पटरी से
फिसलकर जा पड़ा था नाली में
पल-पल बीसों दुर्घटनाएँ आसमान में, जमीन पर, पाताल में,
फटे दिमाग के चूर भूत का आकार लेकर रोडेजिन
के गले पर जा बैठे हैं,
फुदक रहे हैं नगर-नगर, डगर-डगर, मठ-मंदिर,
मसज़िद-गिर्जाघर में,

स्कूल-कालेजों में,
जलसों-जुलूसों में
होटलों में, चित्र-मंदिरों में,
पार्लियामेंट की वेदी पर, हर पीठ पर और फाटक पर
मुँह फाड़-फाड़कर पीब बहा-बहाकर
क्षण-क्षण में ज़ोर-ज़ोर से बजा-बजाकर,
सींगे टेढ़ी कर रहे हैं चारों ओर
हटो राह से, हटो राह से, दूर भागो,
बैठे हुए, खड़े हुए, सोये हुए, सब-के-सब
उठो रे उठो, आगे बढ़ो, चिल्लाओ गले की नली के फटने तक
घोड़े पर, गधे पर, मोटर पर, साइकिल पर, या पैदल ही
किसी तरह आगे दौड़ो, बैठने वालों को कुचलो,
कोने में बैठकर सोचने वाले घातको, उठो,
वरना फिर न उठ सकोगे।

कहाँ क्यों, यह पूछने वाला कायर है,
'रुको' कहने वाला एक बड़ा मूर्ख है,

इदिरु धरववागित इल्ल फोडि ।
एनें बंदरु दारिगड्डु कत्तरिसि अद, अवन, करकरएंदु,
तरिदु फोरवालि धारिसि
रुंडमाले,

नड्ड रस्तेयल्लें, अह, अलय लीलें ।
मनेंयोळगें, गुडियोळगें, शालेंयोळगें नोडि
हाकुतिदें नम्म रस्तें,
'एलेलें लें रस्तें, एनु अब्बेवरसें ।' :
ओडुववनें धीर, चीरुववनें धीर, मनुकुलोद्धारक,
महा गभीर,
कंण पट्टें य कुदुरें नम्म देवरु : (अड्डुनिदें महास्वामि :)
एरडेरडल्ल नाल्केंदु बोंगलुव रियाक्शनरिय तलुकु,
तरि, फाडि, कद्दु,

नम्म देवर बालकवन फद्दु,
चूरु चूरादनों ? सरि, बिडि,
मानव्य चिगितु कोंडितु सत्तरेनु हुलुगनुज ।
एनु अव निन्न अनुज ?
इथ बूज्वबुद्धिगोंदें गद्दु,
यज्ञ पशु अज, फद्दु बाय, बारो याजि; कोंल्लिसिद
गुद्दिगुद्दि
इदर वपें बहळ शुचि, देवगणकिदकिंत बेरें यिल्लवों
रुचि, बेडवों बेरेय हविस्सु ।
हीगेंयें इळिदु बरलिदें नम्म स्वर्ग, अपवर्ग, ई बीदियाचे
कडें गूळेंयल्लि,

सम्मुख आने वाले से बढ़कर कोई शठ नहीं है
राह पर जो भी रोड़ा अटकाये उसे हटाकर, काटकर करकर गले में
धारे रुंडमाला,

बीच रास्ते में, वाह! प्रलय-लीला,
घर में, मंदिर में, स्कूल में भी देखो
खुल रहा है हमारा रास्ता,
: वह रास्ता, कैसी अव्यवस्था! :
दौड़ने वाला ही धीर है, चिल्लाने वाला ही वीर है,
मनुकुलोद्धारक, महा-गंभीर,
पट्टी बँधी है हमारे अश्वदेवता की आँखों पर :
पालागन महा प्रभो :
दो में दो मिलाने पर चार कहने वाले रियाक्शनरी को पटको,
फाटो, कूटो,

हमारे देवता का बालक बन बनाओ,
चूर-चूर हुआ तो? बस, छोड़ दो,
मानवता हरी हो गई, मरा तो क्या हुआ नीच मनुज?
क्या वह है तुम्हारा अनुज?
या तुम हो उसके अनुज
ऐसी बूर्ज्वा-बुद्धि के लिए एक ही इलाज,
यज्ञ-पशु अज, मुँह बंद करो, आओ याजि,
पीट-पीटकर इसे मारो,
इसका रक्त अति शुचिकर, इससे बढ़कर देवगण
के लिए और क्या रुचिकर,
चाहिए नहीं दूसरा हविष्य,
इसी तरह उत्तर आयेगा हमारा स्वर्ग अपवर्ग इसी रास्ते के
उस पार आखिरी छोर में,

नम्म मनॆ मुंदिरुव लायदल्लि,
ई नाळे मात नंबद जनद्रोहिगिळिल्ल ई कुंभिनियलि,
मुख्य बेकादद्दु ओट, कूगाट ।
ओडिरो ओडि, ओडि, कूगिरो कूगि, कूगि,

बिद्दवनु बिद्द, ऎद्दवनु ऎद्द, पंथ कट्टिद गॆद्दवनॊब्ब गॆद्द,
काल बलविल्लद शिखंडि नरपेतल गोररु
पुलितस्कॊ सिक्कीतॆ ।

गॆद्दवनु सिद्धविद्दॆ हॊंड आळुद,
इदु निश्चिय नहिवाटगिंतलु अबद्ध ।
......Call no man happy till he dies.

गोपालकृष्ण अडिग

हमारे घर के सम्मुख अस्तबल में
इस कुंभीपाक में जगह नहीं उस द्रोही को जो कल की बात पर
विश्वास नहीं करता,
जरूरत बड़ी है दौड़ने की, चिल्लाने की
दौड़ो रे दौड़ो, चिल्लाओ रे चिल्लाओ, चिल्लाओ,
जो गिरा सो गिरा, जो उठा सो उठा, होड़ लगाकर जीतने वाला
जीत गया,
कमज़ोर पैरों का कायर, कंकाल खुर-पुट के नीचे दब गया।
विजयी को भी सिद्ध है गहरा गड्ढा,
यह तो विधि के व्यापारों से भी अबद्ध
··· Call no man happy till he dies.

गोपालकृष्ण अडिग

नियमोल्लंघन

'सुय्' ऎन्दु निडुसुय्दु कुय्यलिडुतिदॆ गाळि
जगद आर्द्रतॆयॊ हीरि हीरि ।
मूडगाळिगॆ बान गॊग ऒडॆदु बिळिचूदि
बळिदंतॆ तोरुतिदॆ गेरॆ गीरि ।

तरुलतादिगळल्लि चिगुरिल्ल हॊगरिल्ल
अस्थिपंजरवागि नवॆयुतिहवु,
ऎल्लॊ अंगैयगल हसिरु कंडरॆ साकु
मनद आसॆगळॆल्ल कॆरळुतिहवु ।

एनु बानॊ ऎनितु दूरविदंतिहुदु
नमगु अदकू मातुकतॆयॆ इल्ल,
ऒंदु मोडवॆ? मिंचॆ? मळॆयॆ? गगन चिह्नॆ?
चळिगालकॊ कॊंच बुद्धियिल्ल ।

क्षाम डामर घडिद निर्वासितर तॆरदि
ऒणगिदॆलॆगळ राशि गणगुट्टिवॆ,
मै कॊरॆव चळिगाळि निष्करुणदलिदाळि
गैयॆ तरगॆलॆ गत्तॊ मॊरॆयुतिवॆ

हेमंत ऋतुविगॆ सामंत राजरॊलु
सूर्यचंद्ररु नडुगि उडुगुतिहरु,
धीमंत वर्ष ऋतु गुडुगु हाकुववरॆगॆ
बरिय नामांकितरॆ मॆरॆयलिहरु ।

नियमोल्लंघन

दीर्घ साँस ले हवा कर रही है सू-सू
सोख-सोखकर जग की आर्द्रता को,
पूर्वी हवा से फटा हुआ गगन का मुँह
दीखता है सर्वत्र जैसे पुता है धवल भस्म।

तरु लताओं में न अंकुर है न शोभा
अस्थि-पंजर ही रह गया उनका कृश होकर,
कहीं कुछ हरियाली जब मिल जाती है
मन की आशाएँ तब कुछ बँध जाती हैं।

दीखता है गगन हमसे बहुत दूर
उससे कभी न होती कुछ बातचीत,
कहीं न बदली, न बिजली, वर्षा, न इंद्र-धनुष ?
अकल तो ज़रा भी नहीं शीत-काल में।

अकाल से पीड़ित निर्वासितों-जैसे
सूखे पत्तों की राशि भी बज उठी है,
ठंडी हवा का जब हुआ निष्करुण आक्रमण
सूखे पत्ते लगे हैं करने त्राहि-त्राहि।

हेमंत ऋतु के डर के मारे
सूर्य-चन्द्र छिपे हैं सामंत-जैसे,
वर्षा-काल गरज न उठेगा जब तक
तूती बोलेगी नामधारियों की तब तक।

मूरुतिंगळ हिंदॆ मळॆराय हगलिरुळु
धारिणिगॆ तनिमुद्दु गरॆयुतिद्द,
हरुषदावेशदलि हॊनलु धुम्मिक्किरलु
प्रेमगीत गळॆनितॊ हाडुतिद्द ।

मळॆगाल चैतरलु नन्ना कवितॆय नवेलु
नूरु कंणनु तॆरॆदु नर्तिसुबुदु ।
भाव चातक हॊच्च हॊस मळॆय तंबनिय
जेम्बनिय गुटुकरिसि नर्तिसुवदु

ऍंदु बरुवुदॊ काल नाशिनिय मळॆगाल
विरह वैशाखवनु दाट बेकॆ ?
एनु ऋतुरिंगणवॊ विधिनियम दालिकॆयॊ
ऒम्मॆयादरु तप्पिनडॆयदेकॆ ?

चेन्नवीर कणवि

तीन मास के पहले वरुणराज दिन-रात
करता रहा भूतल पर मधुर चुंबनों की वर्षा,
सरिताएँ उमड़ आईं जब हर्ष के आवेश से
वह प्रेम-गीत गाता रहा न जाने कितने।

वर्षा के आने पर मेरी कविता-केकी
अपने शत-शत नयन खोल नाच उठता है,
नूतन वर्षा की शीतल छींटें, मधु बूँदें
घूँट-घूँट कर पी जाता है भाव-चातक मेरा।

इधर कब आयेगा मेरा प्रियतम वर्षा-काल
क्या सहना ही होगा मुझको विरह वैशाख ?
कैसा ऋतु-परिवर्तन विधि-नियम की कैसी प्रभुता,
क्यों न कर जाय एक बार उसका उल्लंघन ?

चेन्नवीर कणवि

हसिवु

कुळितोम्मे एकांगियागि जगदादिगळ
योचिसुवे, विश्ववैश्यालमवने नेनेदु,
ई विश्व निन्न लीलेयेंदु, मक्कळाटवेंदु
नुडिवरल्ल ! नानरियें एनोंदु देव

इरुळेल्ल मनदाळि नीनिंतु, बेळगागुतले
मायवागुवे, एनो हेळुत्तहेळुत
बेरगुगोळिसुवि हा । अरेमरुळेनानु
एंहु कुळितोम्मे नचि नगुवे नन्न नाने !

हा ! हुचि एनुत बेचि बीळुत नोडुवे
एच्चरागि नुडियिल, नुडिगारनिल, नडेदिदे
एनो एन्तो । निन्न मगळागि आडुवेनु
'हुडुकु अडगु' इदु नन्न बदुकु बेगडु !

ई काळरात्रियलि निशेय निःशब्ददलि
निद्रे बारदे महडियने एरि निल्वे
निशेय बांदलदोडने ओडनाडुवे
स्वप्नदलि मूक गोंडिहुदु जगवु !

गगन गम्भीरदेडेगे नेत्ति एत्ति नोडुवे
हा ! मुरियिलागदु मौन मानस
आ मौन बेरगुनिब्बेरगिनलि ओडनुडिदु
कंणु मुच्चि काणुवे हा ! एंथ दर्शन !!

भूख

बैठी अकेली मैं किसी समय बार-बार
सोचती हूँ विश्व की विशालता का आर-पार
'यह विश्व तेरी लीला है, बच्चों का खेल'
हे देव, मैं कुछ न समझ पाती हूँ इस कथन का सार।

रात-भर तू वास कर इस कदर मेरे मन में
सुबह होते ही ओझल होता है कुछ कहते-कहते
तब हो जाती हूँ कुछ भ्रांता-सी पगली-सी
जाग बैठती हूँ, हँस पड़ती हूँ, आप-ही-आप।

अरी पगली! कहकर चौंक पड़ती हूँ देख-देख
उठती हूँ जब मूर्छा से, न बोलने वाला है न उसका बोल,
हो गया हो कुछ ऐसा ही, तेरी बेटी मैं कुछ खेलती हूँ!

अँधेरी रात में और निशा की नीरवता में मैं
नींद न पाकर खड़ी हो जाती हूँ छत पर
निशावृत नभ से फिर कुछ खेलती जाती हूँ मैं,
मूक बना है जग सारा अपने ही सपने में!

सिर अपना ऊँचा कर निहारती हूँ नभ की गहराई
पर हाय! मानस की मौनता तज नहीं पाती हूँ,
आश्चर्य और मौन से कुछ बोलती ही जाती हूँ
कैसा दर्शन है! मूँदकर नयन देखती ही जाती हूँ।

कोटि मिणुकु गळॆल्ल नन्न चिक्क
चक्षुगळलि बिम्बिसुतिवॆयल्ल
एनु सोजिगविदु! निन्ननंतवु ऎन्नल
डगिहुदु, नेत्रदलि बिम्बिसुव बानिनंते।

निन्न मंगळ महिमॆ निन्न करुणॆय कासार
कवलॊडॆदु करॆयुतिदॆ, ऎन्न मेलॆ
हरुषवर्षवगरॆदु सुखद सुग्गिय बीर
सागि वरुतिहुदु बागिलिगॆ भाग्यवेन्न!

मनद मदवॆल्ल सुरिदु ता येल्ल
आ वॆळगु महावॆळगिनॊळु ऒंदु बॆळगु
गूडि तिरुतिरुगि तिरुगुतिदॆ शक्ति रूप
अळिसि जीव व्याप नन्न ताप लोप!!

शांति सागर नीनु नित्य निरवयनीतु
मत्तॆ अरुववॆ नीनु ऎत्ति पाडुवॆ
आत्मगीतॆयनॊंदु सांभनिधियलिनिंदु
सिद्धराम बेरिल्ल ना निन्न कलॆयुळिदु ऎंद

तुम्बुवॆनु ई काय निजद सीयाळदिं
सीयाळुगदिट्ट गॊळ्ळुत कायि बॆळ्ळगादुदु
बॆळगागुत ऎन्न काय ओ ऒडॆयु
ऒडॆयुवॆनु ई काय निन्नडिगॆ

जयदेवि तायि लिगाडे

नभ के कोटि-कोटि तारे प्रतिबिंबित होते हैं
मेरे इन छोटे-छोटे नयन-तारों के कोने में,
तेरी अनंतता का अंत मुझमें है कैसा अचरज
जैसे कि बिंबित होता है सारा नभ इन नयनों में।

तेरी मंगल-महिमा और करुणा का सार
मुझे बुला रहे हैं बड़े प्यार से बार-बार।
खुशी की वर्षा कर और सुख वसंत देकर
भाग्य मेरा आ रहा है निकट मेरे द्वार।

मन का सारा मद चूर कर चमकी है वा ज्योति
जो छिपी है महाज्योति में एक होकर ज्योति
स्वयं चल-चलकर शक्ति रूप है वह ज्योति
मिटाती है जीव की व्यापकता दूर कर सब ताप!

तू है शांति-सागर और नित्य निराकार।
ज्ञान-स्वरूप स्वयं तू है, गा उठते हैं स्वर-तार।
अपना आत्मगीत जो कि है उस अम्बुधि में लीन
हे सिद्ध राम, उस ज्योति से अलग नहीं हूँ मैं।

नारिकेल फलरूपी निज को इस काया में भर देती हूँ
कड़ा होकर जब वह परिपक्वता पाता है
तब उठकर मैं हे प्रभो, सवेरे-सवेरे
तन-रूपी नारियल फोड़ती हूँ तेरे चरणों में।

जयदेवि तायि लिगाडे

क्रांतिकार

अदो बंद, इवनॊंदु किरिय विरुगाळि ।
मनॆय ऒळगू हॊरगु इवनदॆ धाळि ।
इद्दुदॊंदॆडॆ इरदु इवन राज्यदलि ।
तुंटतनकिन्नॆरडु काल् बंद तॆरदि
बंदुविवनिगॆ ऎरडु पुट्टकालु
मनॆ वस्तुगळॆ यल्ल दिक्कुपालु ।

तुंबु कितलॆ कॆश, नगॆ मिंचुगळ कुवर
क्रांतिकार ।
हॊळॆवॆळय कंगळलि बॆळुदिंगळनुतुंबि
तंदु मनॆयगंळकॆ सुरिव धीर ।
इवनु ऎंदरॆ मनॆय मैयॆल्ल ऎच्चर
इवनु मलगलु मनॆगॆ कवियुवुदु मंपर ।
कॊळलिनिदु वीणॆ इनिदु ऎन्नुवरु
मक्कळ सॊल्लनालिसद जनरु
ऎंदॊरॆद तमिळु कवि, अवन मातिन सत्य
अनुभवकॆ बरुतिहुदु इवन एदुरु ।
इवन मातिन अर्थ दॆवरॆ बल्ल
भावगीतॆगळंतॆ अस्पष्टवॆल्ल ।

चंदमामन अळिय, बॆक्कुतायिय गॆळॆय,
नम्मलॊकद तिळिविनाचॆयवनु
अवन नीतियॆ बॆरॆ अवन नियतियॆ बॆरॆ
दॆव लॊकद बॆळक हिडियुववनु ।

क्रांतिकारी

यह लो आया, छोटा-सा एक प्रभंजन।
बाहर-भीतर-घर में इसीका है आक्रमण
वस्तु कोई रहती नहीं अपनी जगह इसके राज्य में
दो छोटे पैर इसके निकल क्या आये हैं
नटखटी के ही और दो पैर निकल आये हैं
चीजें सब पड़ी हैं घर की इधर की उधर।

पके संतरे से गाल, बिजली-सी हँसी, कुमार
क्रांतिकार !
नन्हीं-सी चमकती आँखों में भर-भरकर चाँदनी
घर के आँगन में बिखेर देता है यह सुधीर।
सारा घर ज़ाग उठता है जब यह जग जाता है,
सो जाता है जब यह घर में फैल जाता है अँधेरा !
'वे ही कहते हैं वीणा और बाँसुरी मीठी है
बच्चों की वाणी जिन्होंने कभी नहीं सुनी है।'
यह है कथन किसी एक तमिल कवि का
इसके सामने यह कथन है पूरा चरितार्थ !
भगवान् ही जाने इसकी बातों का अर्थ
गीति-काव्य-सा है सब-कुछ अति अस्पष्ट।

भतीजा है चंदामामा का बिल्ली-कुत्तों का प्यारा
लोक-ज्ञान की सीमा से बाहर है यह दुलारा,
नीति उसकी न्यारी है, नियति उसकी न्यारी है
देव लोक का दीपधारी है।

मह महा पंडितर उद्ग्रंथगळचॊळ
नॆविक रुचि नोडुवनु रसनॆयिंद ।
ऎष्टादरु ऎल्ल बरिय नीरसवॆंदु
हरिदॆसॆदु बिसुडुवनु तात्सारिदिंद ।

मनॆगॆमनॆयॆ इवन जॊतॆगूडि आडुवुदु
ऒलविनिंद ।
नमगड्डलीगिरुव वरुषगळ करितॆरॆय
सारिसि बाल्यद चॆलुवतंदु कॊडुवनु इवनु
तन्न ऒंदॆ ऒंदु मृद हासदिंद ।
सिट्टु बंदरॆ इवन तडॆयुवरारुंटु ?

रुद्रावतार ।
नक्कु नगिसुव चिंण, ऎदॆय ऒलविन हिरिय
सूरॆकार !
ननगु अवळिगु नडुवॆ व्यक्त प्रेमद सेतु;
हन मायकार,
ऎरडु बाळनु बॆसॆद सूत्रधार ।

जी. एस. शिवरुद्रप्प

पंडितों के बड़े-चड़े ग्रन्थ उठा लेता है,
चाट-चाटकर रसना से उन्हें चख लेता है,
सब नीरस है ऐसा कहना कहता
फाड़कर तिरस्कार से फिर फेंक देता है!

घर सारा-का-सारा इसके साथ नाच उठता है
बड़े अनुराग से,
दीर्घ काल से परदा जो पड़ा है हमारे सामने
हटाकर दूर उसे ला देता है बचपन की शोभा
अपनी एक मुस्कयान से,
कौन इसको क्रुद्ध होने से रोक सकता है?

रुद्रावतार!
मुन्ना हमारा हँसकर हँसाने वाला, हृदय प्रेम का
बड़ा लुटेरा!
बीच में उसके और मेरे यह है व्यक्त प्रेम का सेतु
माया साकार,
दो जीवों को मिलाने वाला यह है सूत्रधार!

जी. एस. शिवरुद्रप्प

नव्य जीवन

१

इदु नव्य जीवनवु, कविते अल्लवे अल्ल, कण्णिद्दवरिगिन्नु बेरे बेके साक्षि?
कण्णिद्दवरिगो ऍल्ल साक्षिगळोंदे! कण्णिद्दरू ऒंदे इल्लदिद्दरू ऒंदे
ऍबंवरिगे जीवनद गद्यपद्यगळोंदे! ऍल्ल ऒंदे ऍबवरिगे मातेरडेके?
मातोंदरल्लियू अक्षरगळेरडेके? अदरिंद नानेंबेनिदु नव्य जीवनवु—
अदरल्लियू ने ट्टगिन जीवनविदल्ल, नेट्टगिद्दरे ऍल्ल जीवनवॆंदेंतक्कु?
अदु बरियगेरॆयक्कु, ऒंदु गोटॆ साकु! ओंकार ब्रह्मवाचकवागिनिल्लुवंते
ऒंदु गेरॆ संकेतवक्कु सर्वार्थक्के! अंथनिडुनडेयिल्ल ई नव्य जीवन कॆ,
ऒय्युवल्लॆंदे निम्मनावुदो लोकक्के व्यंजिसुत्तिदे नव्यनगेय भव्यतेयानिदु!
इदु होसा हॊस नगे, इदक्के होलिकेयिल्ल, ऍल्ल होलिकेगळू वर्तमानके हिंदे,
भूतकालद पॆडंभूतगळु ऊतुगळु! हळेयकालद हाळु जीवनगळॆल्लवु
उपमे, रूपक, दीपक गळेंब कराडिगळ किडुगुणित, वर्णनॆय कर्णवेदनॆ, रसद
कसविसि, करालमुख! अब्बब्ब साकॆंदु हॊस रसिक ह्रोत्तगेय बिसुटोडदिहनेनु?

२

इल्लुंटे मेजरिय मोजरियदवरिदर कल्लॆंदु कवडेयॆंदोगेदारू कैयॊत्ति!
नव्य जीवनविदर हव्य कव्य विधान सव्य साचित्वद्दु, बल्लवरॆ, बल्लरी
बेल्लदोळॆबेलविनल्ल पाकद सविय! अच्युमाडिसलॆंदु उळिदद्दे अल्लविदु,
स्वच्छवाद स्फूर्तिविज्ञानमय विश्वदच्छाच्छमतियाळि नुग्गिहरिदतेंदु
इद्दद मेरॆयिसलु इल्लद्दतेरॆयिसलु उद्दरूट्टगतियिंद गाळियनु गुद्दतिदे!
छंदस्सु लक्षणमलंकार भावरस हिंदिन पुराणद, प्रगतिगदु सल्लद्दु।
इद्ददनिंदते ऍदु काणिसिबाल्लव उद्धार शैलियी बाळनळॆ युव मौळि!

नव्य जीवन

१

यह नव्य जीवन है, कविता कभी नहीं है, आँख वालों को दूसरा क्या साक्षी चाहिए ?
अन्धों को तो सभी साक्षी समान हैं ! आँखें हों या न हों एक ही बात है
ऐसा कहने वालों को जीवन का गद्य-पद्य सब समान है ! सब समान है,
ऐसा कहने वालों को दो बातों से क्या मतलब ?
फिर एक बात में दो अक्षर क्यों हों ? इसलिए मैं इसे नव्य जीवन कहता हूँ
तिस पर यह तो सीधा जीवन नहीं है, यदि सब-कुछ ठीक हो तो वह जीवन ही कैसा ?
वह एक रेखा-मात्र होगा, एक लकीर भी बस है ! जिस तरह ओंकार
ब्रह्मवाचक बन जाता है
एक ही रेखा में सर्वार्थ का संकेत होगा ! ऐसी दीर्घगति इस नव्य जीवन में नहीं है
आपको किसी अज्ञान लोक में ले जाने के लिए यह तो नव्य हास की
भव्यता को व्यंजित करता है !
यह नव नूतन हास है, इसकी कोई तुलना ही नहीं है,
सब तुलनाएँ वर्तमान के पीछे ही हैं
भूतकाल के भूत महा महा भूत हैं ! गतकाल के व्यर्थ जीवन में सर्वत्र
उपमा, रूपक, दीपक नामक रीछों का विकट नृत्य है, वर्णनों की कर्ण-वेदना है, रसकी
कशमकश, कराल मुख ! अरे बाप रे, बस करो कहता हुआ नवरसिक
पुस्तक को पटककर क्या न भाग जायगा ?

२

यहाँ है इमेजरी की मौज जो इसे नहीं समझते 'पत्थर' कौड़ी कहकर फेंक ही देंगे !
इस नव्यजीवन का हव्य-कव्य विधान असाधारण है जो जानते हैं सो ही जानें
इस गुड़ के रस-पाक का स्वाद ! गोलबट्टी बनाने के लिए रखा हुआ तो नहीं है,
स्वच्छ स्फूर्ति विज्ञानमय विश्व की अत्युच्च मति में घुसकर
जो प्रस्तुत है उसे आलोकित करने के लिए, और जो नहीं है
उसका उद्घाटन करने के लिए टेढ़ी-मेढ़ी चाल से हवा को पीट रहा है
छन्द, लक्षण, अलंकार, भाव, रस—ये सब पुराणों की बातें हैं
प्रगति से उनका क्या सरोकार ?

नागरिकतेय जटिल भागवळलावगळ बेन्नीर पन्नीर मुन्निर केन्नीर
वीचिगळरोचिगळ सूचिगळ पसारिसुव बल्लाळतनद बगेय नगेगोंडु बत्तिरुव
बरडाद बेंडेदेय भण्डारवन्नोडेदु चेल्लिसुसुव चमत्कारचिन्हेगळिंद
अव्ययत्वव चरित्रेगे कोडिस लेद्दिरुव द्रव्यव्ययोद्यमविदेम्ब पंडितरूगळ
नालिगेगे एल्लुबुंटे? इद्दरू ओंदरडे? भाव भावद ताकलाट ओळतोटिगळ
जीव जीवद जीकु जोकुगळ मूकुगळ साविरद संज्ञेयालि माडिसुव मुद्रेयिदु!

३

इदुनव्य काव्यवेंदिरु अल्ल, अक्षननु अळेदु सुरियुव दिव्य वाग्विभूति यिदल्ल,
इदु जनद धनवाणि, कीर्तिकर, मूर्तिकर, मूर्तिभर—इदु समाजवु माजिसिद
अर्थशरविदर

दरदरविदलित, दुर्धरसुधाधरपान-इदुदीन दलितरिगे दोरेत दिग्विजयवल!
इदुपत्रिका सुंदरी रत्न विदरल्लि जागतिक जीवनद अकुंडोंकुगळन्नु
अर्थकामगळन्नु, व्यर्थकार्यगळन्नु, कलेगोलेयकोलेगलेय नाना विधगळिंद
बिंबिसिदे, बोंबिसिदे, लम्बिसिदे, बांबिसिदे! एल्लवो मानव,
निसर्गसुत निन्नन्नु,

माडलु निसर्गपतियन्नागि कोंडलुसंस्कारवनु हुट्टिरूवुदी अक्षरन्यास!
सत्यवे सुळ्ळेंबुदुत्तमोत्तम तत्व, तत्ववू ज्ञानवू ओंद्दागि इरवेंदु
इष्टुयुग गलु कळेदरु तिळियदवरूण्टेनु? तत्ववकेतिळिविल्ल
तिळिविगिल्लवोतत्व,

अवुगळेरडक्किहुदु बेक्क नायि स्नेह! अदरंतेइदरक्षर क्षरक्षारवनु
सविमाडि सारूवुदु सर्वरंगलकिळिदु, राजकारणदिंद व्याजकारणदनक!

यथार्थ को भलीभाँति प्रकाशित करने की यह महत् शैली है, जीवन को
नापने का मापदण्ड है !
नागरिकता के जटिल भावों के लास्य में स्वेद, गुलाबजल, खाराजल, रक्त जल के
वीचि-विलास और सूचियों का विस्तार करने वाला है
जिसके बल-शासन का पानी सूखा है।
उस शून्य हृदय-भंडार को तोड़कर, चमत्कार के विवर्तन से
इतिहास को अव्ययत्व प्रदान करने का यह है धन व्यय-उद्यम
ऐसा कहने वाले पंडितों की जीभ में क्या हड्डी है? यदि हो तो
एकाध ही? भाव-भाव का धक्कम-
धक्का, अंदर की भंगिमाओं का, जीव-जीव का झूला-झोंका है हज़ारों
मूकों के निर्माण के लिए यह एक साँचा है

३

यह तो नव्य काव्य कभी नहीं है, श्रद्धा को नापकर दिव्य
वाग्विभूति बरसाने वाला नहीं है,
यह तो जन की धनवाणी, कीर्तियुत, मूर्तिप्रद—यह वह है
जिसको समाज ने मार्जित किया है
इस अर्थ शर को—दर-दर विदलित दुर्धर सुधाधर-पान है—
यह दीन दलितों को प्राप्त दिग्विजय है!
यह पत्रिका-सुंदरी रत्न है, इसमें जाग्रत जीवन की वक्रता को,
अर्थ काम को, व्यर्थ काम को, कला की हत्या को, हत्या की कला को
प्रतिबिंबित किया गया है, विस्तृत किया गया है, ऐ मानव
निसर्ग सुत, तुझे निसर्गपति बनाने का संस्कार देने के लिए
पैदा हुआ है यह अक्षरन्यास!
सत्य ही झूठ है, यह सर्वोत्तम तत्त्व है, तत्त्व और ज्ञान एक साथ नहीं रह सकते
ऐसा समझने वाला इतने युगों के बाद भी कोई मिल सकेगा?
तत्त्व में ज्ञान नहीं है और ज्ञान में तत्त्व नहीं है
इन दोनों में कुत्ते-बिल्ली का स्नेह है। इसी तरह इसके अक्षर-अक्षर के क्षार को
रुचिकर बनाकर सब क्षेत्रों में बाँट लेना चाहिए राजनीति से लेकर रणनीति तक!

४

हिंदिनरसर अंगरक्षकर बलदेते इंदिनरसाळुगळ अंतरंगवकाय
मुंदे मुंदोडुवी नव्य नागरिकतेय फंगॆळे दुरिद्दवर चित्तरंगस्थलदि
लंगांगि सामरस्यं बॆत्त सत्य सौंदर्य दिम्मोगुदुरूव किच्चिक्कि कुणिसाडि
रंजिसुगु, रमियिसुगु, कविरविगळलुमीरि गुंजिसुगु, हंजिसुगु, हत्तिसुगु, सुत्तिसुगु
वागर्थसंपर्क सारिगॆ विधानगळ धान्यगळ रेशनिरि हंचिसुगु हारिसुगु !
अंगांगव्यंगविर बहुदु इरदिर बहुदु, संय्य व्यंग्य गळिंद वाचयलोकालोक
भूव्योमगळ योजनायोगयोगिवॊलुतेलुतिदे कण्परदॆयलि इदनोदिद डे—
मॊक्केटिग, साक्केटिग, सालोमक्षिगनप्प, इदरर्थवागदिरलिदनपार्थिसिदंतॆ—
इदरर्थ कंडरिद निडविडंबिसिदंते, बॆच्चिगॆ बॆचागिनित मानवनंतॆ !

बी. एच. श्रीधर

४

गत-काल के राजाओं के अंग-रक्षक-दल की तरह
आज के शासकों के अंतरंग की रक्षा के लिए
आगे-आगे दौड़ने वाली नव्य नागरिकता की आँखों के सम्मुख
प्रस्तुत कर उनके चित्र रंगस्थल में
लहँगा और चोली के सामरस्य पूर्ण सत्य-सौंदर्य के
दुहरे सुख पर आग लगाकर नचाकर
रंजित करता है, रमाता है, कवि रवि को भी मात करता है
गुंजित करता है, ऊँचा उठाता है, गिराता है,
वागर्थ-संपर्क व्यवस्था-विधान रूपी अनाजों का
राशनिंग द्वारा वितरण-विस्तार करता है
अंगांग व्यंग्ययुक्त हो या न हो, वानर व्यंग्य से वाक्य लोक को आलोकित कर
भू-व्योम में योजन-योजन तक आवृत हो, पढ़ने वालों की आँखों
की पलकों पर थिरक रहा है—
इसे पढ़ने वाला 'डेमाक्रिटिस', 'साक्रेटिस', सालोमनवादी
बन जाता है, यदि इसका अर्थ नहीं कर सकते हो
तो यथार्थ ही कर दो—
जैसे-जैसे इसके पूर्ण अर्थ का साक्षात्कार होता जायगा,
वैसे-ही-वैसे चकाचौंध से मानव चकित रह जायगा

बी. एच. श्रीधर

तंगाळि

तॆरॆतॆ रॆ यागि एरेरि बंदु
सुत्तुव सुचुव तंगाळियॆ !
बिसिलिन कुदुरॆयनेरि सारि
बरलिरुव तंपिन वैताळियॆ !

नट्टनडुबेसगॆय बॆन्नेरि
चिन्नाटवाडुव सॊगद शिशुवॆ !
बॆळगिनलि बिसिल बेगॆयलि
दणिवॆम्बुदिरदॆ सुळियुतिरुवॆ
सूसुतिरुवॆ बीसुतिरुवॆ !

मॆल्लमॆल्लनॆ बंदु मंद्रदलि सॊल्लुत
नुरित गायकियंतॆ दनियनेरिसुवॆ
मरव तूगिसुवॆ ऎलॆयनाडिसुवॆ
बेसगॆयॆल्ल सॆनवनु ओडिसुवॆ
ओ सवियाद तम्पिन तवरॆ !

इरुळॆथ संथहॊळॆ नीनु !
नीरॊ गाळियॊ ऎम्बमायॆय जननि !
सूसूकरिसुत सतंत अविरत
दणियद तायिय दयॆयंतॆ
मैयनु मुत्तुवॆ, मनवनु ऎत्तुवॆ
निर्हॆय सविगनसिन नंदनवन कॆ

शीतल पवन

लहराकर ऊँचे चढ़-चढ़कर
घिरने-बहने वाले हे शीतल पवन
धूप रूपी घोड़े पर चढ़-चढ़कर
आने वाले हे शीतलता के दूत!

तपती दुपहरी की पीठ पर हो सवार
गुड्डी उड़ाने वाले ऐ प्यारे कुमार?
सवेरे और तपती दुपहरी में
अनायास ही चकरा-चकराकर
बहते रहते हो सदा सू-सू कर।

धीरे-धीरे मंद्र स्वर में कुछ कहकर
चतुर गायकी-जैसा स्वर अपना मिलाते हो
खेलाते हो तरु-पत्तों को झुला-झुलाकर
ग्रीष्म का नाम भी मिटा देते हो
ऐ मधुर शीतलता के आगार।

पानी है या हवा ऐसी माया की जननी
सू-सू करता है सदा सर्वदा
माँ की करुणा जैसे कभी न थकते हो।
तन पर चढ़कर बढ़ा देते हो मन को
मधुर स्वप्न के नव-नंदन वन में

ओ गाळि ! मुंगारिन काळि !
बंदॆय तणिपन तिरुळने ताळि
बिसिलेरालि मैसन बेयलि
नीनिरे जोतॆ, नानेतकॆ सोललि ?
प्रत्यक्ष परब्रह्मावॆ ! श्रीमातॆय वरहस्तवॆ ।
निनागिदो नमन, नीनॆ ननगॆ शरण !

र. श्री. मुगळि

हे पवन! पहली वर्षा के दूत!
लेकर आये हो शीतलता का अवतार
ताप चढ़े चाहे, तन-मन चाहे झुलसे
तुम हो जब साथ में क्यों तब हारा?
तुम हो प्रत्यक्ष ब्रह्म! श्री माता के वरद हस्त!
तुम्हें करता हूँ नमन तुम ही हो मेरे शमन।

रं. श्री. मुगलि

मुक्त जीविगळु

मुक्त जीविगळिवरु
मुगिलिनालि संचरिसि
मूजगव सलहुवरु हगलु रात्रि ।

इवर भीतियॆ, इवर
कारुण्यवॆ बॆळकु,
अदर सुळिवनॆ हिडिवळी धरित्रि

विश्व दॆदॆयलिरुव
ज्योति दॆहिगाळिवरु
इवरु मिडियलु तुंबिबहवु स्नायु ।

ऎल्ल कुल-लोकगळ
शांति कांति गळिवरु
इवराज्ञॆ यिल्लदलुगरु वरुण-वायु

ऎल्ल तेजस्सिनवरु,
ऎल्ल ओजस्सिनवरु
ऎल्ल तापसरॆल्ल पुण्यविवरु ।

सृष्टि–स्थिति–लयकिरुव
ताल लयवॆ इवरु,
श्रेष्ठ वै, त्रैलोक्य गण्यरिवरु

इवर नुडि नुडियदा
नालिगॆगॆ नुडियॊलि ?
इवर तॆगॆदप्पदा

मुक्त जीवी

ये हैं मुक्त-जीवी,
घन पर विचर कर—
जो करते हैं पालन त्रिजग का रात-दिन,

इनकी प्रीति, इनकी
करुणा वह ज्योति है
जिसका करती है धरा सदा अनुकरण।

विश्व-हृदय में चमकते
ये ही ज्योति-देही हैं
छूने पर जिनके स्नायु सब भर आते हैं।

सर्व कुल लोक की
शांति कांति के स्वरूप
आज्ञा के बिना जिनकी वरुण-वायु नहीं चल पाते

सब तेज के आगार,
सब ओज के पारावार,
सब तप और पुण्य की हैं खान,

सृष्टि स्थिति लय के
ये ही हैं ताल-लय,
तीन लोक के मानी हैं अति महान्।

इनकी वाणी जो न पावे
वह रसना बोल न पायेगी,
देखेंगी नहीं जो आँखें इन्हें वे मुक्ति न पायेंगी।

ताळु तुबुवेंदलि ?
इवरॉलियदसुविगॆ भुक्तियॆलि ?

बालदेगुलदलि
चिर सनातनरिवरु
बाळमॊदल बल्लवरु, बहु पुरातनरु ।

हीगिद्दु युगयुग कॆ
सिगुव सन्निधियिवरु
संक्रांति पुरुष रे, नित्य नूतनरु ।

गाळियलि बीसुवरु,
कडलुगळनीसुवरु
नितंशियलि कासुववरॆ इवरु ।

मोक्ष सुख दायिनिगॆ,
बाल नारायणिगॆ,
शेष शय्यॆय हासुववरॆ इवरु

मानवन हितकागि
जगव संचरिसुववरु,
गायॆयनु बीसुवरु, सुराळिसुवरु ।

अरळिरुव कुसुमगळ
मरळि मुगिसुवरिवरु,
अरळलिह मॊग्गॆगळनरळिसुवरु ।

नच्च बाळिरलिवर
अरिविंद आलविंद,
बाळि गर्पिसुव अरविंदवागि,

वे भुजाएँ नहीं बनें बलवान
किया नहीं जिन्होंने इनका आलिंगन,
उनको मुक्ति कहाँ जिन पर होते ये न प्रसन्न।

जीवन-मंदिर में हैं
ये चिर सनातन,
जीवन के प्रथम ज्ञानी और अति पुरातन।

युग-युग के बाद
हुआ इनका अवतार
संक्रांति-पुरुष हैं नित्य विनूतन।

पवन पर चलते हैं,
सागर पर थिरकते हैं,
आग पर खड़े हो जलते हैं,

मोक्ष-सुखदायिनी को
जीवन-नारायणी को
शेष-शय्या ये ही बिछाते हैं

मानव के हित के लिए
जग में विचरते हैं,
फैलाते तथा मोड़ते हैं माया को।

फूल जो खिले हैं
फिर करते उन्हें मुकुलित,
खिलाते हैं खिलने वाली कलियों को।

जीवन मेरा बन जाय
इनके ज्ञान से और प्रेम से
अर्पित हो जीवन पर बन अरविंद,

नन्न काव्यवु गुडिय
भक्त मधुपरिगॆंदु
संतर्पिसिरुव मकरंदवागि !

धारिणियदिरलिवर
तिळिविंद, हॊळविंद,
गुडिय दारिय धर्मशालॆ यागि,

नाळॆ मनुकुलवन्ने
मुनिकुलवनागिसुव
अति मानवर कर्मशालॆ यागि ।

वी. कृ. गो.

मेरा यह काव्य बने
मंदिर के भक्त-मधुओं को
अर्पित अति मधुर मकरंद

यह जग रहे इनके
ज्ञान से और प्रकाश से
मुक्ति-मंदिर के पथ पर हो धर्मशाला

भावी मनु-कुल को
मुनि-कुल बनाने वाली
हो जाय यह अति मानव कर्मशाला।

वी. कृ. गो.

कश्मीरी

चयन : गुलाम हुसैन बेग़ 'आरिफ़'

अनुवाद : प्रेमनाथ दर

कवि-नाम	कविता
अमीन कामिल	नींद का पपीहा
'आरिज़'	ग़ज़ल
'आरिफ़', गुलाम हुसैन बेग़	अहरबल का झरना
ग़ुलाम अहमद 'फ़ाज़िल'	ज़ान (ज्ञान)
ग़ुलाम मुहिउद्दीन 'नवाज़'	ग़ज़ल
ज़िन्दा कौल 'मास्टरजी'	ना तैयारी
दीनानाथ वली 'अलमस्त'	गोबर बीनने वाली
निज़ामुद्दीन क़ाज़ी	ग़ज़ल
पीतांबरनाथ 'फ़ानी'	यह महल मुकुटधारियों के····
रहमान 'राही'	किन्तु वितस्ता सोई नहीं है

आल्युक पोषनूल

हा निन्द्रि मत्यो नेर थि मंजुल थि गुगुस ब्राव,
मुचराव अछि कड़ वाश पखन हाव केंह चकचाव,

वौथ ताज़ु सफर भाव,
लोलस चु करान ब्राव,
नव ज़िन्दगिया छाव,

रंगु रंगु वलान जामु गुलन रंगु रोस आफताब,
वुछ ओनु जोयन मंज़ छु नचान आब ज़न सीमाब,

चुति लाग केंह बेताब ।
ज़्यव चोनि छे मिज़राब,
होछ लोलु की आदाब,

गई भाइतु वन्द चोनि हाथ करताम पनिन्य साज़,
अंजाम तिहुंद ? पोपु चमन लोलुहंच आवाज़,

छनु ज़िन्दगी काहं राज़
अंजाम छु आगाज़,
आगाज़ छु परवाज़ ।

पुश वीमु चमन छावनस ज़ांह लोगु गुलव चेर,
छय छाय यि वहमुच चे पनिन्य राय दिलिच शेर,

बेखोफ़ वनिथ नेर,
वागन त नयन फेर,
रेंज़ल चु अनुख ज़ेर,

पथ ज़िन्दगी ज़ांह ध्योत न वुछित श्राक त अहरेज़,
छुनु रूदमुत अज़ताम अंश्क कांसि हुन्द आवेज़,

नीड का पपीहा

ऐ सोए हुए, आ, चल निकल, यह झूले और हिंडोले छोड़,
चक्षु अपने खोल ज़रा, फैला पंख, कोई शान दिखा,

उठ, कर नई यात्रा,
आरम्भ नये प्रेम का,
नवजीवन का ले मज़ा,

रंग बिना यह सूर्य क्या-क्या पुष्प को रंग पहनाता है,
ले देख नदी की आरसी में जल पारे की भाँति हिलता है।

बन तू भी तनिक चंचल,
जिह्वा तेरी है मिज़राब,
सीख प्रेम के आदाब,

चले गए तेरे भाई-बन्धु कब से लेकर अपने साज़,
उनका अन्त? फुलवारी और प्रेम भरी आवाज़।

जीवन कोई भेद नहीं,
अन्त स्वयं ही आरम्भ है,
आरम्भ उड़ना उड़ना है।

फूल तोड़ने वाले के भय से पुष्पों ने कब देर की है?
यह झूठे भय की छाया है अपने मन की राय सँभाल।

आ चल हो निर्भय निडर,
बागों हरियालियों में फिर,
गुलेल मारने वालों को दबाकर,

छुरियों को देख या टुकड़ों को देख जीवन कभी क्या पीछे हटा?
आज्ञाकारी या दास किसी का प्रेम क्या अब तक कभी बना?

फटुराव यि परहेज़,
परहेज़ शर अंगेंज़,
कर नार दिलुक तेज़,

दव दोर भरान जोश दिलस, रोय रटान रंग,
बीह बीह छु गछ़ान खून खुश्क तापु छतान हंग,

वोथ नेर चु जख जंग,
वस्तुच छे रूचई ज़ंग
ज़रूमन चे थिनई अंग,

बस्तुक छु अज़ रहवार करान वाव पकान तेज़
बुथिकिन छि थिवान लायन् कम ज़ार त चंगेज़।

फरहाद सुंज आवेज़,
शीरीं शकर रेज़,
कति रुद सु परवेज़,

वशि छी चे दिवान पोशु चमन थरि वुछान पोश,
तन्हा चु निहिथ दूरि न गैरत त न कांह जोश।

छुक यूत क्या मदहोश,
बेजान त खामोश,
सोंतस चु हना तोश,

वोथ त्राव यि गम गोसु मंजुल वाय सौखुक साज़,
मिज़राब दि साज़स त कुनी लोलु हंच़ आवाज़,

रठ यावनुक अन्दाज़,
कर ज़िन्दगी आगाज़,
परवाज़ कर परवाज़।

अमीन कामिल

इस संकोच को तोड़,
संकोच जो बुराई लाता है,
कर अग्नि हृदय की तेज़,

भर उत्साह हृदय में दौड़-दौड़ जिससे मुख पर आये रंग,
यूँ बैठे पक जायँगे धूप ही में कनपटियों के बाल और शुष्क होगा रक्त।

उठ, चल, चला संघर्ष
समय का है शुभ शकुन,
ये घाव तेरे भर जायँगे,

इस काल का अश्व वायु उड़ाता आ रहा है तेज़,
और मुँह के बल गिर जाते हैं, क्या ज़ार क्या चंगेज़।

फ़रहाद की वह प्यारी,
शीरीं की मधुर वाणी,
कहाँ है वह परवेज़?

तेरी बाट जोहती वाटिका और पुष्प तुझ ही को ताकते,
एकान्त में तू दूर बैठा स्वाभिमान नहीं न जोश है,

इतना तू बेसुध क्या हुआ?
निर्जीव और निःशब्द क्या हुआ?
वसंत का ले मजा ज़रा,

उठ, त्याग यह चिन्ता पालना और बजा सुख का साज़,
मिज़राब चला साज़ पै और गा प्रीत ही के राग।

यौवन के ढंग अपना,
जीवन नया-नया,
उड़ता जा, उड़ता जा!

अमीन कामिल

गज़ल

नाज़नीनन दूरकन अेलरावि वखुक इन्कलाब
माहजबीनन चाक जामन यावि वखुक इन्कलाब

सोरम् चश्मन सजद् युन या बुग़ मेहराबस नमुन,
जालि वांकन पथ मरुन मशरावि वखुक इन्कलाब ।

शबनमुक आदत छु सुबहस लालरोयस बुथ छलुन,
खूनि दिल नार्यव नव्यव छिरकावि वखुक इन्कलाब

न्यथनानिस पानस बुज़ित कोर कांग्यव बिरयान् गाज़,
लोल् सीनिक नारतति शेहलावि वखुक इन्कलाब

बन्दगी शरमन्दगी हसरत ज़रूरत आजिज़ी
ज़िन्दगी हुन्द दर्द सर अंज़रावि वखुक इन्कलाब ।

ज़ालिमन चूरन ठगन सरमायदारन कोछ खोरन,
लाय् नरखुज़ि वान् ज़न तवनावि वखुक इन्कलाब ।

संगरन बालन कोहन सन्यरन खयन येरन वटथन
दौन गर्थन गंज़ समसोतुर करनावि वखुक इन्कलाब ।

फेरि आरिज़ लोल्बागस डूरि शेरान लोल्सान,
दर्द् गुल मसवल त ही फोलनावि वखुक इन्कलाब ।

आरिज़

गज़ल

नाज़नीनों के इन बुन्दों को भी हिला देगा वक्त का इन्कलाब,
चन्द्रमा से हैं जो उनके कपड़े भी फड़वा देगा वक्त का इन्कलाब।

कजरारे नैन या मेहराब-सी भौंहों के आगे झुकना,
जाली-से बुने बालों ही के पीछे मरना भी भुला देगा वक्त का इन्कलाब।

है ओस की आदत प्रातः को लाला की तरह जो लाल हैं उनका मुँह धोना,
ले मटके घड़े रक्त हृदय का छिड़काएगा वक्त का इन्कलाब।

इस नंगे शरीर की कर बोटियाँ भून दीं काँगड़ियों के ताप ने,
उर-प्रेम के जलते छालों को सहलायगा वक्त का इन्कलाब।

यह सेवा, यह लज्जा, यह शोक, आवश्यकता और यह नम्रता,
इस जीवन के सिर-दर्द को मिटवा देगा वक्त का इन्कलाब।

जालिमों को, चोरों, ठगों, पूँजीपतियों और उनको जो घूस खाते हैं,
भड़भूँजे के भाड़ पर खील की भाँति भून देगा वक्त का इन्कलाब।

ऊँचा शिखर हो, पर्वत हो, गहराई, खाई हो, मेढ़ हो या तट,
दो घड़ी में इन सभी को समतल-सा बना देगा वक्त का इन्कलाब।

प्रेम के उद्यान में 'आरिज़' घूमेगा सँवारेगा क्यारी-क्यारी को,
दर्द के पुष्प यह मसवल[1] और चमेली को खिलायेगा वक्त का इन्कलाब।

आरिज़

---

१ मसवल = एक कश्मीरी फूल

आबशारे अहरबल

अहरबल ची आबशार,
कहर् ची छस लारलार,
बालु प्यठु लायान छाल,
गाह दिवान खोर गाह ताल,
सीत कदम ज़ानीन ज़ाँह
थक कडुन आराम क्याह,
बुज़मलन गगराई नार,
चोर करान छिस बेक़रार,
मर्गनई हुन्दि लालुजार,
नीरि पोपन हुन्द बहार
बारदार अबरक अज़ार,
शोलवान छिस लोलुनार,
गाह सीतुर गाह छम्बत् छार।

श्रोंह पकान देवान् वार,
रात दोह छट तूर ताफ,
दम दिवान ग्रावान् न डाफ,
जून तारक आफताब,
दुनियाहुक कांह इन्कलाब,
चोक मोदुर स्योद होल जवाब
कम करान छा इज़्तराब,
छुस परयन नेरान नार,
बरतु फसमच दागदार,
रंगुरंगु रंगदार हार,
मोख्त् हदय बापत तयार।

अहरबल का झरना

अहरबल का यह झरना,
ऐसे भागे जैसे कोई बहुत भगाये,
पर्वत पर से कूद गिरे,
क्षण में सिर के बल गिरे और क्षण में मारे पैर,
धीरे से पग कैसे उठता कभी न जाना इसने,
दम लेना, बिसराम-सा करना, कभी न जाना इसने,
मेघ का वह गर्जन हो या विद्युत् की वह आग,
बेचैनी इसकी और बढ़ाते और बनाते चंचल,
ऊँचे हरे मैदानों में लाला की फुलवारी,
नीर पुष्प की चारों ओर खिलती हुई बहार।

या जब मेघ भरा यूँ आये जैसे बोझ लिये दुःख पाये,
इसकी अपनी प्रेम-ज्वाला तब लपटों में उठ आये।
कहीं है समतल, कहीं है खाई, कहीं पै तीखी ढलान होती,
परन्तु उसको है जाना आगे वह बढ़ता ही आगे है उन्मत्त की भाँति।
हो रात दिन, हो तेज़ वायु, शीत हो या सूर्य का प्रचंड ताप
दम नहीं लेता कभी और लेट जाता है नहीं आराम करने के लिए।

चाँद हो, तारे हों, या हो आफ़ताब (सूर्य)
पृथ्वी पर आने वाला कोई आये इन्कलाब,
खट्टा हो या हो मधुर, सीधा या टेढ़ा हो जवाब,
इसकी बेचैनी में अन्तर कोई पड़ता है नहीं,
इसके पंखों से निकलती आग है,
इसके छाले घिस गए हैं बन गए अब दाग़ से,
रंग-रंग के मोतियों का बन गया हो हार-सा,
जैसे मोती रख दिया हो कण्ठ का तैयार-सा।
जैसे नियुक्त कर लिया हो आप सूरज ने वहाँ,
जैसे अवसर देख के ही उसको छोड़ा हो वहाँ।
मौन पर्वत सेवा में आकर खड़ा,

आफताबन थोवमुत,
मोकु डीशित ओवमुत,
बाअदब खामोश बाल,
बालु-पति रूजि़थ हिलाल
हरनन गंठगुच़ छे छाल,
दमबखुद सोरी कमाल
आसमानस वुठ सुविथ,
जिन मलक गामित्य रहित
जऩ निमुत छुक ज़ूव मुहित ।
जऩ ज़्यवन छिख तोरि दिथ,
आब शुर शुर शोरोशर,
गुम छे अति कथ गुम नज़र,
ब्यूठ ओरिफ हाल गोस ।
जिस्म बठि यीरु जान ओस,
आबशारकि पोठि जान,
खोर न ठहरावान दवान,
गाह कन्यन छावान पान,
गाह वुडान बर आसमान,
आरिफन सम्भोल होश,
महव थोवुन चश्मोगोश,
केंख लोयिन छुई मचऱ
अख दमाह ठहराव कर,
केंह मुछय तथ दिम जवाब,
क्याज़ि छुई युथ पेचोताब,
च्योन माल्युन गालि प्यठ,
कोहसारन तालि प्यठ,
आफताब अति सुबहोशाम,
छुई करान नमि नमि सलाम,

दूज का वह चाँद भी पर्वत के पीछे है खड़ा,
चौकड़ी भरते नहीं अब हिरन हैं भूले हुए,
इसके आगे मूक हैं सारे कमाल,
होंठ अपने सी लिये हैं आकाश ने,
जिन-फरिश्ते जैसे जड़वत् हो गए,
जैसे मोहित हुए प्राण निकले हुए,
जैसे जिह्वा पै उनके हों कुण्डे लगे
जैसे शुर्-शुर् करे जल, कोलाहल चले,
जिसमें आवाज खो जाय, दृष्टि खोए,
यूँ बैठा आरिफ़ दशा यह हुई,
कि तट पै शरीर, आत्मा बहती रही,
कि झरने की भाँति चंचल हैं प्राण,
कि दौड़े ही जाए और रोके न पाँव,
कभी मारे पत्थर पर अपना ही आप,
कभी उठ के उड़ जाये आकाश में।

फिर 'आरिफ़' ने अपना सँभाला था होश,
लिया इन्द्रियों को फिर से सँभाल,
दी आवाज़ कि सुन ले, ओ पागल,
तनिक दम ले क्षण-भर तनिक ठहर जा,
मेरे प्रश्न का तू उत्तर दे ही जा,
कि इस हद के बेचैन क्यों हो भला,
तेरा मायका पर्वत की चोटी पै है,
जो ऊँचे-से पर्वत की छत पर ही है,
जहाँ प्रातः-संध्या को खुद सूर्य भी,
कि झुक-झुक के करता है तुझको प्रणाम,
कि ऐसी तेरी ऊँची यह शान है,
कि आकाश तेरा ही इक दास है,
तेरा हृदय निस्सन्देह निर्लेप है,
धर्म का प्रदर्शन न सिद्धान्त का

यूत थोद ऐ शान चोन,
दास ऐ आसमान चोन,
सीनॖ चोनुई कीनॖ रोस,
दीनॖ रोस आईनॖ रोस,
ज़िन्दगी छई बेक़रार,
नैइ सबर नैइ इन्तज़ार,
पोत नज़र करसुच़ हराम,
छक फक्त महवे खराम,
च्यानि सफ़रुक क्या मुदआ ?
रोवमुत माशोक मा ?
आरिफ़स वोछ़ दर जवाब,
ज़िन्दगी गेछ़ मूल आब,
म्योन आगुर च्योन जान,
असलॖ तलॖ हिव हिव ज़ुवान,
छस थज़र त्राविथ वसान,
तश्नॖ लबॖ नुई गंज़ बसान,
सब्ज़ ज़ारन मंज़ अचि़थ,
खुश्क डारन मंज़ गछ़िथ,
छुम बनान हासिल क़रार,
ज़िन्दगी या म्योनुई मज़ार ॥

'आरिफ़'

परन्तु तेरा जीवन बेचैन है,
प्रतीक्षा की शक्ति न धीरज ही है,
कि देखो न मुड़के समझो हराम,
कि चलने में व्यस्त और चलना ही काम,
कि उद्देश्य इस यात्रा का है क्या?
कहीं तुमने प्रीतम को खोया है क्या?
फिर 'आरिफ़' को उसने भी उत्तर दिया,
कि जीवन है उन्मत्त और जल मूल है,
कि जो मेरा उद्‌गम वहीं तेरे प्राण,
कि वास्तव में जीना है एक ही समान।
कि ऊँचे को त्यागा नीचे बहा,
चला प्यासे होंठों में जाके बसा,
कि हरियालियों में जाके घुसा
कहीं शुष्क भूमि में जाके बहा।
हाँ मिलता है मुझको आख़िर क़रार,
जीवन है वह या मेरा मज़ार॥

'आरिफ़'

ज़ान

अलिमकि आगुर अन्यि अछि गाशव,
अलिमकि आगुर अन्यि अछि गाशव विज़ि विज़ि दज़ि में पज़रुचि ज़ान,
ज़ानि सूति गट् चलि रसु रसु दुनिया
छस इय वुछि च्योन पूर प्रागाश,
अलिमिकि आगुर····

अलिमकि आगुर सोरूई सर् कर्,
ज़ानि सूति सोरूई हन्यि हन्यि सर्कर् ज़ानि सूति मज़नाव् पनतुई पान,
ज़ानि सूति ज़ान वॉलिस निशि चन्दु भर्,
ज़ानि सूति बेज़ानस छाम् न्राश,
अलिम्कि आगुर····

अलिमकि आगुर कुन्यि मंज कुल कड्
ज़ानि सूति कुन्यि मंज कुठि आलम कड् ज़ानि सूति नॅनि कड्
चन्दु सुंज जाय,
ज़ानि सूति रूहस कुनिरूक पय छाम्,
पय् सूति कुन्यरूक सिर कर फाश,
अलिम्कि आगुर····

अलिमकि आगुर् कोह चट् ज़ून रट्,
ज़ानि सूति कोह चट् ज़ानि सूति ज़ून रट् ज़ानि सूति परखाव् त्रट् तूफान,
ज़ानि सूति हवहस त आबस गुर कर्,
ज़ानि सूति छंड् वो यिम आकाश,
अलिम्कि आगुर····

ज़ान (ज्ञान)

ज्ञान के उद्‌गम से फूटे वह प्रकाश कि अन्धी आँख को दिख जाए।
ज्ञान के उद्‌गम से फूटे वह प्रकाश कि अन्धी आँख को दिख जाए,
जलती रहे जलती रहे यह ज्योति जिससे सत्य का परिचय हो जाए।
ज्ञान से तिमिर कटे और धीरे-धीरे संसार,
जग जाय और देखेगा तेरा पूर्ण प्रकाश
ज्ञान के उद्‌गम से····

ज्ञान के उद्‌गम से फूटे वह प्रकाश कि सबकी परख हो जाय।
ज्ञान से अंश-अंश का भेद पाऊँ
ज्ञान से फिर अपने-आपको भी पहचानूँ
ज्ञान से ही ज्ञानी से भी लेले जेबें भर दूँ,
ज्ञान अख ही से अज्ञानी का अज्ञान काट दूँ
ज्ञान के उद्‌गम से····

ज्ञान के उद्‌गम से फूटे वह प्रकाश कि एक ही से अनेक निकालूँ
ज्ञान से पिंड ही में ब्रह्मांड को भी देख पाऊँ;
ज्ञान से मानव का स्थान भी स्पष्ट कर पाऊँ।
ज्ञान ही से आत्मा के ऐक्य का भी पता लगाऊँ,
इस पते से भेद सब फिर ऐक्य के सबको बताऊँ।
ज्ञान के उद्‌गम से····

ज्ञान का उद्‌गम फूटे जब पर्वत तोड़ूँ, शशि को पकड़ूँ
ज्ञान से पर्वत तोड़ूँ, ज्ञान से शशि को पकड़ूँ,
ज्ञान से परखूँ बिजली तूफ़ान,
ज्ञान से जल को वायु को वश में कर लूँ,
ज्ञान से खोजूँगा यह आकाश।
ज्ञान के उद्‌गम से····

अलिमुकि आगुर् दिल चीरिथ कड्

ज़ानि सूति सेकि दानस दिल चीरिथ कड् तमि दिलुमंज़् जज़ब् त शौक

ज़ानि सूति ज़र् मंज़् ताकत सूई कड्

युस कोह काफस करि खश खाश

अलिमुकि आगुर्....

अलिमुकि आगुर् थदि थदि घर् कर्,

ज़ानि सूति थदि थदि पननुई घर् कर् ज़ानि सूति छारक नवि समुसार,

ज़ानि सूति आसमान पथकुन त्राविथ,

ब्रोंह ब्रोंह कडि म्योन शाहपर वाश

अलिमुकि आगुर्....

आलिमुकि आगुर् तार दिम् लूकन,

ज़ानि सूति सदरस तार दिम् लूकन ज़ानि सूति बोठलाग् कौमच नाव

ज़ानि सूति दम् दम् हम तय नम रट्,

पयहम दोर थव् बचनिच आश

अलिमुकि आगुर्....

अलिमुकि आगुर् नारस पेठि तर्

ज़ानि सूति फाज़िल नारस पेठि तर् खोर् तल् बास्यम पोश अम्बार,

ज़ानि सूति वान् वान् कहलचि खसि खसि,

दिम् ब्रथ सोनरस पासुचि चाश।

अलिमुकि आगुर्....

गुलाम अहमद फाज़िल

ज्ञान का उद्‌गम फूटे, जब दिलों को निचोड़ूँगा,
ज्ञान से इक रेत के कण का हृदय निचोड़ूँगा,
इस हृदय से भावनाएँ और एक उत्साह निकालूँगा।
ज्ञान से ही अणु में से शक्ति वही निकालूँगा,
जिससे काफ़ पर्वत को भी खस.खस-सा बना सकूँगा।
ज्ञान के उद्‌गम से····

ज्ञान का उद्‌गम फूटे तब ऊँचे महल बनाऊँगा।
ज्ञान से ऊँचाई पै अपना घर बनाऊँगा,
फिर ज्ञान-पथ पै खोजता ढूँढ निकालूँगा नये संसार।
ज्ञान की ऊँची उड़ानों में जाऊँगा इस आकाश से आगे,
आगे-आगे उड़ता, खोलता जायेगा पंख, मेरा पक्षिराज,
ज्ञान के उद्‌गम से····

ज्ञान का उद्‌गम फूटेगा जब लोगों को ले उतारूँगा पार,
ज्ञान (रूपी नाव) से ले उतारूँगा लोगों को इस सागर से पार।
ज्ञान (रूपी पतवार) से खे दूँगा तट तक राष्ट्र की यह नाव।
ज्ञान के डाँड से ही क्षण-क्षण में नाव को उचित
दिशा की ओर चलाऊँ
और निरंतर दृढ़ रहेगी आशा मेरी कि नाव जोखम
से बचती ही रहेगी।
ज्ञान के उद्‌गम से····

ज्ञान का फूटेगा उद्‌गम, अग्नि को मैं फाँद लूँगा,
ज्ञान से हे फ़ाज़िल अग्नि को भी फाँद सकूँगा मैं,
और ऐसा करते भी मुझको लगेगा पैर के नीचे है पुष्पों का ढेर।
ज्ञान से भाँति-भाँति की दुकानों पै जाकर हर कसौटी पै
घिस जाऊँगा
और सब सुनारों को दूँगा पास सोने की चाश
ज्ञान के उद्‌गम से····

ग़ुलाम अहमद फ़ाज़िल

ग़ज़ल

च्यानि बाबत तप ज़रिम जंगलन अन्दर
तथ इजाबत आसि या न लोल वुछ ।

छाव॒ क्या कल॒ बो कन्यन वन॒ कस यि राज़
ग्राव क्या कर॒ छुम मे गोमुत होल वुछ ।

आविजे आमि तारि ज़ाविजे रागि सूति
लोल॒ मिज़राबन मे क्या क्या चोल वुछ ।

तेज़ त्योंगल ही मे आह नेरान न्यबर
छुई न वावर ? सीन॒ दोदमुत खोल वुछ ।

नाज़ छुम आमि लोल॒ योद पनन्यव परस
मरहबा छुक योन्य हेतिक दकदोल वुछ ।

छक करान इन्कार अज़ छुई मरहबा,
च्योन यी गव म्योन महकम कोल वुछ,

रुम रुम॒ गुम॒ फोटि में सुम॒ लोसाग वुछान
बुस॒ खंजरन चक त दुइ में गोल वुछ ।

दीन॒ कामि माहरोई छक कुस अजनी
कीन॒ सीनुक चानि लोलन ज़ोल वुछ ।

सच करान यो आमि खयालन च्यानि न्यूस
त्रा मकानस मंज में खोशुवुन ओल वुछ ।

दीन दारन दीन॒ रोस योथमुत फसाद
सीन॒ सापी छम कुनइ माहोल वुछ ।

गज़ल

वन-वन में तप करता फिरा केवल तेरा नाम लिये,
सिद्धि मिली हो या न मिली केवल मेरी लगन को देख।

सिर मारूँ मैं पत्थर पै किससे कहूँ यह अपना भेद
उलाहना दूँ किसको स्वयं हृदय के इन घावों को देख।

इन पतले-पतले तारों से, राग की तीखी धारों से,
प्रेम मिज़राब के आघातों से क्या मैंने सहा आके देख।

यह मेरी ठंडी साँसें भी अंगारे-सी निकलती हैं,
विश्वास नहीं करते तुम? ले राख हुआ यह सीना देख।

गौरव मुझे इस प्रेम का है यदि अपने और पराये भी,
अच्छा करते हैं जो अब वह दुत्कारते हमको आके देख।

आज भी करते स्वीकार नहीं यह ना भी तेरी अच्छी है,
तेरा यह सब्र ठीक ही है पर मेरे अटल वचन को देख।

रोम-रोम से स्वेद बहा देख-देख हारे नैन,
खंजर-जैसी भवों से कोप-द्वेष कटा आ देख,

ऐ शशि-सी, तेरा धर्म क्या? कौन तुझे पहचानेगा?
उर में मेरे मलिनता थी जो तेरे प्रेम ने जलाई देख।

सोच-सोच मैं ले हाँक गया यह तेरा ही विचार मुझे,
शून्य-शून्य में ही मैंने फिर नीड सुहाना लिया देख।

बिन धर्म एक दंगा मचाया इन सब धर्म वालों ने,
उर है द्वेषहीन, मेरे एक वातावरण को देख,

योर् वोनमइ बेवफा हा दिलबरो
तोर् दोपथम थी छु ज्रामुत रोल वुछ ।

च्यानि उल्फत स्योग महिउद्दीनन न वोन
वेयन किचन ड्रोग लोल वोल् तोत तोल वुछ ।

गुलाम मुहिउद्दीन नवाज़

यों मैंने तुझको था पुकारा ऐ दिलबर और ऐ बेवफ़ा,
उत्तर में तुमने यों कहा, 'रीत यही है, तू भी देख।'

तेरे प्रेम में महिउद्दीन ने सस्ता-सस्ता नहीं रचा,
और के लिए स्नेह उसका है महँगा, आ, तौल के देख।

गुलाम मुहिउद्दीन नवाज़

ना तयारी

म्यानि खोत् पुस भरान मे यछ़ त लोल
आश तय गाश ओश तय सरकार म्योन
कांछवुन में छ़ान्डवुन तय गारवुन
सोव यस सूति ओसमुत लोकचार म्योन
मारवुन में आदनुक दिलदार म्योन ।

तमि दोपुम "केंह काल यथ दीशस अन्दर
यथ मकानस रोज़ म्यानि वथ वुछान
दूरिरस मंज़ वारि फोलनय लोल् पोश
आसिजि हमसायन हकन तिम बागरान
तार च्योन अद् ज़ान् बू तय कार म्योन,"
मारवुन में आदनुक दिलदार म्योन ।

यथ कुलिस सग दिख ज़मीनस वाति स्रेह
लोल थमि यस कांसि मोर तमि मोर दयस
लोल तसि निशि आव तसि वातान चपोरि
गाटल्यव यी जोन यिम वोतिन पयस
यी छु लोलुक मर्म यी असरार म्योन
मारवुन में....

खतपत्र सोज़ान छुम योत कोलि वाशि
कागज़न हुन्द रंग ब्योन ब्योन बेशुमार
पोशमरगाह बोड सराह तारक नयाह
नदिया यथ अहरबल ही आबशार
पोशनूला पोंपुरा यम्बरज़ला
खिन्दुकरवुनि हरण ज़ूर्या शीरखार
मोरि मुन्दा सोन्दरा बोड गादुला
पोज़ फकीरा नफस् तोरगस शाह सवार

ना तय्यारी

स्वयं मुझसे अधिक जो मेरी कामना करता है, जो मुझसे प्यार करता है,
मेरी जो आशा है, जो प्रकाश है, जो शोभा है, मेरा जो स्वामी है,
मुझे जो चाहता है, मुझे जो ढूँढता है, जो मेरी टोह में बैठा है।
जिसके संग मेरा शैशव निखरा हुआ था,
वही मेरे बालापन का साथी जो मेरी बाट जोह रहा है।

उसने कहा था "कुछ काल इस देश के अन्दर,
इस भवन में मेरी ही राह देखते रहना,
मेरे तुझसे दूर रहने ही में तेरी फुलवाड़ी में प्रेम के पुष्प खिलेंगे,
इन्हींको तुम अपने अड़ोस-पड़ोस में बाँटते रहना,
फिर तुझे पार लगाना मैं जानूँ मेरा काम है,"
वही मेरे बालापन का साथी जो मेरी बाट जोह रहा है।

> इस वृक्ष को जब सींच दोगी, धरती को आप स्नेह पहुँचेगा,
> प्रेम औरों से जिसने किया उसने स्वयं दैव से किया,
> प्रेम वहीं से फूटा है, चारों दिशाओं से फिर वहीं पहुँचता है।
> ज्ञानी मुनीश जो तह तक पहुँच गए उन्होंने यही जाना,
> यही प्यार का मर्म है, यही मेरा भेद,
> वही मेरे बालापन का साथी····

वह चिट्ठी-पाती भी मुझे यहाँ भेज देता है,
कागज़ के रंग भाँति-भाँति के और अनगिनत होते हैं—
ऊँचाई पै पुष्पों का एक क्षेत्र, एक विशाल सर, तारकों-भरा पथ,
एक नदी जिसके अहरबल से कई जल-प्रपात,
पपीहा, पतंगा और नर्गिस का फूल,
चौकड़ी भरते हुए दुधमुँहे हिरणों की एक जोड़ी,
एक प्रियतम सौन्दर्य से परिपूर्ण, सर्वज्ञ, प्रबुद्ध,
एक सच्चा फकीर-सा स्वार्थ के घोड़े पै शाहसवार,

केंह न आसित युरा दपान "संसार म्योन"
म्रारवुन मे आदनुक....

पतिमि पहरय न्नोव येलि ,जूनि गाह
मुश्क पोशव छोट सपुन खोशनोथि बाग
पोशनूलन नालि छोत वन हारि बूल
साज आकाशुक त आरूक ज़ाविल्योव
ब्यूठ छत लोत लोत पकान स्वर्गुक हवा
त्युथ सपाँ सोंपुन में दोप सुइ यूरि आव
सालु रोस्तुई आव बालय यार म्योन,
म्रारवुन....

मन्दछेयस यच गुमव सूति गोम श्राग
छन्ड छिप दिगहा नतय गछहा मरिथ
छेशमय योगि हालु मन मा हन्द्रयस
बंय वरिश मिथि रोज़ हा दूर्यर ज़रिथ
नेज़ वश्व पान तामत छुम न साफ़
संज़ केंह पूजायि हुन्ज़ मा छम करिथ
यिम न वारुरिमित गे लूकन लोलु पोश
मालु करहक तिम वुछिम पेमुति हरित
श्रूच जाया छम न वोथरावस कत्ये
गर्दि तय गर्वेठि सूति आमुत बारिथ
बानकुठ गोमुत छु ठोकुर द्वार म्योन
म्रारवुन....

योदवनय लोलस छि तस गामित फुट्टालि
सालु रोस्तुई सोन युन ज़ोनुन छु आर
तम्बलुन वोलुन त हयहय हावसस
व्योच छु लोलस ताब च्यड पछ ऐतिबार

कुछ न होते हुए भी जो कहता है "सब संसार मेरा है।"
वही मेरे बालापन का साथी····

रात के अन्तिम पहर जब चाँदनी छिटकने लगी,
जब फूलों की सुगन्ध बिखरने लगी और चमन महक उठा,
जब पपीहा पुकार उठा, जब वन की मैना बोल उठी,
जब आकाश और झरने के साज़ संगत में बारीक हो गए।
जब स्वर्ग की वायु आकर मन्द-मन्द चलने लगी,
ऐसा समाँ बँध गया कि मैं समझी वही आ गया है,
कि बिन बुलाये ही मेरे बालापन का साथी आ गया है,
वही मेरे बालापन का साथी····

बड़ी लज्जित हुई और पसीनों में मानों नहाने लगी,
मन में आया कहीं छिप जाऊँ या अच्छा यही कि मर जाऊँ।
इस हाल में मुझे देखेगा तो कहीं उसका मन ठंडा तो नहीं होगा?
इससे यही अच्छा था कि बिछोह सहती हुई मैं दूर ही रहती,
यह मेरे वस्त्र धुले भी नहीं, शरीर तक मेरा साफ़ नहीं।
पूजा-आरती की तैयारी भी तो नहीं कर रखी है मैंने,
न तो यह प्रेम के पुष्प ही मैंने लोगों में बाँटे हैं,
अब इनके गजरे बनाती, देखा तो सभी झड़ गए हैं।
पवित्र स्थान भी मेरे पास नहीं, जहाँ उसके लिए आसन बिछाती,
धूल गर्द से, गृहस्थ के सामान से सारा भर गया है
यह जो मेरा ठाकुरद्वार था, भरे सामान का कमरा बन गया है।
वही जो मेरे बालापन····

यूँ तो तुझसे कहूँ उसके मन में प्रेम की पोटलियाँ बँधी भरी हैं,
परन्तु बिन बुलाये यहाँ आना तो उसने ठीक समझा ही नहीं,
मचलना, बेताब होना, और लालच में हाय-हाय करना,
प्रेम में शोभा कहाँ देता है, प्रेम में तो संतोष, धीरज, और
विश्वास किया जाता है

युथ समा ओँखुर नन्योव खत ओस ब्यारव
पान् कौत यीयिहे मे ज़ानित नातयार
शर्म रछिवुन म्योन पर्दय दार म्योन।
मारवुन मे········

ज़िन्दा कौल 'मास्टरजी'

तो ऐसा समाँ बँधने पर यही प्रतीत हुआ कि पत्र ही और था,
भला मुझे ना तैयार जानकर भी अपने-आप कैसे चला आता?
यह मेरा लाज रखने वाला यह मेरा पर्दादार,
वही मेरे बालापन का साथी जो मेरी बाट जोह रहा है।

ज़िन्दा कौल 'मास्टरजी'

गुहिखर,

क्रायि गरमनि मंज़ छम्बव छारव त वुडरव वालिये,
द्रायि सुन्दरमाल वाला गुहि रचन दिन्यी जालिये
हाय यथ छौक लद दिलस वारय मे वाथि परकालिये
द्रायि सुन्दर मालवाला........

फोत कलस प्यठ छ्यथ पलव आरव मंज़ी लारान चलान
खम्भरवी प्यठि नारवई मांज़ि रथ खोरन हारान चलान,
गुहि रचन पथ यिछ़ ज़ुवलमाला गमुच फलवालिये,
द्रायि सुन्दर माल........

दरशनस यिछि हुरनचे दीवीयि पाजि कोछ़ आसुनई,
हासिलई यिथि यावनुक क्या शूबिहे यी डालिये ?
द्रायि सुन्दर माल....

मस्त यिम आछि बेरिबेरी जन जन्तकुई मस प्यालनई,
शायरन बेई मुसविरन क्युत बोरसुतुई कलवालनई
क्यास गुहिलेबि छांडनस लगहन यिमई मस प्यालिये ?
द्रायि सुन्दर माल....

बालनई प्यठ गुल फलान कम कम बरई पानइ गछान,
खोभेनई मंज़ नाज़नीनन कम छि अफसानय गछान,
वाव हाले मंज़ फोलान साथा गलान छ्यथ हालिये,
द्रायि सुन्दर माल....

गोबर बीनने वाली

कड़कती धूप में गिरती ढलानों पै पठारों पै कहीं ऊँचे पहाड़ों पै,
वो निकली बीनने गोबर, जो बाला इतनी सुन्दर है,
मेरा घायल हृदय छिलने लगा है और उड़ती जाती उसकी धज्जियाँ
वो निकली बीनने गोबर····

वो नालों से चट्टानों पै फुदकती भागती ले टोकरा सिर पर,
कहीं टेढ़ी हैं तीखी-सी चट्टानें, और कहीं वो खाइयाँ गहरी
जहाँ वह रक्त बहाती भागती
प्रज्वलित रूपसी ऐसी यहाँ गोबर पै मरती है।
वो निकली बीनने····

यह देवी रूप की ऐसी कि दर्शन प्राप्त हो जायँ तभी जब भेंट में दें कुछ,
यह उपले और गोबर ही इसी यौवन की देन हैं क्या?
यही उपहार शोभा देता है, इसी ढंग के यौवन का क्या?
वो निकली····

नयन भरपूर मस्ती से सुरा-पान के भरे प्याले,
यह मानो चित्रकारों और कवियों के लिए हों साक़ी ही ने भरे जैसे
यही आँखें, जो मदिरा के प्याले से भला इस योग्य थी क्या
कि ढूँढे चोथ गोबर के?
वो निकली····

उधर पर्वत पै क्या-क्या पुष्प खिलते जाते, मुरझा जाते, यूँ ही अपने-आप,
इधर क्या-क्या कहानी बीतती है कामिनी की झोंपड़ी में,
खुले वायु में क्षण-भर खूब खिलकर, फिर वही ले के अपनी कामनाएँ
गिरते जाते गलते जाते।
वो निकली····

ताज़् दौलत युथ न कांह शरमंद् करि ज़ांह चन्द् च्योन,
अख खराजा लयि थि छ़ोर चन्द् च्योन छ़योनमुत जन्द् चोन,
बावफा छुई बन्द् रेत्‌काले चे नालो नालिये,
द्रायि सौन्दरमाल वाला....

कांडि रटन क्या पाक दामन च्योन छा ताक़त तिमन ?
सोत गछ़यरव लोत पोठि योदवई मीठि दिन्यि कांह यिथि खोरन,
ज़ांह ति मा पोशन वुछुत क्या आमृतावन ज़ालिये,
द्रायि सुन्दर माल....

आल्‌छ़ेन ब्रोह कुन गछ़्या वातनि रंगारंग न्यामुच़ई,
क्या जफाकश गछ़ि गुज़ारुन दोह पनुन कारिकारि सच़ई,
ज़ुव चटन वाल्यन गछ़नि गछ़् न् ज़िन्दगी वोनीलिये
द्रायि सुन्दर माल....

तोत्‌चश्मन शातिरन गछ़् शानोशौकत आसिनी,
क्या सोदिस अलमस्तसई गछ़ सो यि हालत आसिनी,
कुस सना पैमान् थोव दुनिया बनावन वालिये ?
द्राय सुन्दर माल....

दीनानाथ वली 'अलमस्त'

कहीं धन का नया स्वामी तेरी उस जेब को लज्जित न कर डाले
यह देख खाली तेरी यह जेब, यह तेरे फटे कपड़े, तेरे चिथड़े
स्वयं लें बाज धन से भी,
शरद् की शीत हो, या ग्रीष्म की गर्मी, लिपटते तुझको ही रहते
हैं ये फटे प्रेमी,
वो निकली····

पवित्र तेरा आँचल है, उसे पकड़ेंगे क्या काँटे, कहाँ ऐसा साहस लाएँ?
जो चूमे चरणों को, चुपके-चुपके, होगी अपने-आप उनको भस्म ही,
कभी तुमने नहीं देखा कि कैसे पुष्प जलते रहते हैं इस ताप से,
वो निकली····

यही माना उचित है कि आलसी के सामने आ जायें नाना
प्रकार के पदार्थ?
यही माना उचित है कि हो जो उद्योगी वो दिन अपने बिताए
चिन्ता कर?
न होना चाहिए था, जान जोखिम में जो डाले उसका जीवन
बोझ बन जाये उसी ही के लिए।
वो निकली····

बदलते आँख तोतों की तरह, शतरंज की चालें जो चलते हैं
उन्हींकी शान ऐसी है, यह कैसे हैं?
यह सीधा-सादा अलमस्त है, दशा उसकी जो ऐसी है, यह कैसे हैं?
रची सृष्टि है जिसने यह बनाया उसने मापक है तो कैसा है?
वो निकली बीनने गोबर····

दीनानाथ वली 'अलमस्त'

ग़ज़ल

मय छुत में दर्दकि साकियन मयखान॒ तमि निशि बेखबर,
लय कर च्वनस मे पयनिवन पैमान् तमि निशि बेखबर ।
ज़ुल्मात् अन्दरै गाह में पेयोव आबे हयातुक शाह में चेयोव
तमि गाशि फनहस नाह में गव नूरान॒ तमि निशि बेखबर
युस सिर में बोवुम राहबरन सुई गव श्रपित में दरबदर ।
बेहतर सुछुम अज़ हर सुखन अफसान् तमिनिशि बेखबर ।

लागित डुंगल सदरस अन्दर छुई आशिकस पथिहम गुज़र,
आथि आस बेशक सुई गुहर दुरदान॒ तमिनिशि बेखबर,
तमि दिलबरन तम्बलोवनस ज़ाह कर न तमि सम्बलोवनस ?
अरमान यंच बो-स्योवनस फरज़ान॒ तमि निशि बेखबर
हस्ती नशित मोशरोवनस मस्ती अन्दर बो त्रोवनस ।
परस्ती हुन्दुई दम दोवनस मस्तान॒ तमिनिशि बेखबर ।

यामत शमारो होवनम ललवुन में आतश थोवनम ।
ज़ालिथ बदन में त्रोवनम पखान॒ तमिनिशि बेखबर ।
छुस ज़ुल्फनई क्या पेचोताब त्रावित बरुख ज़न छुस न्यकाब
आशक दिलन गामुच तनाव ज़ोलान॒ तमि निशि बेखबर
देवान॒ तसपत॒ दिल में गव कर याद म्योनुइ तसति प्यव ?
आबादसुइ दोदवनमें गव वैरान॒ तमि निशि बेखबर,
काज़ी गमुत योच् आरकूत छुम में तसुन्दुइ मारमोत
दर कैदी हिजरां छुस प्यमुत जिन्दान॒ तमि निशि बेखबर ।

निज़ामउद्दीन काज़ी

ग़ज़ल

दिया मद्य दर्द के साकी ने मधुशाला उससे है बेख़बर।
मैं भेद लेने को पीने लगा पैमाना उससे है बेख़बर।
अंधकार ही में वह ज्योति मिली अमृत की भी इक चुस्की मिली।
उस ज्योति से मेरा मिटना रुका, खुद ज्योति वाला है बेख़बर।
पथ-प्रदर्शक ने भेद दिया वह रोम-रोम में शोषित हुआ।
सर्वोत्तम बातों में यह बात है बातों का अफसाना खुद बेख़बर,

डुबकी लगाने वालों की भाँति सागर में प्रेमी सदा चलता है,
उसको निःसन्देह वह मोती मिला मुक्ता-कण स्वयं उससे हैं बेख़बर।
मनमोहन ने केवल ललचाया कब उसने हमको सँवारा है ?
आकांक्षाएँ मेरी दबती रहीं वह मस्त उससे हैं बेख़बर।
अस्तित्व मेरा ही भुला दिया मस्ती में मुझको सुला दिया,
मुझको पतन का यह अनुभव दिया मस्ताना उससे है बेख़बर।

दीपक-सा मुख जब दिखला दिया सहलाने पावक मुझको दिया
कर भस्म काया को छोड़ दिया आप पतंगा भी बेख़बर।
अलकों में क्या-क्या है घूँघर पड़े मुख पै चिलमन लिये हो मानो खड़े
प्रेमी दिलों में हों रस्सियाँ बँधी खुद बेड़ियाँ भी हो बेख़बर।
उसके मारे मेरा मन उन्मत्त हुआ कब याद मेरी उसे आ जायगी ?
बस्ती मेरी सब उजड़ गई आप उजाड़ भी है बेख़बर।
काज़ी हुआ हूँ दयनीय कि है बस उसीका मुझको स्नेह
विरह के बंधन में हूँ गिर पड़ा खुद बन्दीगृह भी है बेख़बर।

निज़ामउद्दीन काज़ी

ताजदारन हुन्दि महल छुनि इनक़लाबन वॊलि वॊलि

गॊलि कूत्या नुन्द वॊनी दर्द नारन ज़ॊलि ज़ॊलि।
खॊलि कूत्या मान मॊनी सूलि अ्श्कन खानमॊलि।

ठोल् तस मा गाश दाख वार् अमिसुन्द परज़नोव,
थव तवय दज़ुवुन्य गुलालन दोहलि दागन हुंज़ मशॊलि।

ज़िन्दगी हुन्ज़ नाव शूबान मोतचन लहरन अन्दर,
वॊलि गिरदाबस अन्दर वावन चलान यिम बॊलि बॊलि।

वाव क्या ? तूफान क्या ? सैलाब क्या ? गिरदाब क्या ?
छा यिसन यीचन बलायन हुन्द भरान गम लाउबॊलि।

दर्द श्रायन सीनु दारन वॊलि फेरान खॊलि मा ?
लहर् श्रावान, दामनस मंज़ लालोगौहर डॊलि डॊलि।

पॊनि पानै मॊनि करान तहंदन अथन खोरन गुलाब
खार ज़ारन मंज़ दिवान रातस दोहरा यिम वनि त ज़ॊलि।

दम कदम तूफानकुई डीशित नटान संगर त बाल,
गर्दि सीतिन ज़र्दनाव्या आलमस हापत दमॊलि ?

नज़रि सीतिन यिम करान मिसमार फौलादी किलन,
क्या खयालस मंज़ अनन तिफलन ख्यवान यिम ऑलु खॊलि ?

आसि युस आज़ादीयि हुन्ज़ दम बदम तस्बीह फिरान,
तोशि मा डीशित गुलामन बेडि तय ज़ोलानु नॊलि ?

यह महल मुकुट धारियों के ढा दिये इन्क़लाब ने

कितने ही सुन्दर वीरों को दर्द की आग ने जला मारा।
कितने ही लाड़लों को प्रेम ने सूली पर प्रतिस्पर्धी बना के चढ़ा दिया।

इसका प्रेम-ताप ज्ञानवानों ने भी भली भाँति नहीं पहचाना,
तभी लाला ने अपने दाग़ को उदाहरण बनाकर दिन ही में उल्का की भाँति
जला दिया।

जीवन की नाव शोभा देती है मृत्यु की ही लहरों के बीच में,
ले गई बीच भँवर में उनको भी वायु जो बच-बचकर भाग रहे थे तट पर।

वायु क्या? तूफ़ान क्या? बाढ़ क्या? यह भँवर क्या?
इन ऐसे उपद्रवों की भी क्या चिन्ता है मस्ताने को?

दर्द के थपेड़ों के आगे सीना जो फुलाते हों वे कब डोलते हैं खाली हाथ,
जल की लहरें ले आती हैं उनके दामन में डालतीं मोती और लाल।

अपने-आप ही चूमते हैं उनके कर को, चरणों को गुलाब,
जो खोजते जाते हैं काँटों ही में दिन और रात।

तूफ़ान की यह शक्ति और उसके यह पग देखकर काँपते हैं ऊँचे पर्वत
और शिखर।
ही बे-मतलब की उछल-कूद से जो मिट्टी उड़ जाये क्या उससे डर
जायेगा संसार?

एक दृष्टि से जो फौलादी दुर्गों को विध्वंस करते हैं,
वे उन बच्चों को क्या समझेंगे जो इलाइचियों और बादाम की गिरियों
पर पलते हैं?

जो क्षण-क्षण में स्वतंत्रता की माला ही जपता हो,
वो दास-जनों को जंजीरों और बेड़ियों में जकड़े देखकर हर्षित कैसे हो जाये?

मारिकिन मंज़ रोज़ि दिल यस जान बाज़स बरकरार,
वाल् वाशे मारटन तस सुम्बलन हुन्दि वालि वालि ।

खून् पनने युस करान गुलकारिया मज़िलन वतन,
चश्म भ्रमरावन तमिस मा लब वज़लि अबरो कज़ालि,

मारिकन मंज मर्द गाज़ी मा फिरान पोत कुन कदम,
तरि सदरन छाल मारान खश्म लारान कोह त वालि ।

यीरवालान बुज़दिलन आराम तलबन काहिलन,
लहर छा मानान वठ्यन बालन छम्बन हुन्दि वारि त आलि ।

बुज़मलन बुनिलन झटन शान्यन छुटन खारन वटन
सीनदारन बोल मुफलिस या मज़ूरा या छु हालि ।

सात् लहरान रूज़ तिमनई कारवानन हुन्ज़ अलम
लगाज़िशन अन्दर थिमव डलबुनि कदम पननी सम्मभोलि ।

ज़िंदगानी मा छे आरामुच करारुच राहतुच
बेसबब नत् आसहन मा कंडि थर्यन प्यठ घास् आलि ।

सीन् वथरावान पतुन नेकन बदन आबेखां,
बार चालन बोल आस्या कांसि हुन्द अजली फवालि ।

वासि हे युद्वै अमिस पनन्यन नरयन हुन्द बल त ज़ोर ।
आसिहे मा गुलि गण्डान फरदन दुसन बेकल सवारि,

युस हावान चूरन त आदम शकालि शेतानन खबर ।
व्याक शेताना हेक्या तमिस वतन प्यठ डालि डालि ?

बुनि ति रोज़्या बाज खारन हुन्द गुलामन लरज़् खौफ ?
ताजदारन हुन्दि महल छुनि इन्कलाबन वालि वालि,

जिस जान की बाज़ी लगाने वाले का हृदय संघर्षों में शान्त रहता है,
उसको "सुम्बल" पुष्प के कुण्डल अपने जाल में क्या फँसायें ?

जो अपने रक्त से मार्गों मंज़िलों पर बेल-बूटे बनाते जाते हैं,
उसको नयन किसी के लाल अधर या किसी की कजरारी भवें कैसे
भ्रम दे सकती हैं ?

यह सूरमा संघर्षों में अपने पग पीछे की ओर कभी उठाते हैं ?
वे फाँदते समुद्रों को और आग-बबूला होकर पर्वत-पर्वत दौड़ते हैं।

कायरों, कामचोरों और आलसियों को बहा ले जाती हैं
तरंगें क्या कभी बाँधों, तटों, पर्वत की खोहों, दरारों को कुछ समझती हैं ?

विद्युत्-भूकम्प, गिरती बिजली, वर्षा की बरसती चादरों, आँधियों,
काँटों पत्थरों के आगे
सीना फुलाता है एक निर्धन श्रमिक या वह हल चलाने वाला,

सदा लहराती रही उन्हीं कारवानों की ध्वजा,
जिन्होंने अस्थिर समय में अपने डगमगाते पैरों को सँभाला था।

यह जीवन चैन और आराम का कब होता है ?
नहीं तो बिन कारण यह घास के नीड कण्टक झाड़ों पै क्यों होते हैं ?

यह चलता जल भलों-बुरों सभी के लिए अपना सीना बिछा देता है,
क्या औरों का बोझ सहने वाला कोई ऐसा भी हो सकता है जो सदा
से गिरा हुआ हो ?

यदि अनुभव होता इसे अपनी भुजाओं के बल और ज़ोर का,
मूर्ख प्रार्थी कब हाथ जोड़ता मूल्यवान शालों-दुशालों को ?

जो चोरों और मानव-रूपी राक्षसों (शैतानों) की खबर लेता है,
कोई और शैतान क्या उसको कुपथ पर ले जा सकता है ?

अभी भी क्या दास जनों को कर लेने वालों का भय है ?
यह महल मुकुट-धारियों के ढा दिये इन्कलाब ने।

इन्कलाबुक शोरोशर बूज़ित अचन आखिर छ्यपन,
यिम दोहसरातस छि वायान पानवुनि पननी डफालि,

ज़िदं रोज़ुन गैर सुन्दे दस्त् मा ज़ोनुन स्वा,
अजहलन कमि वोन सिकन्दर आव वापस तशन् खोलि,

बोज़नाविथ ज़िन्दगी हुन्द नगम् बूज़नोवुन जहान
शायरी अन्दर बन्योव फानी कवाल्यन हुन्द कवालि ।

पीताम्बरनाथ 'फ़ानी'

यह इन्कलाब का कोलाहल सुनकर अन्त में वे छिप जायँगे,
जो दिन-रात आप अपनी डफली बजाने में मग्न हैं।

उसने औरों के सहारे जीवन बिताना ठीक नहीं समझा था,
किस उजड्ड ने यह कहा कि सिकन्दर प्यासा और खाली हाथ लौटा था।

जीवन का संगीत सुनाकर संसार को जगा दिया 'फ़ानी' ने,
कविता में 'फ़ानी' कव्वालों का कव्वाल हो गया।

पीताम्बरनाथ 'फ़ानी'

मगर व्यथ मा छे शोंगित ?

चु कव छक शाम् लटि अखताब लूसित वोश ववान ञावञि
में वोनमई बारहा सुबहस छु थनु प्योन ज़िन्दगी आवञि,
चे छी बुनि च्चिथर डीशित सर्द मागुञि दाग भय पावान,
में छुम सोंतुक ख्यालइ हावसन हुन्दि बाग फोलरावान ।

में वनतम ज़िन्दगी छा पोन्जि कुनि प्यठ ज़ांह करार आमुत ?
चु भिछ आरन कोलन ज़ांह मन्ज़िलन सा छु शुमार आमुत ।
चे हैं पानइ वुछुत मन्ज़ालिकि मगर मा मन्ज़ल्यत्नी रोज़ान,
छि मासुम पोज़ फरिसुइ तल वुफान शेक्ष संगरन सोज़ान ।

छि कोत्याह कइदि वमतस कोम वत अज़ भेड़ि फुटरावान,
वेकस रातिकि छि अज़ याशा करान शाहन पथर पावान,
यि असि यवु चव वोनि मा हेकि कांह सु जुल्मुक ज़हर असि च्योवित
दोहइ मा युपि वकन सान्यन थिरादन मूल अलरावित

खबर छम वुन्यि छि केंह बदखाह यछ़ान लोलस थवुन पावन्द,
छु ख्योठ बासान केंछन जाहिलन सान्यन कथन होंद कन्द,
खबर छम ज़िन्दगीयि छुन चान्यि हुस्नुक रंग वुन्यि आमुत,
छि वुन्यि शोकस स्यठा ठोरि वार छुन लंज़ि बागुनाह द्रामुत ।

मगर व्यथ माछि शोंगित वखछु असि सीतिन दवान दोरान,
संगर मालन छि वुठ गुमनान त गटकारस छे सथ सोरान,
व म्यवु दोहदिश गज़ल हुस्नुकि चे छई लोलस नज़र थावुनि,
चु कवु छक शाम लटि अखताब लूसित वोश ववान ञाविञ ॥

रहमान 'राही'

किन्तु वितस्ता सोई नहीं है

जब अस्त होता सूर्य क्यों फिर साँझ को तुम ठंडी साँसें भरती हो ?
मैंने कहा यह बार-बार है जन्म लेना पाना जीवन प्रातः को,
यह चैत देखा फिर भी ठंडे माघ के वह दाग़ तुमको भय दिलाते हैं,
ऋतु वसंत की आशा मेरी एक उपवन कामनाओं का लगाती है।

यह मुझे समझा कि जीवन भी क्या टिककर आ कहीं बैठा भी है,
जा नदी-नालों से पूछो कौन चलते-चलते अपने मंज़िलों को गिनता है?
तुमने देखा है कि जो कल पालने में पलता था वह पालने में कब रहा?
श्येन का बच्चा जो हो वह अपनी माँ के उर के नीचे होता है जब
पंख अपने मारता है भेजता सन्देश अपना शिखरों को।

साहस से लेकर काम बन्दी आजकल हैं बहुत सारे बेड़ियाँ तोड़े हुए,
बोल-बाला आज उनका जो गिराते हैं नरेशों को वहीं कल थे अनाथ।
कल जो हमने विष पिया अत्याचार का था कोई हमको अब पिला के देख ले,
निश्चित हमने है किया जो, बाढ़ आ के उसके जड़ को अब हिला के देख ले।

यह मुझे तो ज्ञात है होते बहुत-से दुष्ट ऐसे जो कि बेड़ी डालते हैं प्रेम को,
बहुत-से हैं मूर्ख ऐसे जिनको है मेरे कथन की मिस्री भी कड़वी लगी,
मुझको यह भी ज्ञात है जीवन पै अब तक तेरी सुन्दरता का रंग आया नहीं।
अब भी कितनी अड़चनें हैं चाव को और अब भी कितनी डालियाँ हैं जिनमें
अब तक कोई कोंपल फूट निकली है नहीं।

पर वितस्ता है नहीं सोई हुई और यह समय भी भागता
और दौड़ता भी है हमारे साथ-साथ।
अब भी पर्वत-शिखरों के होंठ कुम्हलाते ही हैं और अंधकार
की आस अब भी टूटती ही जाती है।
पर हुस्न के मैं यह ग़ज़ल गाता रहूँगा दिन-ब-दिन बस तुम्हें रखनी है
निगाह इस प्रेम पर
जब अस्त होता सूर्य, क्यों फिर साँझ को तुम ठंडी साँसें भरती हो ?

रहमान 'राही'

गुजराती

चयन : गुजराती सलाहकार समिति

अनुवाद : रणधीर उपाध्याय
आनंदीलाल तिवारी
सुन्दरम्

कवि-नाम	कविता
उमाशंकर जोशी	*जो वर्ष बीते—जो रहे*
गनी दहींवाला	*भिखारिन का गीत*
जयन्त पाठक	*मुझे लगता है*
निरंजन भगत	*हार्नबी रोड, बंबई (१९५१)*
बालमुकुन्द दवे	*सहज संगम*
मनसुखलाल झवेरी	*विपर्यय*
रामनारायण वि. पाठक (स्व.)	*तुकाराम का स्वर्गारोहण*
सुन्दरम्—त्रिभुवनदास लुहार	*कृपासाधन*
सुन्दरजी बेटाई	*अपने वतन की बातें*
हसमुख पाठक	*किसी को कुछ पूछना है ?*

गयां वर्षो

(१)

गयां वर्षो ते तो खबर न रही केम ज गयां !
गयां स्वप्नोल्लासे, मृदु करुणहासे विरमियां !
अहो आयुमार्गे स्मितभय, कदी तो भयभर्यो;
बधे जाणे निद्रा महीं डग भरूं एम ज सर्यो !
उरे भारेलो जे प्रणयभर, ना जंप क्षण दे,
स्फुर्यो कार्ये काव्ये, जगमधुरपो पी पदपदे
रची सौहार्दोनो मधुपट अविश्रान्त विलस्यो.
अहो हैयुं ! जेणे जिवतरतणो पंथ ज रस्यो.

न के ना'व्यां मार्गे विष, विषम ओथार, अदया
असत् संयोगोनी; पण सहुय संजीवन थयां.
बन्या को संकेते कुसुमसम ते कंटक घणा,
तिरस्कारोमांये कहींथी प्रगटी गूढ करुणा.
पडे द्रष्टे, डूबे कदिक शिवनां शृंग अरुणां
रह्यो झंखी, ने ना खबर वरसो केम ज गयां !

जो वर्ष बीते, जो रहे

(१)

बीते वर्ष,
पता ही न रहा कैसे वे बीते ?
स्वप्नोल्लास में बीते मृदु करुण हास में विलीन हुए।
ग्रहण किया आयुष्पथ कभी स्मितयुक्त, कभी भयभरा।
मानो सदा निद्रा में ही डग भरता होऊँ इसी प्रकार चलता रहा।
हृदय में जो प्रणय-भार जमा हुआ है,
वह क्षण-भर भी चैन नहीं लेने देता,
कार्य और काव्य में वह प्रकट हुआ,
जग-मधुरिमा पद-पद पर पीकर,
सौहार्दों का मधुपुट रचकर,
अविश्रान्त रूप से विलसित होता रहा।

अरे यह हृदय।
आयुष्पथ को इसीने तो रसमसा दिया!!
ऐसा नहीं कि—
मार्ग में विष, विषम स्वप्न-भय असत् संयोगों की
अदया नहीं आई।
किन्तु सभी ही संजीवन बन गए;
किसी संकेत से अनेक काँटे कुसुम से हो गए।
तिरस्कारों के मध्य में भी कहीं से गूढ़ करुणा प्रकट हुई !
कभी दीखते हैं,
कभी डूबते हैं,
वे अरुण शिवत्व के शृंग.
मैं तो रटता ही रहा····
और न जाने कैसे वर्ष बीते·······!!

रह्यां वर्षो तेमां—

(२)

रह्यां वर्षो तेमां हृदयभर सौन्दर्य जगनुं
भला पी ले; व्हीले मुख फर रखे, सात डगनुं
कदी लाधे जे जे मधुर रची ले सख्य अहियाँ;
नथी तारे माटे थई ज निरमी 'दुष्ट' दुनिया.
—अहो नानारंगी अजब दुनिया! शें समजवी?
तने भोळा भावे करुं पलटवा, जाउं पलटी,
अहंगर्तामां हा पग उपरथी, जाय लपटी!
विसारी हुंने जो वरतुं, वरते तुं मधुरवी.—

मने आमंत्रे ओ मृदुल तडको, दक्षिण हवा,
दिशाओनां हासो, गिरिवरतणां शृंग गरवां;
निशाखूणे हैये शशिकिरणनो आसव झमे;
जनोत्कर्षे हासे परमऋतलीला अभिरमे;
—बधो पी आकंठ प्रणय भुवनोने कहीश हुं:
मळ्यां वर्षो तेमां अमृत लइ आव्यो अवनिनुं.

उमाशंकर जोशी

(२)

जो वर्ष रहे उनमें.......
हृदय भर जगत् का सौन्दर्य पी ले भाई!
मुँह लटकाये न फिर!
सप्तपद का सख्य—
अगर यहाँ कभी मिल जाय
तो तू उसे मधुरतम बना ले!
भाई तेरे ही लिए यह दुनिया 'दुष्ट' नहीं बनाई गई!
आः! नाना रंगी निराली दुनिया! तुझे कैसे समझा जाय?
भोलेपन से मैं तुझे पलटने का प्रयत्न करता हूँ
और मैं पलट जाता हूँ!!
तिस पर अहंगर्ता मैं, हा, पैर फिसल जाता है!
पर अगर मैं 'मैं' को भूलकर व्यवहार करूँ
तो तू कितनी मधुरता से बाज आती है!

मुझे निमंत्रित कर रहे हैं—
वह मीठी धूप
दक्षिण हवा
दिशाओं का हास
गिरिवरों के गौरवमय शृंग
रात्रि के किसी कोने में हृदय में
शशि-किरणों का आसव चू रहा है!
जन उत्कर्ष में ह्रास में परम ऋत लीला ही विलसित हो रही है!
सारी स्नेह-सुषमा को आकंठ पीकर
भुवनों से यह कहूँगा—
जीवन के जितने वर्ष प्राप्त हुए उनमें
'अमृत ले आया अवनि-तल का!!'

उमाशंकर जोशी

भिखारणनुं गीत

भिखारण गीत मझानुं गाय,
आंखे झळझळियां आवे ने अमृत कानोमां रेडाय.
....भिखारण०

'मारा परभु मने संगावी आपजे
सोनारूपानां बेडलां.
साथ सैयर हुं तो पाणीए जाउं
ऊडे आभे साळुना छेडला'
एना करमांहे छे मात्र
भांग्युं-तुटयुं भिक्षापात्र,
एने अंतर बळती लाय
ऊंडी आंखोमां देखाय,
एने कंठे रमतुं गाणुं, एने हैये दगती हाय.
....भिखारण०

'मारा परभु मने संगावी आपजे
अतलस अंबरनां चीर,
पे'री ओढीने मारे ना'वा जवुं छे
गंगा-जमनाने तीर'.
एना कमखे सो सो लीरा
माथे ऊडता ओढणचीरा,
एनी ळळती ढळती काय
केमे ढांकी ना ढंकाय;
गाती ऊंचे ऊंचे सादे त्यारे घांटो बेसी जाय.
....भिखारण०

'शरदपूनमनो चांदो परभु मारे
अंबोडे गूंथी तुं आप,
मारे कपाळे ओली लाल लाल आडश,
उषानी थापी तुं आप'.

भिखारिन का गीत

भिखारिन मज़े का गीत गाती है!
आँखें डबडबाती हैं पर कानों में अमृत उँडेला जाता है!!
वह गाती है····

'मेरे प्रभु! तू सोने-चाँदी की गगरियाँ मँगा दे!
मैं अपनी सखियों के संग पानी भरने जाऊँ!
मेरे आँचल का छोर हवा में फर-फर उड़ता जाये!'
पर अरे!
उसके हाथ में तो सिर्फ़ टूटा-फूटा भिक्षा-पात्र ही है!
और उसके हृदय की जलती हुई आग
उसकी धँसी हुई आँखों में दिखाई दे रही है!
उसके कंठ से गीत उमड़ रहा है, उसके हृदय से आह निकल रही है!
फिर भी भिखारिन मज़े का गीत गाती है!!
वह गाती है········

'मेरे प्रभु! मुझे अतलस अंबर के चीर मँगा दे!
जिन्हें पहनकर मैं गंगा-यमुना के तीर नहाने जाऊँ!'
पर अरे!
उसकी कमर पर तो सौ-सौ चिथड़े लटक रहे हैं!
उसके सिर के बाल बिखरे उड़े जा रहे हैं।
उसकी काया क्षीण है, ढली जा रही है!
वह अपनी काया को कैसे ढँके?
जब वह ऊँचे स्वर से गाती है तो गला बैठ जाता है!
फिर भी भिखारिन मज़े का गीत गाती है!
वह गाती है····

'शरद पूनों का चाँद, प्रभु, तू मेरे जूड़े में गूँथ दे।
मेरे गाल पर तू उषा की वह लालिमा पोत दे!'

एना शिर पर अवळी आडी
जाणे ऊगी जंगल झाड़ी,
वायु फागणनो विंझाय
माथुं धूळ वडे ढंकाय.
एना वाळे वाळे जूओ बच्चे हाथे खणती जाय.
....भिखारण०

'सोळे शणगार सजी आवुं प्रभु !
मने जोवाने धरती पर आवजे,
मुजमां समायेल तारा स्वरूपने
नवलख ताराए वधावजे'.
एनो भक्तिभीनो साद
देतो मीरां केरी याद,
एनी श्रद्धा एनुं गीत,
एनो परभु, एनी प्रीत,
एनी अणसमजी इच्छाओ जाणे हैयुं फोरी खाय,
आंखे झळझळियां आवे ने अमृत कानोमां रेडाय.
....भिखारण०

गनी दहींवाला

पर अरे!
उसके सिर के बाल किस तरह आड़ी-टेढ़ी
बन की झाड़ी की तरह फैले हुए हैं।
फागुन की बयार चल रही है।
उसकी सारी देह धूल से सनी जा रही है।
सिर पर जितने बाल हैं उतनी जूएँ हैं दोनों हाथों से
सिर को खुजाती जाती है।
और भिखारिन मज़े का गीत गाती है!!
वह गाती है....

'सोलहों सिंगार सजकर मैं जब आऊँ प्रभु!
तब तू मुझे धरती पर देखने आया!
मुझमें समाये तेरे ही रूप का
नौ लाख तारों से स्वागत करना।'

पर अरे!
उसकी भक्ति भीनी बानी
लगती मीराँ की ही बानी,
उसकी श्रद्धा उसका गीत,
उसका 'परभु' उसकी प्रीत।
उसकी अबोध इच्छाएँ मानो दिल को कुरेद खाती हैं
आँखें डबडबाती हैं, कानों में अमृत उँडेला जाता है।
भिखारिन मज़े का गीत गाती है।

गनी दहींवाला

मने थतुं

न रूप, नहि रंग, ढंग पण शा अनाकर्षक !
नहीं नयन वीजनी चमक, ना छटा चालमां,
गुलाब नहि गालमां; निरखी रोज रोजे थतुं :
कला विरूप सर्जने शीद रच्यो विधि वेडफी !

अने निरखुं रोज मोहक सुरेख नारीकृतिः
पडघे नयनवीज जेनी उरअद्रि चूरेचूरा
ढळे थई, अने विरूप जड नारीनो हुं पति
अतुष्ट, दई दोष भाग्यबलने वहंतो धुरा.

वह्या दिन, अने बनी जननी ए शिशु एकनी,
उमंगथी उछेरती लघुक प्राणना पिण्डने,
अने लघुक पिण्ड-जीवनथी ऊगरातुं शिशु
थतुं घूंटणभेर, छातीमहीं आवी छुपाय, ने
हसे नयन-मातने निरखी नेहनी छालक.
मने थतुं :
तने अगर चाहवा बनी शकाय जो बालक !

जयंत पाठक

मुझे लगता है।

न रूप है, न रंग, और ढंग भी कैसा अनाकर्षक है,
नयनों में बिजली की चमक नहीं, चाल में छटा नहीं,
गाल में गुलाब नहीं, रोज़-रोज़ देखकर ऐसा लगता है
विरूप के सर्जन में विधाता अपनी कला क्यों व्यर्थ खर्च करता

रोज वैसी सुरेख और मोहक नारी-आकृतियाँ देखता हूँ
जिनके नयनों की बिजली का आघात से उर-अद्रि चूर-चूर हो जाता है
और एक मैं हूँ इस रूप-हीन जड़ नारी का पति
अतुष्ट, भाग्य-बल को दोष देता हुआ जीवन की धुरा ढो रहा हूँ।

इसी तरह बहुत दिन बीते और वह एक शिशु की जननी बनी।
प्राण के इस लघु पिंड को बड़ी उमंग से उसने पाला-पोसा
और वह लघु पिंड, जीवन से छलकता हुआ वह शिशु, घुटनों के
बल चलने लगा।
आकर माँ की छाती में छिप जाता है और हँसता है माँ की
आँखों में देखकर स्नेह की छलक।
मुझे लगता है:
यदि तुझे चाहने के लिए मैं बन सकूँ बालक।

जयंत पाठक

ह्यार्नबी रोड, मुंबई (१९५१)

आसफाल्ट रोड,
स्निग्ध, सौम्य ने सपाट, क्यै न खोड.
क्लॉक टावरे थया (सुणाय) बार रातना,
सळंग हारमां वसे अनेक किन्तु एक जातनां
नियोन फानसो,
प्रलंब ट्रामना पटा परे धसे
प्रकाश-फानसो,
न सूर्यतेजमां हस्या पटा हवे हसे.
बधो ज पंथ लोहहास्यथी रसे.

अहीं सवारसांज
होय के न होय कामकाज
केटकेटला मनुष्य—एकमेकथी अजाण
ने छतां न कोई भेत, सर्वमां हजू य प्राण·—
केंक वृद्ध,
जे विलीन भूतकाळ पर सदाय क्रुद्ध
लोअरेन्समां मळे न अेवुं दूरबीन
जोई जे वडे शकाय पाछला बधा ज दिन ?
अनेक नवजवान
जेमनुं भविष्य ठोकरे चडथुं जरी न भान,
ने न शान्भिला न सेन्ट्रले भविष्यनी छबि,
सुप्राप्य ए. जी. आई., गेल पर, चार्टरे ज पामवी;

अनेक फांकडा
बधा ज मार्ग जेमने कदी न सांकडा,
छतांय व्हाईटवेझ काचपार काष्ठसुन्दरी अपूर्व आभरण
तहीं ज ठोकराय चक्षु ने चरण;

हार्नबी रोड, बंबई (१९५१)

आसफाल्ट रोड,
स्निग्ध सौम्य औ' सपाट कुछ भी न खोंड।
क्लॉक टावर में बजे (सुने) बारह रात के,
एक कतार में अनेक किन्तु एक भाँत के
नियोन फानूस;
लंबी ट्राम की पटरियों को घिस रहा है
प्रकाश-रेती की तरह!
ये पटरियाँ सूर्य-तेज में नहीं हँसी, अब हँस रही हैं।
सारा मार्ग 'लोह हास्य' से रसमसा उठा है।

यहाँ सबेरे और शाम,
काम हो या न हो,
कई लोग—एक-दूसरे से अनजान,
पर फिर भी कोई प्रेत नहीं, सबमें अब भी प्राण
कई वृद्ध
जो अपने विलीन भूत काल पर सदा ही क्रुद्ध हैं,
अरे, लोरेन्स में क्या कोई ऐसी दूरबीन नहीं मिलती
कि जिससे ये अपने विगत काल को देख सकें?
अनेक नवयुवक
जिन का भविष्य अभी ठोकरें खा रहा है, जिन्हें ज़रा भी भान नहीं,
और जिनके भविष्य का चित्र न शांग्रिला में न सेण्ट्रल में प्राप्य है,
सुप्राप्य है ए. जी. आई. गेल पर और चार्टर में!

कई फक्कड़
सभी रास्ते जिनके लिए सँकरे हैं ही नहीं,
फिर भी व्हाईट वेज के शीशे की उस अपूर्व आभरणयुक्त काष्ठसुन्दरी पर
जिनकी आँखें और पैर ठोकरें खाते हैं!

अनेक रांकडा
कुटुम्बखर्चना रटे जमाउधार आंकडा,
सदाय वेस्ट एन्ड वॉच पास आवतां जतां
समय मिलावता, रखे ज काळ थाय बेपता;
अनेक टाईपिस्ट गर्ल्स, कारकून,
एकसूर जिन्दगी सहो जतां ज सूनसून,
लंचने समे इवान्स फ्रेझरे लिये लटार
जोई ले नवीन स्लेक्स टाईश बे घडी ऊभा रही टटार;

कैं मजूर
जे हजू जीवी रह्या कही : 'हजूर जी हजूर'.
एमने हजू न कोईए कह्युं : 'तमे स्वतंत्र'.
छो अखंड चालतुं ज 'टाईम्स ऑफ इन्डिया'नुं यंत्र;
कोई नार (सर्वथी जुदी पडे जराक)
ब्युक फॉर्डमां ज शोधती सळंग रातनुं घराक;
पारकींगना लख्या छ स्पष्ट चार
फूटपाथ मात्र फेरवाय ते'नुसार;
कोई (हुं समो, न हुं ?) कवि
अनेक पाछली स्मरे, न पंक्ति एक पामतो नवी,
पड्या छ जॉईस प्रुस्त तो न्यु बूक कंपनी विषे.
परन्तु जिन्दगी न जीववी सदाय शक्य पुस्तको मिषे;
अहो मनुष्य केटकेटला—पदे पदे जणाय चालमां स्खलन,
न होय स्वप्नमां शुं एमनुं हलन चलन ?
सवार सांज आवता जता....

सवाल स्हेज चित्तमां रमे :
'अहो बधाय क्यां जता हशे ज आ समे ?'
तहीं ज पंथ, जेह पायनुं न चिह्न एक धारतो.

कई मुफलिस
जो सदा ही कुटुम्ब-खर्चे के जमा-उधार के आँकड़े रटते रहते हैं
और हमेशा वेस्ट एण्ड वाच के समीप आते-जाते
अपनी घड़ी का समय ठीक करते रहते हैं, कहीं ऐसा
न हो कि काल लापता हो जाय।
अनेक टाईपिस्ट गर्ल्स, कारकुन
जो गुप-चुप एक ढर्रे से जीवन को सहते जाते हैं,
लंच के समय इवान्स फ्रेज़र में चक्कर लगा आते हैं,
और पल-भर सीधे खड़े होकर नई स्लेक्सटाइयोंको देख लेते हैं!

कई मज़दूर
जो अब भी जी रहे हैं 'हुज़ूर, जी हुज़ूर' कहते-कहते!
उन्हें अब तक किसी ने यह नहीं कहा, 'तुम हो स्वतंत्र',
भले ही चलता रहे अखंड गति से 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' का यंत्र।
कोई नारी (जरा औरों से अनोखी)
जो ब्यूक फोर्ड में ही ढूँढ़ती है रात-भर का ग्राहक;
पार्किंग के लिए दिन नियत किये हुए हैं,
उसीके अनुसार सिर्फ फुटपाथ ही बदला जाता है।
कोई (मुझ-जैसा, मैं नहीं?) कवि
जो पुरानी पंक्तियों को स्मरण कर रहा है, एक भी नई नहीं पाता,
जोईस और प्रुस्त न्यू बूक कंपनी में पड़े हुए हैं,
किन्तु ज़िन्दगी पुस्तकों के बीच सदा नहीं गुज़ारी जा सकती!
अरे, कितने लोग पद-पद पर चाल में स्खलन दृष्टिगोचर होता है?
कहीं उनका हिलना-डुलना स्वप्न में तो नहीं हो रहा है?
सबेरे और शाम,
आते हैं और जाते हैं!

"अरे, ये सब इस समय कहाँ जाते होंगे?"
मन में अनायास यह प्रश्न उठता है,
वही मार्ग, जो अपने ऊपर एक भी पद-चिह्न धारण नहीं करता,

कहे : 'धरा परे ज क्यां हता ?'
अनेक आलिशान बेउ कोर, जे इमारतो
समाधिभंग साधुशी तरत् तडूकती : 'न' ता, न' ता'
ठणं ठणं पसार थाय ट्राम आखरी, कशी गति !
जरूर कही शकाय क्यां जती कया डिपो प्रति;
मनुष्यनुंय ते रहस्य कैंक तो हुं जाणतो,
न जोयुं आंखथी परन्तु अंतरे प्रमाणतो,
के अस्तमान सूर्य (जेहना ज तो बधा छ वारसो) हरी जतो,
समग्र ए समूह स्वप्नलोकमां सरी जतो,
सहस्र सूर्यथी सदाय भासमान,
भोंय जेहनी छ आसमान,
ज्यां सदाय जागृति,
न एक पाछली स्मृति,
प्रदेश जे न पारको,
न ज्यां कशोय भार,
स्वैर ज्यां विहार....
एमने पदे पदे न आ प्रकाशता शुं तारको ?

आसफाल्ट रोड,
स्निग्ध, सौम्य ने सपाट, कैं न खोड !

निरंजन भगत

कहता है: "ये पृथ्वी पर थे ही कहाँ?"
दोनों ओर जो अनेक आलीशान इमारतें खड़ी हैं,
वे समाधिभंग साधु की भाँति तुरन्त उखड़ पड़ती हैं:
"नहीं थे, नहीं थे।"
और····टनन्-टनन् करती आखिरी ट्राम गुज़रती है,
क्या गति है?
उसके लिए तो यह जरूर कहा जा सकता है कि
वह कहाँ जाती है, किस डिपो की ओर
मानव-रहस्य को मैं कुछ तो जानता हूँ।
आँखों से न भी देखा हो पर हृदय तो प्रमाणित करता ही है,
कि अस्तमान सूर्य (जिसके ये सभी वारिस हैं) सभी को हर लेता है।
और सारा समूह स्वप्न-लोक में फिसल पड़ता है:
सहस्र सूर्य से सदा प्रकाशित,
आकाश जिसकी भूमि है,
जहाँ सदा ही जागृति है,
जहाँ एक भी पूर्व स्मृति मौजूद नहीं है,
जो पराया प्रदेश नहीं है,
जहाँ किसी का भार नहीं है,
जहां स्वर-विहार संभव है····
ये आकाश के तारे उनके पद-पद तो प्रकाशित नहीं हो रहे हैं?

आसफाल्ट रोड
स्निग्ध, सौम्य औ' सपाट, कुछ भी न खोंड।

निरंजन भगत

सहज संगम

(१)

सखी आपणो ते केवो सहज संगम !
ऊडतां ऊडतां वडलाडाळे...
आवी मळे जेम कोई विहंगम,
एम मळ्यां उर बे अणजाण :
वार न लागी वहालने जागतां
जुगजुगनी जाणे पूरवपिछाण.

पांखने गूंथी पांखमां गेळी,
रागनी प्याली रागमां रेडी,
आपणे गीतनी बंसरी छेडी.

रोज प्रभाते ऊडतां आघां,
सांजरे वीणी वळतां पाछां,—
तरणां, पीछां, रेशमी धागा,
शोधी घटाळी ऊंचेरी डाळो,
मशारूथीये साव सुंवाळो
आपणे जतने रचियो माळो.

एकमेकमां जेम गूंथाई
वडलानी वडवाई, रूपाळी
तेज–अंधारनी रचती जाळी,
रोजिंदी घटमाळमां तेवां
हूंफभर्या सहवासथी केवां
आपणांये सखी दोय गूंथायां
अंतर प्रेमने तंत बंधायां !
ऋतुऋतुना वायरा जोया,
भवना जोया तडका–छांया,
भाग्यने चाकडे घूमतां घूमतां
जिन्दगीना केवा घाट घडाया !

सहज संगम

(१)

सखी, हमारा यह कैसा सहज संगम!
जिस तरह दो पक्षी उड़ते-उड़ते बरगद की किसी
डाल पर आ मिलते हैं,
उसी तरह हमारे इन दो अज्ञात हृदयों का यहाँ
मिलन हुआ है।
उनमें स्नेह के जगते ज़रा भी देर न लगी,
मानो युग-युग का पूर्व परिचय हो।

पंख को पंख में गूँथकर,
राग की प्याली राग में उँडेलकर,
हमने गीत की बंसी छेड़ी।

प्रतिदिन प्रातःकाल हम सुदूर उड़ जाते,
तिनके, पंख, रेशमी धागे बटोरकर
सन्ध्या समय हम लौट आते।
मशरू से भी अधिक सुकोमल
हमने सयत्न नीड रचा।

जिस प्रकार बरगद सौरें
एक-दूसरे में गूँथकर सुन्दर-सी तेज और तिमिर की
जाली बनाती हैं,
उसी तरह है सखी, रोजमर्रा के ढर्रे में भी
उष्मा भरे सहवास से हमारे हृदय आपस में
कैसे गुँथ गए हैं, प्रेम-तन्तु से बँध गए हैं।
हमने विभिन्न ऋतुओं के रंग देखे,
जीवन की धूप-छाँह देखी,
भाग्यचक्र पर घूमते-घूमते
हमारे जीवन ने कैसा आकार लिया है!

आपणे एमां साव निरंजन
सुखने दुखने भोगवे काया;
जे जे सखी ! दीनानाथे दीधुं
आपणे ते संतोषथी पीधुं,
संग माणी भगवाननी माया !

(२)

जोने सखी ! जगवडला हेठे
ऋणसंबन्धे आवी चडेलो
केवो मळ्यो भातभातनो मेळो !
कोक खूणे संसारिया ऋणी,
कोक खूणे अवधूतनी धूणी !
कोक पसन्द करे सथवारो,
कोक वळी निःसंग जनारो !
भोर भई तोय घोरतो गाफल,
कोक सचेत अखंड ज जागे;
कोक उतारी बोजनी भारी,
खाई पोरो पल चालवा लागे !
अमलकसूंबा घोळती पेली
जामती राते जामती डेली,
करमी धरमी मरमी बधो
ग्याननी केवी गोठ मचेली !

ढळती घेघूर छांयडी हेठी
भजनिकोनी मंडळी बेठी;
उरने सूरना स्नेहथी ऊंजे,
घेरो घेरो रामसागर गुंजे !

(३)

वगडाना सूनकारने माथे
तडको केवो झापटां झींके !

हम तो निरे निरंजन ही रहे हैं,
यह देह सुख-दुःख भुगतती है।
सखी, दीनानाथ ने जो कुछ भी हमें दिया
उसे उसकी माया का सुयोग मानकर
संतोष से हमने
अंगीकार कर लिया।

(२)

सखी देख तो—इस विश्व वट के नीचे
ऋणानुबंध के कारण कैसा बहुरंगी
मेला आ लगा है....
एक कोने में सांसारिक ऋणी बैठा है,
तो दूसरे कोने में अबधूत धूनी रमाये हुए हैं।
कोई हमराही पसन्द कर रहा है,
और कोई है निःसंग जाने वाला।
भोर हुआ, फिर भी गाफ़िल खुर्राटे लेता है,
और अखंड जागता ही रहता है सचेत।
कोई बोझ उतारकर जरा देर सुस्ताकर,
फिर डग भरने लगता है।
चौपाल में बढ़ी रात जमकर रँगरेलियाँ की जा रही हैं—
कर्मी, धर्मी, और मर्मियों की
क्या ही ज्ञान गोष्ठियाँ जमी हैं!

और कहीं झुकी हुई मस्तानी घनी छाया के नीचे
भजनिकों की मंडली बैठी है।
हृदय को स्वर-स्नेह से चिकनाता हुआ
गंभीर राम-सागर गूँज रहा है।

(३)

बियाबान के सन्नाटे पर धूप की क्या
बौछार होने लगती है।

आवी जाणे मलेकाळनी वेळा
जीव चराचर कंपता बीके !

तोय जोने पेलुं घण रे ध्यानी
निजानंदे जाणे डोलतो ज्ञानी !
होला भगतने धून शी लागी !
तूहि तूहि केवो गाय वेरागी !

चोखूणियां पेली चोतरी वच्चे
कोक अनामी सतीमानी देरी,
पासे ऊभो पेलो पाळियो खंडित
शौर्यकथाओनां फूलडां वेरी.

एक कोरे पेली परबवाळी
तरस्या कंठनी आरत जाणी,
कोरी माटीनी मटकी मांही
संचकी बेठी शीतळ पाणी.

मटकीनुं पीने घूंटडो पाणी,
भवनो मेळो भावथी माणी,
आपणेये विशराम करी घडी
ऊडशुं मारग कापतां आगे,
थोभशुं क्यांक जरी पथमां वळी
पांखने थाक ज्यहीं सखी लागे.

आंख भरी फरी नीरखी लेशुं
आपणे संग जे यातरा खेडी,
पांखमां वेग भरी नवला, फरी
कापशुं कोटिक तेजनी केडी...
तेजनी केडी....तेजनी केडी....

बालमुकुन्द दवे

मानो प्रलय की बेला आ पहुँची है!
चराचर जीव भय से प्रकंपित हैं।

फिर भी उस रेवड़ को तो देख!
ऐसा मालूम होता है मानो कोई ज्ञानी
निजानंद में भ्रम रहा है।
होला भगत को क्या ही धुन लगी है!
वह वैरागी क्या ठाठ से गा रहा है····
"तू ही···तू ही।"

उस चबूतरे के मध्य में किसी अनामा सती
का छोटा-सा मंदिर है,
पास ही वह खंडित शिला है जो शौर्य कथाओं
के फूल बिखेर रही है।
एक ओर वह प्याऊ वाली है
जो तृषित कंठ को आर्त जानकर
मिट्टी की नई मटकी में ठंडा पानी भरे बैठी है।

मटकी का एक घूँट पानी पीकर,
संसार के मेले का मज़ा लूटकर,
घड़ी भर विश्राम कर,
हम भी लंबा रास्ता काटते हुए,
आगे उड़ जायँगे।
सखि, जहाँ थकने लगेंगे,
वहीं मार्ग में कुछ देर ठहर जायँगे।

संग-संग हमने जो यात्रा तय की,
उसे आँख भरकर निहार लेंगे।
और पखों में नया वेग भरकर
फिर से काटने लगेंगे—कोटिक प्रकाश का पथ····
····प्रकाश का पथ····प्रकाश का पथ····

बालमुकुन्द दवे

विपर्यय

मटकुंय नथी मार्युं हजी एक तहीं ज आ
हाथताळी दई चीती गयां शुं वर्ष आटलां ?
गया दांत, जवा मांड्या वाळ ने काय जर्जर
थवा लागी : बधुं ए तो ठीक रे ! काल काळनुं
करी काम रह्यो : तेनो शोक शो ? हर्ष वा कशो ?

परंतु खटके मारा हैयामां आ विपर्यय
के पहेलां दूरदूरेनां गामो ने नगरो थकी
लक्ष्मी सत्ता प्रतिष्ठानां जूजवां स्वप्न सेवतां,
कैं कैं आशाथी प्रेरातां मनुष्योनी कतारने
रोज सांजसवारे जे लावती ने उतारती
(वावती स्वप्नने जाणे भूमिमां पुरुषार्थनी !)
सिद्धिसमृद्धिरहोती आ विश्वमोहिनी भूमिमां,
आवती गाडी : ते जोतां ऊठतुं नाची ते हवे
हैयुं आ तलसी झूरी मचावे फफडाट शा
अधीरुं, नीरखी एने दूरना गामनी भणी
जवा ऊपडती रोज सांजरे ने सवारमां !

मनसुखलाल झवेरी

विपर्यय

पलक झपी नहीं अभी एक,
चुटकी बजाते बीत गए,
क्या इतने वर्ष ?
दाँत गिरे, बाल गिरने लगे,
और काया जर्जरित होने लगी।
यह सब तो ठीक है········।
रे, काल काल का काम कर रहा है।
उसका शोक क्या? हर्ष क्या?

परन्तु मेरे हृदय में यह विपर्यय खटकता है,
कि पहले दूर-दूर के गाँवों और नगरों से
लक्ष्मी सत्ता और प्रतिष्ठा के विविध स्वप्नों से पूरित,
अनेक आशाओं से प्रेरित मनुष्यों की कतारों को
जो रोज सवेरे और शाम
इस सिद्धिसमृद्धि से सुशोभित,
विश्वमोहिनी भूमि में
लाती और उतारती,
(मानो पुरुषार्थ की भूमि में स्वप्नों को बोती!)
गाड़ी आती थी।
उसे देखकर जो हृदय नाच उठता था,
वही अब तरसते-झुरते, कैसी आहें भरता है,
दूर-दूर के गाँवों की ओर
जाने के लिए
रोज सवेरे और शाम,
छूटती उस गाड़ीको देखकर····

मनसुखलाल झवेरी

तुकारामनुं स्वर्गारोहण

(१)

"तुकाराम, तुकाराम, रटता कां तुका तुका
उर्वशीनृत्य वेळाये हता अन्यमनस्क कां?"
"देवी बन्यो एक विचित्र योग :
आयुष्य षण्मासनुं शेष भक्तनुं.
जीवन् छतां मुक्त ज भक्त ए तो,
आयुष्यान्ते मुक्तिने पामवाना,
ने एमनां संचितनां सुखो ते
न भोगवाये विण स्वर्ग क्यांय!
ने भक्तने स्वर्ग शी रीत लाववा?
जेने निजेच्छाथी ज अहीं अणाय!"
जरा हसी त्यां वदती शची के :
"तमे रह्या तद्‌विद तो प्रतारणे;
देवो अने दानवने प्रतार्या :
तो एक भोळा भक्तनी वात ते शी?"
"अरे, अरे, देवी तमे भूलो छो,
प्रतारवानुं छिद्र छे वासना ज.
जेने स्पृहा नहि अने नहि वासनाये,
तेने कहो स्वर्गनी शी पड़ी छे?
ब्रह्मर्षि में नारदनेय पूछ्युं,
एये कशो मार्ग बतावी ना शक्या."
"हां! हां! एम करो देव, ब्रह्मर्षिने ज पाठवो,
कहो के स्वर्गना देवो भक्तनां भजनोत्सुक.
एक वार कहो आवी अभंगो सुणवे स्वयम्,
ना नहीं कहे." "खरे देवी! पुरुषोने प्रतारणा
विद्या हशे, स्त्रीओनो तो जन्मप्राप्त स्वभाव छे!"
"ना, ना, प्रतारणा ए ना, मारे भक्त निहाळवा
तणा कोड–अने साथे सतीनेये–" "भले भले
पतिसेवारता नित्ये पतिभोगाधिकारिणी
अने हवे नारदने मळुं छुं जै."

तुकाराम का स्वर्गारोहण

(१)

"तुकाराम, तुकाराम, यह तुका-तुका तुम क्या कर रहे हो? आज जब उर्वशी नृत्य कर रही थी तब तुम अन्यमनस्क क्यों थे?"

"देवी, एक बड़ा विचित्र प्रसंग उपस्थित हुआ है? भक्त की आयु केवल छः मास की शेष रह गई है, भक्त तो जीवन् मुक्त होता है न? आयु पूरी होने पर मुक्ति तो उन्हें मिलेगी ही.

किन्तु अपने संचित पुण्यों का सुख-स्वर्ग छोड़कर अन्यत्र तो नहीं भोगा जा सकता! लेकिन भक्त को स्वर्ग लायें कैसे?

उन्हें तो उनकी इच्छा से ही यहाँ लाया जा सकता है।"

किंचित् हँसकर शची ने कहा, "तुम तो छल-कपट की कला के विशेषज्ञ हो! देवों और दानवों दोनों को तुमने छला है! तब भला एक भोले भक्त की क्या बिसात है?"

"अरे नहीं, तुम भूलती हो देवी, छलने का छिद्र, वासना ही है न? जिसे कोई स्पृहा नहीं और कोई वासना नहीं, उसे स्वर्ग की क्या पड़ी है? मैंने ब्रह्मर्षि नारद से भी पूछा था। वे भी कोई मार्ग नहीं बता सके।"

"हाँ-हाँ, ऐसा करो देव, ब्रह्मर्षि को ही भेजो! वे जाकर भक्त से कहें कि स्वर्ग के देवता उनके भजन सुनना चाहते हैं। एक बार आकर यदि वे स्वयं अपने अभंग सुनायें तो बड़ी कृपा हो।

मैं मानती हूँ कि भक्त 'ना' नहीं कहेंगे।"

"यह ठीक कहा तुमने, क्यों न हो छल-कपट पुरुषों के लिए आखिर एक प्राप्त की हुई विद्या है, जब कि वह स्त्रियों का जन्मजात स्वभाव है!"

"नहीं, नहीं, इसमें छल की बात नहीं है। मुझे भक्त को देखने की इच्छा है। और साथ में सती को भी।"

"ठीक ठीक! उचित ही है। पति-सेवा-रता स्त्री सदा पति-भोगाधिकारिणी है ही। तो मैं अब जाकर नारद से मिलता हूँ।"

(२)

आजे भक्त तुकाराम ऊठी ब्राह्ममुहूर्तमां
गुंजता स्वर धीमाथी अभंगो स्फुरता स्वयम्.
त्यां सतीए कह्युं आवी : "स्नानवेळा थई गई."
"जाग्यां छो ? न सुणी आजे वलोणुं धार्युं मे हतुं
हजी ऊठ्यां नहि हशो." "वलोणुं बंध छे थयुं.
केम कांई हतुं कहेवुं ?" "आजे स्वप्न विशे मने
वीणापाणि ऊर्ध्वशिख विष्णुभक्त मळ्या अने
कह्युं देवो निमंत्रे छे सुणवा भजनो मने
अने वळी उच्चर्या के सतीने कही राखजो
साज संभाळवा माटे तमारी साथ आववा.
तो कहो—" कर लंबावी सतीने स्कन्ध मूकतां
पूछ्युं भक्ते : "कहो साथे तमेये आवशो ज ने ?"
सती नीचुं रही जोई ढींचणे माथुं टेकवी,
"पड्यां शुं कै विचारे के ?" "ना, ना, एवुं कंई नथी.
मारे तो ए ज कहेवुं'तुं, तमे जे स्वप्नमां दीठुं
ते बधुं मेंय दीठुं' तुं मोटे परोड स्वप्नमां."
"त्यारे तो कहो. कहे छे के प्रातःस्वप्नां खरां पडे;
आवशो साथ ने त्यारे ?" किन्तु निःश्वास दै कहे :
"मनेये ए ज चिन्ता छे. तमारी साथ आवुं तो
धन्य भाग्य थई जाऊं. किन्तु शुं तमने कहुं ?
तमे भोळा, अमो स्त्रीनां भाग्य ना समजो तमे.
महिषी वसुकी गै छे, वियाशे चार मासमां.
मारे कौतुक छे मोटुं, पाडो के पाडी आवशे ?
तमे भाग्यविधाता छो, चाहो तेम करी शको,
अमे संसारगूंथायां, धार्युं न शकीए करी."
"काले जवाब छे देवो, शी उतावळ छे हजी,
विचारीने पछी कहेजो." कही भक्त विरामिया.
जोडाया नित्य कर्ममां

(२)

भक्त तुकाराम ब्राह्ममुहूर्त में उठकर, धीमे स्वर से स्वयं स्फुरित अभंग गुनगुना रहे हैं। सती ने जाकर कहा—"स्नान की बेला हो गई।"
"—अरे जग गई! दही खिलौने का शब्द नहीं सुन पड़ा तो मैंने सोचा कि अभी तुम नहीं उठी होंगी।"
"दही मही तो अब बंद हो गया है, क्यों कुछ कहना था?" "आज स्वप्न में वीणापाणि नारद मिले और बोले—'देवताओं ने भजन सुनने के लिए मुझे निमंत्रण दिया है।' और फिर यह भी कहा, 'सती को भी अपने साथ जाने के लिए कह देना, तैयारी रक्खे।'
"तो बोलो" हाथ बढ़ाकर सती के कंधे पर रखते हुए भक्त ने पूछा, "तुम साथ चलोगी न?" सती बोली "नहीं."
घुटने पर सिर रखकर नीचे ही देखती रही। "क्या कुछ चिंता में पड़ गईं?" "नहीं, नहीं, ऐसा कुछ नहीं है, मुझे इतना ही कहना था कि तुमने जो स्वप्न में देखा, बड़े सवेरे, स्वप्न में मैंने भी आज वह सब देखा है।" "तो कहो! कहते हैं कि सवेरे के सपने सच निकलते हैं। आओगी न साथ?" किन्तु सती ने लंबी साँस ली और वह बोली, "मुझे भी यही चिंता है। तुम्हारे साथ चलूँ तो धन्य हो जाय मेरा भाग्य। किन्तु तुमसे क्या कहूँ? तुम तो हो भोले। हम स्त्रियों का भाग्य तुम नहीं समझते। अपनी भैंस अब पुंटा गई है। चारेक महीने में जनेगी। मुझे बड़ा कुतूहल है देखने का क्या जनती है, पाड़ा कि पाड़ी? तुम तो भाग्यविधाता हो। चाहो सो कर सकते हो! पर हम तो संसार में हैं, जो सोचते हैं हमेशा कर नहीं पाते।"
"कल जवाब देना है, अभी कोई उतावली नहीं है। बाद में सोचकर कहना।" कहकर भक्त अपने नित्य कर्म में लग गए।

(३)

"हजी कहो कां गमगीन देव,
आवी गया भक्त तुकाजी स्वर्गे,
गाया अभंगो, सांभळी हुं कृतार्थ.
छतांय अस्वस्थ, विमासणे कां?"
"शची कहुं शुं? क्षति एक टाळवा
अनेक में दुर्घटना घटावी :
आ किन्नरो ना समज्या अभंगनुं
संगीत सादुं ऋजु भव्य भावनुं;
ने अप्सरा तो सुणी वात भक्तनी
सती न आव्यां कुतुके महिषीना,
रोकी शकी ना स्मित के कटाक्षो.
ने भक्त तो त्रासी गया छ स्वर्गथी—
आ स्वर्ग, आ स्वर्गतणा विलासथी.
स्मरो तमे ना भक्तना ए अभंगो
गाया हता ते दिन खिन्न थै जे :—

(अभंगने ढाळे)

परात्पर परब्रह्म, एक तुंथी मारे प्रेम,
एक प्रेम ए ज धर्म, बीजी आडी केडी.
मर्त्यलोके कर्मपाश, स्वर्गे मात्र छे विलास,
बन्ने एक समा त्रास, देवा उगारीए.
रह्यो हुं मर्त्ये आथडी, स्वर्ग ए छे भुलामणी,
हावां, देवा, ले आपणी—पासे मने.
देवा, दास तारो, दासने उगारो,
भवमांथी तारो, भवातीत.

बीजुं कशुं तो मनमां लउं ना,
किन्तु जाणो शी दशा छे सतीनी?"
"कहो कहो, केवी दशा सतीनी?

(३)

"अब क्यों उदास हैं देव,? भक्त तुका जी तो आ गए यहाँ! उन्होंने स्वर्ग में अपने अभंग भी गाये। सुनकर मैं तो कृतार्थ हो गई। तब भी आप चिन्तित दीखते हैं। आपको ऐसी क्या परेशानी है?"

"क्या कहूँ शची! एक क्षति टालने के लिए मैंने कितनी दुर्घटनाओं की रचना की। ये यहाँ के किन्नर अभंगों का सादा संगीत और उनके सरल उदात्त भाव क्या समझें? और अप्सराएँ तो भक्त की यह बात सुनकर कि सती उनकी भैंस क्या जनेगी, इस कुतूहल के कारण ही यहाँ नहीं आई हैं, अपनी हँसी और कटाक्ष रोक ही न सकीं। स्वयं भक्त तो बिलकुल ऊब गए हैं स्वर्ग से और स्वर्ग के विलास से। तुम्हें याद नहीं आता क्या, भक्त के यह अभंग जो उन्होंने उस दिन खिन्न होकर गाये थे?"

परात्पर परब्रह्म एक तुमसे ही मेरा प्रेम है,
यह प्रेम ही धर्म है और तो सब आड़ी-टेढ़ी पगडंडियाँ हैं!
मर्त्य लोक में कर्म-पाश है, स्वर्ग में केवल विलास है....! दोनों जगह एक-जैसा त्रास है। हे भगवान्, मेरा उद्धार करो! मर्त्य लोक में फिरता हूँ, वहाँ कल नहीं पड़ती और स्वर्ग तो माया-जाल है! अब तो हे भगवान्! तू मुझे अपने पास ले ले। तेरा दास हूँ मैं। अपने दास का उद्धार कर। हे भवातीत, मुझे इस भव से तार!

और तो कुछ मुझे विशेष नहीं लगता। लेकिन जानती हो सती की क्या दशा है?"

"हाँ, कहो कहो, कैसी दशा है सती की?

ऊंडी मुजेच्छा तो सती निर्खवानी,
अहीं रहे ने कैंक आराम पामे,
त्यां तो शुं नुं शुं थयुं, ए ज नाव्यां !
जोवा इच्छयुं, किन्तु ना हाम चाली.
तमे कहो केवी दशा सतीनी ?"
"ए पाट पासे, जहीं भक्त बेसता,
त्यां भोंय बेसी, मूकीने शीर्ष पाटे,
तूट्या शब्दो गद्‌गद थै विलापती :

(अभंगने ढाळे)

मारा राजा, मारा राजा,
भोळा भक्त, हरिभक्त,
तारा चरणे आसक्त,
हुं एकली स्वयम् त्यक्त,
किन्तु तारी दासी नित्य,
सार करो."

"साथे रहो, निरखुं हुंय, एनुं दुःखनिमित्त हुं.
अरे रे हजी ए बेठी, हजी ए ज विलापती.
अरे ! देव, तमे जोयुं ? हा, हा, हुं समजी हवे.
सती ससत्व छे, मात्र महिषी तो हती मिष."

अगाध आ मानवभाव केरा
संवेदने शक्र अने शची ए
क्षणेक तो शान्त थई रह्यां. पछी
कहे शक्र, 'हुं तो समजी शकुं ना
के बेमांथी कोण साचुं ज मोटुं ?
संसारथी ऊर्ध्व जाता तुका वा—
संसारचक्र अनुवर्तती वा जिजाई."

रामनारायण पाठक (स्व.)

सती को देखने की मुझे बड़ी इच्छा है। यहाँ रहती तो उन्हें कुछ आराम मिलता। सोचा था क्या, और हो क्या गया!
उन्हें देखना चाहती थी किन्तु हिम्मत नहीं चली।
तुम्ही बताओ क्या दशा है सती की?"
"जहाँ भक्त बैठते थे उसी पाटी के पास जमीन पर बैठी पाट पर सिर रखकर टूटे शब्दों में गद्‌गद् कंठ से विलाप कर रही है:—

ओ मेरे राजा, ओ भोले भक्त,
तेरे चरणों में आसक्त हूँ मैं
अकेली स्वयं त्यक्त हूँ,
तुम तो चले गए किन्तु मैं तो सदा तेरी दासी हूँ,
मुझे सहारा देना।"

"ठहरो, मैं भी देखती हूँ, मैं ही तो उसके दुःख की निमित्त हूँ! अरे रे! अभी भी वे वहीं बैठी हैं! अभी भी वे वैसा ही विलाप कर रही हैं! तुमने देखा? अहा····हा····, अब समझी मैं। सती ससत्व हैं! भैंस का तो मिष ही था!"
इस अगाध गंभीर मानव भाव के संवेदन में इन्द्र और शची क्षण-भर स्तब्ध रह गए।
"मेरी तो समझ में नहीं आता कि दोनों में से कौन सचमुच बड़ा है। संसार से ऊपर जाने वाले तुकाराम अथवा संसार-चक्र का अनुवर्तन कर रही जिजाई!"

रामनारायण पाठक (स्व.)

कृपा-साधन

(१)

सुदूर सरकावियां क्रमण कर्म-चक्रोतणां,
अने भ्रमण बुद्धिनां सकल लीध संकेली में,
कर्या ज्वलत अग्नि शांत सहु यज्ञवेदीतणा,
तपोवननी वाटथी तृषित दृष्टि खेंची लीधी.

प्रभो, अहीं हती क्यहीं न लव आपनी छांयडी,
बधां सुफल-ज्ञान-सिद्धि सहु रंक ऊणां हजी,
कशुं चहत सर्जवा परम आप-संकल्प ह्यां,
हुंमां-जगतमां न भाळ कदी एनी लाधी-लीधी.

अहीं तव महालये हुं अब अंजलिबद्ध थै
खडो, न लव याचुं मारुं फल कर्मनुं यज्ञनुं,
तमारी जग-सर्जिका अखिल धायिका दृष्टि जे
चहे विरचवा, रचावुं बस-एह झंखी रहुं.

तपो सकल, ज्ञान-कर्म-बलथीय विश्वे बृहत्,
कृपाळु तव ए कृपा प्रति पळे हुं सेवुं महत्.

कृपा-साधन

(१)

इन कर्म-चक्रों का क्रमण, उसको तो मैंने कहीं दूर-सुदूर सरका दिया है।
इस बुद्धि के नानाविध भ्रमण, उनको तो सँकेलकर मैं चुप बैठ गया हूँ।
इस यज्ञ-वेदी की प्रज्वलित अग्नि को, मैंने बुझा दिया है।
और इस तपोवन का पथ, आह, वहाँ तो दृष्टि बार-बार जाती थी, पर वहाँ से उसको मैंने बलात् खींच लिया है।

क्या किया जाय हे भगवान्! इन सबमें तो कहीं आपका नामो-निशान भी मुझे न मिला।
आह, इन सबमें कर्मों के सुफल में, बुद्धि के ज्ञान में,
तप की सिद्धि में, प्रभो, अब भी एक दरिद्रता भरी हुई है।
मैं कैसा जड़बुद्धि था कि क्षण-भर भी मुझे यह जानने की
इच्छा न हुई कि इन सबके विषय में आपकी क्या राय है।
हाँ, इस जगत् के विषय में अरे स्वयंभू मेरे विषय में भी
कौन-सा संकल्प प्रवृत्त हो रहा है।

आह, मैं इस विषय में न कुछ जान सका हूँ,
न जानने की कोशिश ही कर सका हूँ।
अब तो मैं आपके महा भवन में आकर खड़ा हूँ,
आपके समक्ष अंजलि बाँध रक्खी है, लेकिन वह कुछ माँगने के लिए नहीं है।
नहीं भगवन्, मैं नहीं चाहता अपने कर्मों का फल,
नहीं चाहता अपने यत्नों का फल।
केवल एक ही चाह है, आप क्या चाहते हैं, कि आपकी
जग-सर्जिका दृष्टि क्या चाहती है, बस वही मैं होना
चाहता हूँ, वही मैं बनना चाहता हूँ।

प्रभो, इन तपों को, इन कर्मों को, इस ज्ञान को लेकर मैं क्या करूँ?
इन सबसे भी एक महान् वस्तु जगत् में है—तेरी कृपा।
कृपालु, केवल उसकी ही आराधना मैं करूँगा, पल-पल, प्रतिपल।

(२)

पळे प्रति पळे अहो नयन त्यांहि ऊंचे वळे.
त्यहीं वदन ताहरे नयन ताहरे, ताहरी
जगत् भरती विश्वकाय प्रति, गूढ चैत्य प्रति :
अहो अरथ माहरे तव कशी चिति संस्फुरे.

अने प्रखर स्थैर्यमां स्फुरण भव्य को विस्तरे,
मने डुबवतुं मने भिंजवतुं अजाण्या रसे :
रहे न कई शेष आ मननी एकथे ल्हेरखी,
स्फुरे न लव प्राणपर्ण, जड देहये ओगळे.

पिता, जगतनी समस्त गतिथी तुं ऊंचे ग्रही,
समस्त तव रूपनी प्रखर एक मुद्रा महा
धरे मुज परे, कहे, तुं मुज रूपनां आ बृहत्
वलो-धृतिनी दिव्य झांय वहनार था ज्योतिका.

न याचुं कंई, तारुं दान बस दे तुं स्वैर क्रमे,
अहो जलधि पूर्ण! एम अम संग तुं संगमे.

'सुन्दरम्' (त्रिभुवनदास लुहार)

(२)

पल-पल, प्रतिपल,
आँखें ऊपर उठती हैं तेरे मुख की ओर, तेरी आँखों की ओर,
तेरे विश्व रूप की ओर, तेरी निगूढ़ चेतना की ओर।
अहो, मैं देख रहा हूँ—तेरी चिति कैसी संस्फुरित हो रही है,
मेरे लिए मेरे जैसों के लिए।
और मैं देखता हूँ, तेरी प्रखर स्थिर अवस्था एक भव्य
स्फुरण का रूप लेती है।

आह, मुझे डुबा रहा है, सराबोर कर रहा है,
किसी अनजाने रस से यह तेरा स्फुरण।
यह क्या हो गया। आह, मन की एक लहर भी अब नहीं बची।
प्राण की एक पत्ती भी नहीं हिलती, यह जड़ देह भी पिघल रही है।

परम पिता, अब क्या कहूँ तू मुझे ऊँचा उठा ले जा रहा है
ऊँचे-ऊँचे, इस समस्त सृष्टि की गति से भी ऊपर, कहीं···कहीं
और वहाँ, एक अद्‌भुत घटना घटने लगी
मेरे ऊपर तूने अपने समस्त रूप की मुद्रा धर दी।
और तेरी अमृत गिरा बहने लगी,
"तुझे बनना होगा एक अपूर्व ज्योति—
जो मेरी इस ज्योति को धारण करेगी
जो मेरे स्वरूप की इस बृहत् शक्ति की दिव्य आभा में बह जायगी।"

नहीं, अब मेरे माँगने का क्या?
तू ही स्वयं दे रहा है, स्वयं अपने ही ढंग से,
यही तो तेरा ढंग है हमारे साथ मिलने का,
हम सरिताओं के साथ तेरे संगम का,
हे पूर्ण पयोनिधि!

सुन्दरम् (त्रिभुवनदास लुहार)

पांजे वतन ज़ी गाल्यूं

पांजे वतन जी वाल्यूं
अनेरी पांजे वतन जी गाल्युं !
दुंदाळा दादाजी जेवा ए डुंगरा,
उज्जड छो देखाये भूंडा ने भूखरा :
बाळपणुं खूंदी त्यां गाळ्युं....
अनेरी०

पादरनी देरी पे झूकेला झुंडमां,
भर्यें तळाव, पेला कूवा ने कुंडमां,
छोटपणुं छंदमां उछाळ्युं........
अनेरी०

पेली निशाळ जेमां खाधी'ती सोटियुं,
पेली शेरी ज्यां हारी खाटी लखोटियुं :
केमे भूलाय कानझाल्युं ?........
अनेरी०

बुढ्ढां मीठी मा, एनी मीठेरी बोरडी,
चोकी खडी-एनी थडमांहे ओरडी,
दीधां शां खावां ? असे झंझेडी बोरडी :
बोर भेळी खाधी'ती गाळ्युं........
अनेरी०

बावा बजरंगीनी घंटा गजावती,
गोमी गोराणीनी जीभने चगावती,
गोवा नावीनी छटाने छकावती,
रंगीली, रंजीली गाळ्युं....
अनेरी०

अपने वतन की बातें

अपने वतन की बातें,
सुहानी अपने वतन की बातें।
लंबोदर दादाजी-से वे गिरिगण
भले ही दिखें उजाड़, कुरूप, खुरदरे,
बचपन उन्हें रौंदकर बीता····
सुहानी०

खोरी मंदिर पै झुके हुए झुंड में
भरे हुए तालाब और कुएँ और कुण्ड में,
छुटपन रहा छंद में उछलता····
सुहानी०

वो रहा मदरसा जिसमें खाई थीं बेंतें,
वो है मोहल्ला जहाँ गोलियाँ थे खेलते।
क्योंकर कान पकड़ना भुला जाता····
सुहानी०

बुढ़िया मीठी माँ, उसका मीठे बेर का पेड़,
चौकी सदा करती जिसकी झोंपड़ी तने के पास,
किसी ने दिया हुआ कौन खाय? हमने ही झकझोरा वैर,
वैर के ही साथ खाईं गालियाँ····
सुहानी०

बाबा बजरंगी का घंटा बजाती,
गोमी गोरानी को बातों में बहकाती,
गोवा नाई की छटा को छकाती,
रँगीली रंज देने वाली बातें····
सुहानी०

वालभर्या वेलांमा, चंची ए चीकणी,
तंतीली अंबा, ने गंगु ए वीकणी,
श्यामु काकानी ए धमकीली छींकणी
जेवुं बधुंय गयुं हाल्यूं........

अनेरी०

छोटी निशाळेथी मोटीमां चाल्या,
प''''ट प''''ट अंगरेजी बोल बेक झाल्या,
भाई भाई, कहेवातां अकडाता हाल्या :
मोटपणुं म्होरंतुं म्हाल्युं........

अनेरी०

सुन्दरजी बेटाई

प्यार भरी वेलां मा थी, पर चंची की चें चें थी
बालूनी अम्बा, और गँगू थी डरी-डरी
श्यामू काका की वह क्या ही तेज सूँघनी
वैसा तो बहुत-कुछ बीता !···

सुहानी०

छोटे-से मदरसे से बड़े में चला गया,
पट-पट अंग्रेजी के दो बोल पकड़ लिये,
भाई-भाई कहलाते जो अकड़े अब चले-चले
बड़प्पन अब तो बौराये चला !····

सुहानी०

सुन्दरजी बेटाई

कोईने कंई पूछवुं छे ?

मंद वेगे चालतो
(तेथी ज तो चाबूकना फटकारथी)
दोराईने बप्पोरमां
उत्तर थकी दक्षिण जता रस्ता उपर
नंबर लगावेलो जतो पाडो;
अने त्यां काटखूणे, छेक आडा
पूर्वथी पश्चिम जता आसफाल्टना रस्ता उपर
चिक्कार बस (मां माणसो माटे हवे जग्या नथी!)
चाली जती पूर जोशमां धुंधवाईने!—

ने क्रोस पर जे थाय छे ते थई गयुं.

लोहीना खाबोचियामां मांसना लचका
अने बे शिंगना टुकड़ा—
(बधुं भेगुं करीने सांधवा मथती नजर) ने
फाटी आंखे शून्यमां जोतो, हवे डचकां भरे!
(यमराज पण छेवट, पछी आव्या खरेखर!)

खाल मुडदानी (अहींथी लई जई आधे)
ऊतरडे ना ऊतरडे त्यां सुधीमां
आ गरम आबोहवामां लोही तो जल्दी सुकायुं!

बस (फरी चिक्कार; च्हेरा छे नवा!)
पाछी वळी पश्चिमथी पूरवेगमां.....

एक आ डाघो रह्यो
एना विषे, कहो
कोईने कंई पूछवुं छे?

हसमुख पाठक

किसी को कुछ पूछना है ?

वह मंद गति से
(इसीलिए तो चाबुक की फटकार से ही)
चल रहा है।
उत्तर से दक्षिण की ओर, जाते हुए रास्ते पर
नंबर वाला भैंसा जा रहा है।
और वहाँ नुक्कड़ पर, दूर तक
पूर्व से पश्चिम की ओर जाते हुए आस्फाल्ट के रास्ते पर
खचाखच भरी हुई बस (जिसमें अन्य लोगों के लिए
जगह नहीं है।)
क्रोधित-सी सरपट दौड़ी चली जाती है।

और····क्रोस पर जो होता है, वही हुआ।

खून का गड्ढा, उसमें मांस के लोथड़े
और सींगों के टुकड़े.
नज़र सबको इकट्ठा कर जोड़ने की कोशिश करती है,
और वह भैंसा फटी हुई आँखों से शून्य की ओर
नज़र फेरे दम तोड़ रहा है।
(यमराज भी अन्त में, बाद में, सचमुच आ पहुँचे)

मुर्दे की खाल (यहाँ से दूर ले जाकर)
उतारे न उतारे
तब तक इस गर्म आबहवा में खून तो जल्दी ही सूख गया.

बस (फिर खचाखच, नई सूरतों के साथ)
वापस लौटी पश्चिम से, तेजी से····

और····और····यहाँ अब एक धब्बा रह गया
उसके बारे में बोलो:
किसी को कुछ पूछना है ?

हसमुख पाठक

त मि ल

चयन : रा. पि. सेतु पिल्लई

अनुवाद : पूर्ण सोमसुन्दरम्

पाडुम् कुयिल

कुयिलैप् पिडित्तेन्, कूट्टिलडैत्तेन्
कूव माट्टे नेन्ड्रदु कुयिल्
कूव माट्टे नेन्ड्रदु ।
कूट्टेत् तिरन्दु काट्टिल् विट्टेन्
कूवुदे कुयिल् इनिक्कप्
पाडुदे कुयिल् ।

कूंडुक्कुल्ले नीइरुन्दाल
कूवमाट्टायो? कुयिले
कुषन्दैयैप्पोल् उनै वलर्त्ताल्
पाडमाट्टायो?

कुयिलिन बदिल्

नान् पिरन्द कदैयैच् चोन्नाल्
नाट्टुक्केल्लाम कण् कलंगुम्
तेन् कलन्द गीदमेन्ड्रे
तेरियामल् पेशुहिन्ड्रीर

तामरैक्कुलत्तुक्कुयिल्
तानेनक्कुत् तायाराम्
पूमरत्तैक् कंडुविट्टाल्
पुत्तिहेट्टुत् तिरिवाराम्

कामनुक्कुक् कैयालाय्
कालमेल्लाम् इरुन्दाराम्
कोम्बिल्ले कोलुन्दुकंडाल्
कोदिकोदिप् पाडुवराम्

कूकने वाली कोयल

मैंने कोयल को पकड़कर पिंजड़े में बन्द किया,
तो उसने कूकना छोड़ दिया, कोयल ने
बोलना छोड़ दिया।
पिंजड़ा खोलकर उसे जंगल में छोड़ा, तो
कूकने लगी कोयल, मीठी तान
छेड़ने लगी कोयल।

पिंजड़े के अन्दर बन्द रही, तो
नहीं बोलेगी, क्या? हाँ री, कोयल,
बच्चे की भाँति तुझे पालूँ, तो
नहीं कूकेगी, क्या?

कोयल का उत्तर

मेरी कहानी जो भी सुनेगा,
उसकी आँखें भर आयेंगी।
समझते नहीं हो तुम, तभी तो (मेरे गीत को)
मधुमय तान कहा करते हो।

लोग कहते हैं कमल तालाब वाली कोयल
मुझे जनमने वाली माँ थी।
आम के पेड़ वाले कोकिल थे उसे
वरने वाले पतिदेव।

फूल से लदा पेड़ देखते ही
दोनों उन्मत्त हुए फिरते।
कामदेव के अनुचर थे वह
सदा सर्वदा, जीवन-भर।

कुलत्तिले तामरै मेले
        कुन्दिक् कुन्दिक् कूवुवराम्
आत्तिले वेलुम् वरप्
        पात्तुकिट्टे पाडुवराम्

कोन्नैमरम् पूत्तुप्पिट्टा
        कुयिलिरंडुम् अंगेतान्
पिन्नै मरम् अरुम्बुविट्टा
        पेशुवराम् पंजमत्तिल्

तेन्नमरक् कून्दलिन्मेल्
        सेन्दुऊंज लाडुवराम्
तेन्पोले पाडुवराम्
        तेवरेल्लाम् केट्पाराम्

आडुरदुम् पाडुरदुम्
        अन्दिप्पट्टाल् कूडुरदुम्
पाडुरवर् कूट्टत्तुक्के
        परम्बरैयाय् वन्दगुणम्

तेडुरदुम् शेक्कुरदुम्
        तेरियाद पिराविहलाय्
कूडुहट्टत् तोणामल्
        कुलवि महिपुन्दिरुक्कायिले

कादलिन्बक्कोडि पषुत्तु
        करुतरित्ताल् एन्तायार्
कूदलुक्कु नडुंगिनलाम्
        कूडिप्पेशत् तयंगिनलाम्

कादलनुम् वेरुपक्कम्
        कडैक्कण्णाल् पार्त्तानाम्
मादावुम् एन्नैयप्पो
        वैदालाम् मनम्वेरुत्तु

डाली पर कोंपल देख लें, तो
चोंच लगाते, गाते थे।
तालाब में खिले कमलों पर
फुदक-फुदक कर कूकते थे।

प्रेम-व्योम में उड़ते थे वे,
मोद-वारि में तैरते थे।
नदी में बाढ़ आई देखकर
तानें छेड़ा करते थे।

अमलतास के फूल खिलें, तो
कोकिल-द्वय जा बसे वहीं।
पुन्नाग की कलियाँ निकलीं, तो
पंचम स्वर में वे कूकने लगे।

नारियल के पत्तों पर बैठकर
दोनों झूला झूलते थे।
मधुमय तान सुनाते थे वे,
जिसे देवता सुनते थे।

दिन-भर गाना और नाचना,
साँझ हुई तो प्रणय-मिलन
गाने वाले लोगों की तो
परम्परागत वृत्ति है यह।

अर्जन करना और जोड़ना,
बिलकुल नहीं जानते थे वे।
नीड़ बनाने की उनको सूझी ही नहीं,
वे तो रति-केलियों में मस्त रहे। इतने में

प्रणय-सुख के पौधे में फल लगा
मेरी माँ के गर्भ रहा।
पछवा हवा में ठिठुरती–काँपती,
मिल-जुलकर बातें करते झिझकती !

कडनुक्कु मुट्टैयिट्टुक्
कालाले तूक्किवन्दु
काकायिन् कूट्टिल्विट्टुक्
कादलन्पिन् ओडिविट्टाल्

मुट्टैयिट्टु कालैमाट्टु
मुदुहुमेले कुन्दिकिट्टु
पट्टणमेल्लाम् कडन्दु
परन्दुविट्टाल् एन् तायार!

तायेन्डू एण्णत्तिले
तरैयिलेन्नै पोडलैयो?
नायहन् मोहत्तिले
नान्पोरिशाय् तोणलैयो?

काकैक् कूट्टिल् वासम्

उडैमरत्तुक् कुडैक्कुळे
उच्चाणिक् किळैमेले
अडहाक्कुम् पेण्काक्कै
आण्काकै इरैतेडुम्

किडैहाक्कुम् पट्टियैप्पोल्
कैरुडन्वन्दाल् करैयुम् अदु
पडैहाक्कुम् वीरनैप्पोल्
पांजुवरुम् आण्काकै

प्रेमी भी अब कनखियों से
औरों की ओर लगा झाँकने !
तब मेरी माँ खिन्न हृदय से
कोसने लगी मुझे।

अंडा देने की प्रथा पूरी कर,
पैरों से उसे उठा ले गई और
कौए के नीड़ में छोड़कर
भाग गई वह प्रियतम के पीछे।

अंडा देने के बाद किसी बैल की
पीठ पर जा बैठी निश्चिन्त हो,
और शहर सब पार करके
उड़ गई न जाने कहाँ?

माँ की ममता टुक थी उसमें
तभी तो मुझे ज़मीन पर नहीं पटका।
फिर भी प्रिय के मोह के आगे
मैं शायद नगण्य हो गई?

कौए के नीड़ में

बबूल की छतरी के भीतर,
सबसे ऊपर की डाली पर,
कौवी बैठी अंडे सेती,
कौआ चारा खोजने जाता।

भेड़ों के झुंड के रखवाले कुत्ते की तरह,
चीख़ उठती कौवी, कोई चील आये, तो,
तत्काल झपटकर आता कौआ,
सेना के वीर की भाँति।

करुमुत्ति उरुवाच्चु
    करुत्तुमुत्ति मनसाच्चु
पोरुमैशट्टु मिलामल्
    बूमियिले वरलाच्चु

तरुमत्तुक्कु अडैहात्त
    तायक्काक्क अरुलाले
सिरमत्तुक्कु आलाह
    सिरुहुंजाय पिरन्देन्नान् ।

कुंजुपोरिच्चेन् एन्डु
    कूरिनदु पेण्काक्के
कूडुक्कुले मूकै विट्टुक्
    कोदिनदु आण् काक्के ।

अंजुहुंजु काक्कैक्कुंजु
    आरुनान् एन्डूरियामल्
अत्तनैयुम् तन्कुंजाय्
    आशैयुडन् वलर्कीयिले

ऐन्नुडैय तलैयेषुत्तो
    अन्नैशेयूद पादहमो
पिन्नोरुनाल् वायूतिरन्दु
    पेशिप्पिट्टु माट्टिकिट्टेन्

तन्नुडैय पिळ्ळैयेन्डु
    ताने वलर्त्तुविन्दु
अन्नमिट्ट सेविलित्ताय्
    अडिक्क वरलाच्चुदैया

जीवाणु बढ़ा और रूप बना,
विचार बढ़ा और चित्त बना।
अब अंदर रहा नहीं गया,
पृथ्वी पर आने का समय आ गया।

सेंत-मेंत में सेने वाली
माता कौवी के प्रसाद से,
बच्चे के रूप में प्रकट हुई मैं,
हाय, यातना सहने को।

"बच्चे निकले, देखो तो,"
बोली कौवी, प्यार भरी,
चोंच लगाकर धीरे से
सहलाया कौवे ने हमको।

पाँच ही थे कौए के बच्चे,
छठी थी मैं, पर उन्हें पता न था।
सबको अपने बच्चे मानकर
प्यार से पाला दोनों ने।

जाने मेरी क़िस्मत थी,
या फिर माँ का पाप था,
एक दिन मैं चोंच खोलकर
बोल पड़ी, बस, फँस गई।

अपना बच्चा समझ मुझे,
अपने हाथों पाल-पोस कर,
खिलाने-पिलाने वाली दाई
मारने दौड़ी मुझे तभी।

इरैतेडिप् पोनवईल्
इरुट्टु मट्टुम् तिरुम्बविलै
करैयुदैया कुंजु एल्लाम्
कदरिविट्टेन् नानुमप्पो

पाविनानेन् कूविनेनो
पाट्टाहक् केट्टदुवो ?
केट्टुकिट्टे वन्दकाकै
कीषेएन्नैत् तळ्ळिविट्टु

कोत्तिकोत्ति विरट्टुदैया
कुंजु ऐन्ड्रुम् पारामल्
शुत्तिशुत्तित् तुरत्तदैया
सोन्दमिल्लै ऐन्ड्रुदुमे

ओडओड वेरट्टुदैया
ऊरिल् उळ्ळ काक्कैयेल्लाम्
पाडनानुम् वायूतिरन्दाल
पांजुपांजु कोत्तुमैया

कुंजुकेल्लाम् ऐन्कुरलै
कोडुत्तुडुवेन् ऐन्ड्रुबयम्
पंजमस्वरत्तिल् काकै
पाडिप्पिडुम् ऐन्ड्रुबयम्

वंजहमायक् कूट्टुक्कुळ्ळे
वन्दुविट्ट कळ्वनिवन्
मुट्टैयिले तिरुडन्एन्ड्रे
मूकाले कोत्तिडुवार

(बात यह थी कि एक दिन)

चारे के लिए गये थे दोनों,
रात होने तक नहीं लौटे।
तब सब बच्चे चीख़ उठे, तो
मैं भी जोर से रो पड़ी!

हाय विधाता! क्यों रोई मैं?
शायद वह सुरीली तान लगी।
सुनती-सुनती आई कौवी,
मुझे नीड़ से गिरा दिया और

चोंच मार-मारकर भगाने लगी,
बच्चा मानकर तनिक दया न की।
जब देखा अपना नहीं, तो
भगाने लगी वह मुझे फिर-फिरकर।

गाँव के सारे कौए मिलकर
लपके मुझ निःसहाय गरीब पर!
कुछ कहने को मुँह खोलूँ तो
झपट-झपटकर मारें चोंच!

भय था उन्हें कि सब बच्चों को
अपना स्वर न कहीं दे डालूँ!
भय था उन्हें कि पंचम स्वर में
कौए भी न कूकने लग जायें।

"छल रचकर नीड़ के अंदर
घुसने वाला चोर है यह,
अंडे से ही चोर," कह मुझे
चोंचों से मारते सब।

पेत्तेडुत्त तायारो
पिरियमिन्ड्रिक् कैविट्टाल्
वलर्त्तेडुत्त तायारो
वैतडित्तु विरट्टिविट्टाल्

कुत्तमोन्डुम् सेय्दरियेन्
कुयिलाय् पिरन्दतन्ड्रि
उत्तमरे नादियिन्ड्रि
उलहमेल्लाम् अलैयुहिन्ड्रेन्

एन्दऊरु एन्ददेशम्
एंगेएन्ड्रु तेडुवेन्नान्
मैन्दनेन्नैत् तविक्कविट्ट
मादावैक्काण्बेनो ?

शिन्दैनोन्दु कदरुहिन्ड्रेन्
शेविक्किनिय गीतम् एन्ड्रीर
"विन्दैयिलुम् विन्दै" येन्ड्रे
विरैन्दु परन्द दुवे।

—कोत्तमंगलम् सुब्बु

जनमने वाली माँ ने मुझे
निर्ममता से त्याग दिया।
पालने वाली धात्री ने तो
मार-कोसकर भगा दिया।

कसूर तो मैंने कुछ भी नहीं किया,
सिवाय इसके कि कोयल पैदा हुई।
सुनो नरोत्तम! अनाथ होकर
भटक रही हूँ जग-भर में।

किस गाँव में, किस देश में,
कहाँ कहाँ ढूँढूँगी मैं?
सुता को यों तरसाने वाली
माँ से कभी मिलूँगी मैं?

इसी व्यथा से पुकारती हूँ,
तुम कहते हो, सुमधुर तान।
विलक्षण है यह, इतना कहकर
उड़ गई कोयल, तेज़ी से।

कोत्तमंगलम सुब्बु

---

१ मूल कविता में 'सुत' शब्द प्रयुक्त हुआ है, क्योंकि तमिल-काव्य-परंपरा के अनुसार नर कोकिल ही कूकता है। अनुवाद में हिन्दी-काव्य-परंपरा की दृष्टि से यह परिवर्तन उचित समझा गया।

बूमिदान यज्ञम्

बूमिदानम् शेय्वदे
पुण्णियत्तिल् पुण्णियम् ।
पुनिदमान मुरैयिल् नाट्टिन्
वरुमै पोहप् पण्णिडुम् ।
सामि शाट्चि याह एंगुम्
शंडैहल् कुरैन्दिडुम् ।
सरिनिहर समान वाप्वु
सत्तियम् निरैन्दिडुम् ।

एषैयेन्डुम् शेल्वनेन्डुम्
एट्रताप्वु पोय्विडुम्
एंगुम् यारुम् पहैमै यिन्ड्रिप्
पंगु कोल्व दाय्विडुम् ।
कोपैयिन् पोरामै तूंडुम्
कुट्रम् यावुम् नींगिडुम् ,
कोडुमैयान पंजम् विट्टुक्
कुण नलंगल् ओंगिडुम् ।

उडलुषैत्तु उणवु मुट्रुम्
उंडु पण्णुम् उषवर्हल्
उरिमै शोल्ल निलमिलामल्
उल्लम् वेन्दु अषुवदा ?
उडल् सुहित्तु उलहितुक्कु
उदवियट्र ओरुशिलर्
उरिलुल्ल बूमिमुट्रुम्
उरिमै कोण्डु तिरिवदा ?

भूदान यज्ञ

भूदान करना ही
पुण्यों में श्रेष्ठ पुण्य है,
पवित्र रीति से वह देश की
ग़रीबी को मिटा देगा!
ईश्वर को साक्षी करके कहता हूँ,
उससे सब जगह झगड़े कम हो जायँगे।
सम्पूर्ण समत्वमय जीवन स्थापित होगा,
सर्वत्र सत्य व्याप्त होगा।

कोई ग़रीब है, कोई अमीर,
यह ऊँच-नीच का भेद मिट जायेगा।
बिना शत्रुता के समस्त (सम्पत्ति) पर
सबका समान स्वत्व हो जायगा।
ईर्ष्या से प्रेरित कायरों के
कुकृत्य सब मिट जायेंगे।
दारुण दुष्काल नहीं रहेगा,
सद्‌गुणों का उत्थान होगा।

शरीर को तपाकर अन्न
उपजाने वाले कृषक जन,
'अपनी' कहने योग्य भूमि के अभाव में
मन मसोसकर रह जायें, क्या यह उचित है?
शारीरिक सुख-भोग में लीन, जग के
कोई काम न आने वाले, कुछ-एक व्यक्ति,
गाँव-भर की भूमि पर अपना
स्वत्व जताते फिरें, क्या यह उचित है?

उलहिलुल्ल निलमनैत्तुम्
उलहनादन् उडैमैये,
ऊरिलुल्ल विलै निलंगल्
ऊरप् पोदुवाम् कडमैये।
कलहमिन्ड्रिच् चट्ट तिट्टक्
कट्टुप्पाडुम् इन्ड्रिये,
कवलैयट्र् समरसात्तिन्
काट्चि काण नान्ड्रिदे।

गांदि दर्म नेरियैक् काक्क्
कडवु लिट्ट कट्टलै,
करुणैयोडु बूमि दानम्
शेय्यक् कोरुम् तिट्टमे।
आयन्दु पार्क्किन् उलहिलेंगुम्
अमैदियट्र् कारणम्,
अवरवर्क्कुं निलमिलाद
आत्तिरत्तिन् पोरिल्दान्।

दानदर्म आसैये नम्
तमिषहत्तिन् कल्वियाम्,
तन्दुवक्कुम् इन्बमे नम्
तलैशिरन्द शेल्वमाम्।
दीनरुक्कुप् पूमिकोंजम्
दानमाहत् तरुवदाल्
देशमेंगुम् अमैदिपेट्रुत्
तिरुविलासम् पेरुहुमे।

कुम्बिवेहुम् पशिमिहुन्द
कोपतापम् मन्नवे
कोडुमैशेर पुरट्चि वन्दु
कोलै पोहुमन्नमे

जग-भर की समस्त भूमि
जगन्नियन्ता की ही देन है।
गाँव के सब खेतों पर
गाँव-भर का स्वत्व हो, यही धर्म है।
विप्लव के बिना, विधि-विधान के
किसी बन्धन के बिना,
आशंकाहीन साम्यवाद की स्थापना का
यह दृश्य, अहा! क्या ही सुन्दर है।

गांधी-धर्म-मार्ग की रक्षार्थ
ईश्वर की दी हुई आज्ञा यही है कि
दयापूर्वक भूमि-दान की
योजना पूरी की जाय।
विचार कर देखा जाय तो संसार-भर में
शांति नष्ट होने का कारण
भूमिहीन लोगों की अभाव-प्रेरित
उत्तेजना ही है।

दान-पुण्य की चाह ही हमारे
तमिष्-प्रदेश की शिक्षा रही है।
दान करने से प्राप्त सुख एवं हर्ष ही
हमारी सर्वश्रेष्ठ सम्पत्ति है।
दीनों को थोड़ी-सी भूमि
दान में देने से
देश-भर में शान्ति होगी,
श्री का सर्वत्र विकास होगा।

भूख से होने वाली दारुण पीड़ा
व्यापक क्रोध और क्षोभ बन जाये और उससे
हिंसक क्रान्ति भड़क उठे और
सब-कुछ लुट जाय, इससे पूर्व ही

अन्निनोड्डु बूमिदानम्
आनमट्टम् शेयूवदे
अच्चमिन्ड्रि नाडिलेंगुम्
अमैदि पेट्रु उय्वदाम् ।

विलैवु मुट्टुम् सोन्दमाहुम्
विलै निलंगल् तन्दिडिल्
वेलैयट्र् कोडि मक्कल्
विलैच्चल् शेय्य मुन्दुवार,
कलै विशुन्दु तरिशु पट्ट
कोडि कोडि काणिहल्
कलि शिरक्कच् चेपुमै पेट्रुक्
कदिर्हल् सुट्टुम् काणलाम् ।

गांदि शोन्न रामराज्यम्
काणवल्ल तलैवनाम्
कर्म, बाक्ति, जानयोहम्
करुदुम् पुत्ति निलैयनाम्
शान्द सत्तियाग्रहत्तिन्
शाट्चियाम् विनोबावार्
शाट्टुहिन्ड्र बूमिदानम्
शट्टप् पंजम् माट्टुमे ।

विरद माहक् कान्दि यण्णल्
विट्टुप् पोन वेलैयै
विट्टिडामल् कट्टिक् काकुम्
वीरु कोंड शीलनाल्
बरद नाट्टिन् दर्म शक्ति
पारिलेंगुम् शूषवे
पहैयिलामल् युद्दमेन्ड्र
पयमिलामल् वापलाम् ।

प्रेमपूर्वक यथाशक्ति
भूमिदान करना ही
निर्भय होकर देश-भर में
शान्ति एवं सुख स्थापित करने का उपाय है।

"खेत तुम्हारे, उपज तुम्हारी,"
यह कहकर भूमि दान में दी जाय, तो
करोड़ों बेकार लोग
खेती करने को आगे बढ़ेंगे।
कोटि-कोटि बीघों की
बंजर, पड़ती भूमि,
उर्वर बनकर लहलहायेगी,
भरपूर अन्न उपजेगा उसमें।

गांधी-प्रतिपादित राम-राज्य
प्रस्थापित करने में समर्थ नेता,
कर्म, भक्ति एवं ज्ञान-योग में
लीन विवेक-आगार तथा
शान्ति पूर्ण सत्याग्रह (की सफलता)
के साक्षी विनोबा द्वारा
प्रवर्त्तित भूदान आंदोलन,
अन्न का अकाल अवश्य मिटा देगा।

महा मानव गांधी जो काम
अधूरा छोड़ गया, उसे पूरा करने का व्रत ले,
सतत यत्न करने वाले इस
साहसी यती के तप से
भारत देश की धार्मिक शक्ति
समस्त संसार में व्याप्त होगी।
(पारस्परिक) शत्रुता के बिना, युद्ध के
भय के बिना सब सुखी रह सकेंगे।

देश्व जोदि गांदि यण्णल्
तेन्दॆंडुत्त शीडनाम्
तिरुविनोब बावे नमदु
देश नन्मै नाडिनार् ।
वैयमेंगुम् पेरुमै पेट्र
वण्मै मिक्क तमिष़हम्
वन्दु बूमि दानम् वांग
वरवु शोल्लि वाष़्त्तुवोम् ।

करुणै वाष़्विन् अरुणनान
कान्दिशीडन् वरुहिरार,
काल्नडन्दु ऊर्हल् तोरुम्
कैहुविक्कप् पेरुहिरार् ।
तरुणमीदु तमिष़हत्तिन्
तनिमैयाहुम् वण्मैयैत्
तांगिप् पूमि दान मीन्दु
दर्म वेल्वि पण्णुवोम् ।

वाष़्ह वाष़्ह गांदि नामम्
ऐन्डुम् निन्डु वाष़्हवे !
वन्दुदित्त नम् विनोब
वाय्मैयालन् वाष़्हवे ।
वाष़्ह बूमि दानम् शेय्युम्
वण्मै पोट्रुम् यावरुम्
वाष़्हशान्द सत्तियत्तिल्
वन्द नम् सुदन्दिरम् ।

नामक्कल् रामलिंगम् पिल्लै

दैवी ज्योति महात्मा गांधी के
चुने हुए शिष्य,
देश-हित में निरत
संत विनोबा भावे,
दानवीरता के लिए संसार-भर में
प्रख्यात हमारे तमिष्-प्रदेश में
भूमि का दान माँगने आ रहे हैं,
उनका जय-जयकार से स्वागत करें।

दयामय जीवन के अरुणोदय-सम
गांधी के शिष्य आ रहे हैं।
गाँव-गाँव की पद-यात्रा कर
सर्वत्र पूजे जा रहे हैं।
सुअवसर है, तमिष्-प्रदेश की
विशिष्ट दानवीरता का
परिचय दें हम, भूदान द्वारा
धर्म यज्ञ में आहुति दें।

अमर रहे गान्धी का नाम,
सदा स्थिर रहे, अजर रहे !
सत्य-सूर्य सम उदित हमारा
विनोबा सदा अमर रहे !
भूदान का धर्म निभाने वाले
सभी दानी अमर रहें !
शान्ति और सत्य द्वारा प्राप्त
हमारी स्वतंत्रता अमर रहे !

नामक्कल् रामलिंगम् पिळ्ळै

मंगल मनैत्तिरु मडन्दैयर् शिराहॅल्
तुंगमिहु मेरुपवर् तोंडरूपल कोडि
शंगोडु तमिप्क्कविदै शारोडहिल् शान्दम्
एंगणु मिरैत्तुवपि मोयूत्तनर् इरौंजि !

पूम्बुनल् कुडैन्दुविलै याडिमहिष् कूडि
तीम्बुनल् तिलैत्तुपल शेय्गल् पयि रेट्रि
अम्बुविपि यार्कुरवै आडवर्हॅलोडु
नम्बिविलै याट्टयर नाडु तमिपारे !

तिरुलोक सीताराम्

मंगलमय घरों की श्रीसम वनिताएँ एवं बालक-बालिकाएँ
सुगठित शरीर के कृषक-जन और करोड़ों भक्त,
मार्गभर में एकत्र होकर शंख,अगरु,चन्दन, इक्षुरस और तमिष़ कविता-सुमन
उसे अर्पित कर उसकी आराधना करते हैं।

कुसुम-शर-सम नैनों वाली तरुणिया, युवकों के संग,
फूलों से लदी तुम्हारी धारा में निश्चिन्त होकर तैरतीं,
मोदमयी जल-क्रीड़ा में थिरकतीं, खेतों की श्रीवृद्धि करतीं और गोष्ठी-
नृत्य में झूमतीं।
हे तमिष़ों की नदी! यह सब तुम्हारा ही पुण्य प्रसाद है।

तिरुलोक सीताराम्

वसन्दम्

कुलिरिलम् कादु ओडिक्

कवि मनम् कव्वुदम्मा ।

तलिरेलाम् तोन्ड़ि एंगुम्

तण् पोषिल् काट्टु दम्मा ।

कुयिलिनम् शोलै तन्निल्

कूक्कुरल् कूवुम्मा ।

वयलेलाम् पच्चैप्पायै

पारिनिल् विरिक्कुदम्मा ।

मलरेलाम् आडि निन्ड्रे,

मणमदै वीशुदम्मा ।

निलवुमे विण्णिल् तोन्ड्रि

निरैयवे निर्कुदम्मा ।

एंगुमे इन्बम् ओंगि

इदयत्तै अलुदम्मा ।

मंगैयर् एंगुम् कूडि

महिष्चियै इरैप्पारम्मा ।

वण्णप् पुराक्कलेल्लाम्

वट्टम् विट्टोडुदम्मा ।

वंडिनम् मदुवरुन्दि

वलमैयो डाडुदम्मा ।

कुन्रुहल एंगुम् पच्चै

कुरै विलै एंगुमम्मा ।

तेन्रलै ओट्टि इन्बत्

तेर् विडुम् वसन्दमामे ।

ति. तु. मीनाक्षिसुन्दरम्

आया वसन्त

सुखद शीतल बयार चली,
कवि का हृदय मुग्ध हुआ।
फूटीं कोंपलें वृक्षों पर,
नन्दन वन-सी शोभा छाई।
बोली कोयल कुंज-कुंज में
कूहू-कूहू का सुमधुर स्वर।
उढ़ा दिया है हरा दुशाला
धरती-तन पर खेतों ने।
सुवास छिटका रहे हैं सुमन,
मधुर झोंके खाते हुए।
उदित हुआ पूनम का चाँद
ज्योत्स्ना फैलाता हुआ।

छाई बहार चारों ओर
हुआ हृदय आनन्द-विभोर
खड़ी तरुणियाँ जहाँ तहाँ,
मादक हर्ष बहाते हुए।
कमनीय कपोत उड़ानें भरकर
दूर क्षितिज को छू रहे हैं।
मधुकरगण मधु पीकर मस्त हो,
गुन-गुन करते झूम रहे हैं।
गिरि पर्वत सब हरे-भरे हैं,
असम्पन्न तो कहीं नहीं।
हाँ सखि, बयार को हाँकता हुआ सुख के रथ पर
आया है ऋतुराज वसन्त।

ति. तु. मीनाक्षीसुन्दरम्

तेन्डूल

अन्दियिले इलमुलै शिलिक्र्किच् चेन्नेल्
अडितोडरुम् मडैप्पुनलुम् शिलिक्र्कि एन्डून्
शिन्दै उडल् अणु ओव्वोन्डुम् शिलिक्र्किच्
चेल्वम् ओन्डु वरुम्, अदनुपेर तेन्डूल्काट्टु ।
वेन्दयत्तुक् कलयत्तैप् पूनैतालि
विट्टदेन एन् मनैवि अरैक्कुपूपोनाल्,
अन्दियिले कोलैयिल् नान् तनित्तिरुन्देन्,
अंगिरुन्द विशिप्पलहै तनिपडुत्तेन् ।

पक्कत्तिल् अमर्न्दिरुन्दु शिरित्तुप्पेशिप्
पपन्दमिषिन् शाट्टाले कादल् शेर्त्तु
मिक्क अवसरमाहच् चेन्ड्र पेण्णाल्
विरैवाह एन्निडत्तिल् वरुदल् वेण्डुम् ।
अक्कालम् अरैक्कु वन्द पूनैयिन् मेल्
अडंगाद कोपमुट्रेन् पिर नेरत्तिल्
पक्काप्पूनैनूरु, पोरुलै येलाम्
पापाक्किनालुम् अदिल् कवलै कोलेन् ।

तेरियामल् पिन् पुरमाय् वन्द पेण्णाल्
शिलिर्त्तिडवे एनै नेरुंगिप् पडुत्ताल् पोलुम्,
शरियाद कुषल् शरिय लानाल् पोलुम्,
तडविनाल् पोलुम्, ऐनैत् तन् करत्ताल्,
पुरियाद इन्बत्तैप् पुरिन्दाल् पोलुम् ।
पुरियट्टु मेन इरुन्देन् एदिरिल् ओर पेण्
पिरिवुक्कु वरुन्दिने नेन्ड्राल्, ओहो !
पेशुमिवल् मनैवि, माट्रेत्ति तेन्डूल् ।

बारदिवासन

मलय पवन

साँझ की वेला में, कोमल जुही को गुदगुदाती हुई, धान के
पौधों के चरणों से लगकर बहने वाले नाले के जल को गुदगुदाती हुई, मेरे
चित्त और शरीर के एक-एक अणु को गुदगुदाती हुई,
आती है एक सुखश्री; उसका नाम है, मलय पवन।
"रसोईघर में बिल्ली ने हाँडी लुढ़का दी," यह कहकर
मेरी पत्नी घर के अन्दर चली गई।
सन्ध्या का समय, मैं पिछवाड़े के बाग़ में अकेला रह गया।
वहाँ पर लगी खाट पर मैं लेट रहा।

(मैं यह सोचता रहा कि)
पास में बैठी, हँसी-मज़ाक करती हुई,
मधुर तमिष़ के रस में सनी प्रेम की बातें करने वाली
(मेरी पत्नी) जो जल्दी से उठकर चली गई, उसे
मेरे पास शीघ्र वापस आ जाना चाहिए।
ऐसे समय में कमरे में आने वाली बिल्ली पर
मुझे असीम क्रोध हो आया। और किसी समय
मोटी ताज़ी सौ बिल्लियाँ एक साथ आकर चीजों को
नष्ट करतीं, तो भी मैं चिन्ता न करता।

इतने में लगा कि वह दबे पाँव पीछे से आकर
मुझसे सटकर लेट गई। मेरे शरीर में गुदगुदी फैली।
प्रतीत हुआ कि उसके गुँथे केश खुलकर बिखर गए।
अनुभव हुआ कि वह अपने कोमल करों से मुझे सहला रही है
और रति-केलि कर रही है।
मैं चुपके से आनन्द लेता रहा। इतने में ही सामने से कोई
बोली, "बिछुड़ने का मुझे खेद है!" अच्छा!
यह बोलने वाली थी मेरी पत्नी, और दूसरी थी मृदु बयार!

भारती दासन्

नेडुंगडल्

नेडुंगडल् विरिवे नेंज,
निनैविकोरि् एडुत्तुक्काट्टे,
तोडुत्तेपुम् पावलूलोगलि्
तोन्ु तोट्टुन्नैप् पाडि,
एडुत्तनर् पेरुमै, नीयो,
एन्नैयुम् पाडच् चोलिक्
कोडुत्तनै, तोडुत्तेन् उन्डून्
कूत्तेलाम् कविदै अन्रो ?

पट्टुडन् ओडियाडुम्
पयलूगल् पोल् कुथालिट्टाय्,
वेट्रिकोल् पट्टालत्तिन्
वीरर् पोल् कूत्तडिप्पाय् ।
शुट्रिडुम् शेक्कु माट्टिन्
शुलिवायिन् नुरै पारेन्बाय् ।
वट्रिडा नीर् परप्पे
वरुणिप्पदेव्वारामो ?

नडनत्तैक् काट्टुम् पेण् पोल्,
नाट्टियम् आडिक् काट्टि,
विडंगाट्टुम् पाम्बाय्च् चीरि ।
वेडन् कै विल्लाय् मारि,
मडक्केन्रु वेरिपिडित्त,
मरुवकोलि तनैप्पोल् आडि,
नडैयिन्रि वीष्नाय् मीलूवाय्,
नडिहवेल् आवाय् वापूह ।

अपार पारावार

अपार पारावार, मन के,
चिन्तन के हे बाह्य प्रतीक !
कितने ही रस-सिद्ध कवि,
चिरकाल से, तुम्हारा यश गाकर,
स्वयं यशस्वी बने हैं, फिर भी तुम
मुझे भी गाने को प्रेरित कर रहे हो।
लो, तुम्हारी ही प्रेरणा से गूँथ दी मैंने यह कविता,
तुम्हारा यह ताण्डव कविता ही तो है।

उत्साह से खेलने वाले बालकों की भाँति,
कभी करते हो तुमुल घोष,
विजय-वाहिनी के वीरों की भाँति,
कभी जय-निनाद करते इठलाते हो,
कोल्हू के बैल की भाँति,
अनंत मुखों से फेनराशि उगलते हो।
अतएव हे जलराशि, तुम्हारा
कैसे करूं मैं लीला-वर्णन ?

लास्य मुद्रा में लीन नर्तकी की भाँति,
ललित नृत्य करते हो कभी,
फुंकारते हो विषधर सर्प सम कभी,
व्याध के धनुष-सम रूप दिखाते हो कभी,
हठात् उन्माद-मस्त
मतवाले की भाँति थिरककर
लड़खड़ाते, गिरते, लोटते, फिर उठते,
नटराज, तुम्हारी जय हो।

शेम्बडच् चिरुवन् वन्दु,
शेहमालुम् वेन्दन् पोल,
कम्बोडुम् कट्टैयोडुम्,
करैयोरम् निन्निरुन्दान् ।
वेम्बिये ओडित्ताविँ,
मेविडुम् अलैक् कूट्टत्तै,
अंबुवि नडुंग वन्द,
अरिमाविन् कूट्टमेन्नेन् ।

अवनदै मरूत्तुच् चोन्नान्,
अलैक् कूट्टम् कुदिरै एन्नान्,
इवन्देरित् तिरिवो रेल्लाम्,
एम्बोलुम् मन्नर् एन्नान् ।
तवपुन्दाडुम् तोट्टिल् एन्नान्,
ताय् माडि ताने एन्नान्,
उवन्दवन् महिष्वैक् कण्डान्,
ओडिन्दवन् बयन्दु शेत्तान् ।

एम्. अण्णामलइ

आया एक मल्लाह का बालक,
जग के शासक की भाँति झूमता हुआ,
हाथ में डाँड और पैरों तले काठ का टुकड़ा[1] लिये
तट पर खड़ा रहा वह,
नाचते-थिरकते आये
तरंग समूह को देख मैंने कहा,
यह तो संसार को भयभीत करने वाले
सिंहों का झुंड है।

तिरस्कार के साथ वह बोला,
यह तरंग-समूह तो अश्व है अश्व,
इस पर आरूढ़ होकर स्वेच्छा से विचरण करने वाले,
मेरे जैसे राजा हैं। (हमारे लिए तो यह)
पालना है खेलने का
माता की गोद-सा प्यारा।
(सच है) साहसी के लिए तो सभी मोदकर हैं,
परन्तु कायर के लिए सभी प्राणहर हैं।

एम्. अण्णामलइ

---

१. 'कट्टुमरम्' जिसे अंग्रेज़ी में Catamaran कहते हैं। इसमें काठ का एक मोटा टुकड़ा होता है। कई टुकड़ों को एक दूसरे से बाँधकर इसे बड़ा भी बनाया जा सकता है। चूँकि इसमें पानी भरने की कोई गुंजाइश नहीं है, इस कारण इसके डूबने का कभी खतरा नहीं रहता।

पलन् ?

तरुमम् शेय्व दाहक् कूरित्
तण्णीर्प् पन्दल् वैत्तवर्
किरुमि गिरैन्द नीरैत् तरुदल्
कैडुदल् आहुम् अल्लवो ?

पिळ्ळै यावुम् तुळ्ळि आडप्
पेरिय तिडलै अमैत्तवर्,
मुळ्ळै नडुवे परप्पि वैत्तल्
मोश माहुम् अल्लवो ?

अन्न दानम् शेय्वदाह
अरिवित्तोर्हल् पुपुक्कलुम्
मण्णुम्, कलुम् कलन्द शोट्रै
वपंगलामो ? शोल्लुवीर्।

निरैयप् पुत्तहंगल् शेर्त्तु
"निलैयम्" ओन्ड्रै वैत्तदिल्
अरिवैक् केडुक्कुम् नूलै वैत्तल्
ऐयो, मोशम् ! मोशमे !

वल्लियप्पा

लाभ क्या ?

धर्म कार्य करने के नाम से
प्याऊ लगाने वाला,
कीटाणुओं से भरा पानी पिलाये,
तो वह बुरा होगा न ?

बच्चों के खेलने-कूदने के लिए
विशाल मैदान बनाने वाला,
बीच में काँटे बिछा रक्खे,
तो वह धोखा होगा न ?

"अन्न दान करूँगा मैं," यह
घोषणा करने वाला, कीड़े,
मिट्टी और कंकड़ मिला हुआ अन्न दे,
तो बताओ, वह ठीक होगा ?

बहुत-सी पुस्तकें इकट्ठी करके
पुस्तकालय खोलने वाले, उसमें
बुद्धि को भ्रष्ट करने वाली किताबें रखते हैं,
हाय, कितना बड़ा धोखा है यह ?

वल्लियप्पा

ओटुमै मुरशु

१

ओटुमै मुरशोलित्तु मुन्शेल्वोम्,
उलहमेल्लाम् अन्बुकोण्डु वेलुवोम् ।
वेट्रि नल्हुम् शुत्तशाक्ति वेहमे
विलंगुयिर्क् कुलंग लेल्लाम् एहमे

शुदि कलन्द पाट्टै प्पोलच्
चुषलुं तेन्ड्रल् काटुप्पोल,
नदिहलन्द कडलैप्पोल,
नर्त्तनंजेय् तोंडरपोल,

ओटुमैक्कु ओटुमैमुन् नेरुवोम्
उण्मै वेलुम् वेलुमेन्ड्रु कूरुवोम् ।

२

ऐलैयट्र वान्कुडैयिन् निषलिले,
इरुशुडर् तरुम् इयर्कै ओलियिले,
पलुयिक्कुम् परिन्दु नल्हुम् काट्रिले
पात्तीदिल्लै ओरहत्तिन् शायले....

वडक्कुम् तेर्कुम् किषक्कुम् मेर्कुम्
वट्ट वानच् चुटुप् पोले,
तोडुत्त पुष्पमालै पोले,
तोहै मयिलिन् शिरहुपोले ।

मंगल मुरशोलित्तु मुन्शेल्वोम्,
मानिलत्तिल् इन्बवाषवु नल्हुवोम् ।

एकता की भेरी

१

एकता की भेरी बजाते हुए आगे बढ़ें!
प्रेम से समस्त संसार पर विजय पायें।
शुद्ध शक्ति की स्फूर्ति ही विजयप्रद है।
जग की समस्त जीवराशि एक ही है।

सुस्वर युक्त गीत की भाँति,
बहने वाली बयार की भाँति,
नदियों से पूरित समुद्र की भाँति,
नृत्य करने वाले भक्तों की भाँति,

एकता में लीन होकर आगे बढ़ें!
नारा लगायें, 'सत्यमेव जयते' 'सत्य की ही जीत होगी।'

२

निःसीम व्योम-छत्र की छाया में,
सूर्य-चंद्र की प्राकृतिक ज्योति में,
समस्त जीव की प्रिय प्राणदायिनी वायु में,
पक्षपात की छाया तक नहीं देखी हमने कहीं!

उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम हैं
वर्त्तुल व्योम की परिधि की भाँति,
गुँथे पुष्पों की माला की भाँति,
मयूर के बहुवर्ण पंखों की भाँति।

मंगलमय भेरी बजाते हुए आगे बढ़ें!
विशाल संसार में सुखमय जीवन स्थापित करें।

३

मनिदरूळ् मनिदनै यरिहुवोम्,
मनाविहारत्तै एडुत् तोरिहुवोम्।
अनैवरुक्कुम् पोदुनलंग लाट्टुवोम्,
अचमट्ट् सुदन्दरत्तैप् पोट्टुवोम्।

इन्दुमुस्लिम् क्रुस्तुबुद्दर्
इदयमोन्ड्रि इनमुमोन्ड्रि,
पन्दमट्ट् आन्मवीरप्
पडैयैप्पोल नडैशिरन्दे

समरस मुरशोलित्तु मुन्शेल्वोम्
शादियट्ट् जोदि पट्ट्रि वाष्वोम्।

मण्णहत्तिल् विण्णरशै,
मानिडत्तिल् अमरवाष्वैक्
कण्णहत्तिल् कडवुलन्बैक्
कंडु कंडु करुणैहोन्डे,

आनन्द मुरशोलित्तु मुन्शेल्वोम्,
अरुलमैदि याट्ट्लोंग वाष्वोम्।

योगी शुद्धानन्द भारदि

३

मानव की हृत्-स्थित मानवता को पहचानें।
मन के विकारों को उखाड़ फेंकें!
सबके कल्याण का काम करें!
भय-रहित स्वतंत्रता का यश गायें!

हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, बौद्ध, सब
हृदय में एक हो, जाति में एक हो,
बन्धन-रहित अध्यात्म वीरों की
सेना की भाँति शान से चलकर,

समधर्म की भेरी बजाते हुए आगे बढ़ें!
जाति-रहित ज्योति की शरण लेकर जियें!

मर्त्यलोक में स्वर्ग राज के,
मानव-समाज में अमर जीवन के,
प्रत्यक्ष में ईश्वरीय प्रेम के,
दर्शन करके गद्‌गद् हृदय से,

आनन्द की भेरी बजाते हुए आगे बढ़ें!
प्रसाद, शान्ति और शक्ति में उन्नत होकर जियें।

योगी शुद्धानन्द भारती

देविक्कुप् पिडित्त दीबावलि

महल् : दीवालि वन्ददम्मा, सिलुवकुहल्
तेरुवेल्लाम् तोंगुदम्मा !
पावाडै दावणियुम् कोलैहाल्
पट्टाले वेण्डुमम्मा ।

ताय् : नालु मुपत् तुणिक्कुक् कोडि पेर्
नालेल्लाम् एंगुहिरार् ।
कालम् अरिन्दवल् नी, पट्टाडै
कट्टि मिनुक्कलामो ?

महल : पुत्तम् पुदु नहैहल् पूट्टियें
पोन्नम्माल् मिन्नुहिराल् ।
शित्तं तुडिक्कुदम्मा, एन्कादुम्
शिमिक्कै कैट्कुदम्मा ।

ताय् : कन्नं करु मणिक्कुम् गदियट्रोर
कणक्किन्ड्रि वाऴ्हैयिले,
पुन्नहै पूंडवले, उन्मनम्
पोन्नुक्कु एंगलामो ?

महल् : कोत्तु वेडिच्चरमुम् हैड्रजन्
गुंडुम् वेडिक्कुदम्मा !
एत्तनै वर्त्तियम्मा, अम्मम्मा !
एदेनुम् वांगिडम्मा !

ताय् : चुट्टुक् किपंगविक्क एपैक्कुच्
चुल्लियुम् इल्लैयडि !
पट्टासुक् कट्टिल्कोट्टिक् कण्मणि,
पणत्तै एरिक्कलामो ?

देवी की प्रिय दीपावली

बेटी : दीवाली आई, माँ! रेशमी कपड़े
गली-गली में लहरा रहे हैं।
लहंगा और चुनरिया, कोछेकालम[1] के
रेशम के बनवा दो, माँ!

माँ : चार हाथ के कपड़े के लिए करोड़ों लोग
जीवन-भर तरस रहे हैं!
तुम तो जानती हो जमाना कैसा है, तो फिर रेशम
पहनकर आडम्बर करना ठीक होगा?

बेटी : पोन्नम्मा को देखो तो माँ, नये-नये
गहने पहनकर चमक रही है।
मेरा भी जी ललचा रहा है, माँ! मेरे भी कान
झुमके माँग रहे हैं, माँ!

माँ : काँच की मणि के भी मोहताज
अनगिनत लोग हैं दुनिया में!
मुस्कान ही तुम्हारा भूषण है। तुम्हारा मन
सोने को तरसे, यह ठीक है?

बेटी : क़िस्म-क़िस्म के पटाख़े और हाइड्रोजन
बम सब जगह फट रहे हैं।
कितने रंग-बिरंगे फव्वारे और फुलझड़ियाँ! माँ, माँ,
कुछ तो खरीदकर दो, माँ!

माँ : कन्द-मूल सेंकने के लिए गरीबों को
लकड़ी तक मयस्सर नहीं होती।
मेरी बिटिया! पटाख़ों में
पैसा फूँकना कहीं ठीक होगा?

---

१ रेशमी वस्त्रों के लिए दक्षिण में प्रसिद्ध स्थान।

महल् : पट्टिल् जोलिक्कामल्, तित्तिप्पुप्
पट्चणम् तिन्नामल्
पट्टासै वीशामल् दीबालिप्
पंडिहै पोहुमोम्मा ?

ताय् : काशैक् करियाक्कि कुषन्दैहल्
कादैच् चेविडाक्किप्
पूशैयि देन्डु शोन्नाल्, शेल्वमे,
पूमि शिरिक्कादोडी ?
पाव इरुलोपिय, मनात्तिल्
परिवु नेय् वात्तुत्
तीवत्तै एट्रिडडि अदैविडत्
तीबालि इल्लैयाडि ।

"सुरभि"

बिटिया : रेशम पहनकर न जगमगायें, मीठे
पक्वान्न बनाकर न खायें, और
पटाख़े भी न छोड़ें, तो दीवाली का
त्योहार कैसे मनेगा, माँ?

माँ : नाहक पैसे भी फुँकें और बच्चों के
कान भी खराब हो जायें,
इसे तुम त्योहार कहोगी, तो बिटिया,
दुनिया नहीं हँसेगी?
पाप का अँधेरा बुझाने के लिए मन में
दया का घी डालकर
दीप जगाओ, मेरी लाड़ली! उससे बड़ी
दीवाली और कोई नहीं!

"सुरभि"

ओरु वरम्

काल वर्षियिल् नेडुन्दूरम् शरिदम्
काण अरिय इरुट्पादै
आल विडमोरु शेन्दपलुम् कूडि
अरशन् उरुविनिल् आंडन काण् ।

पन्नुम् अरनूल् पलकूरुम् पषि
पावम् अनैत्तुम् अवन् पुरिन्दान् ।
एन्न कोडुमैहल् उंडुलहिल् अवै
ऐल्लाम् विलैन्दन अव्वुलहिल् ।

पुदिय विदिहल् निदम्शेयवान् एदिर्
पौदनै शेय्दाल् अदम् शेय्वान् ।
विदियिन् कोडुमै एन्ड्रेण्णि पलर्
वेट्टु नहरम् विरैन्दिट्टार ।

पिन्नुम् तुयहल् निर्कविल्लै, इडम्
पेयन्दोर् तोल्लैयुम् पेयरावेल्लै ।
अन्नम् अरिया मदलैहलुम् अवन्
आणै अरिन्दे पदरुमम्मा ।

मक्कलिल् अरिज्ञर पलर्कूडि अवन्
मालिहै मुन्ने ओरुमित्तार् ।
अक्कणम् मन्नन् मदिलेरि अवर्
अत्तनै पेरैयुम् कोल्वनेन्ड्रान् ।

नल्लोर् कैयिनिल् वालिल्लै, एन्द
नालुम् शमरिनिल् निन्ड्ररियार् ।
काल्ला अरशन् शोल्लुणरान् एनक्
कडवुलै वेंडिक् करंगुवित्तार् ।

एक वरदान

काल-मार्ग में बहुत दूर, इतिहास की दृष्टि
पहुँच न सके, ऐसा अन्धकारमय पथ!
हलाहल और दावानल मिलकर
राजा के रूप में शासन कर रहे थे!

धर्मशास्त्रों में वर्जित समस्त
पाप और कुकृत्य उसने किये!
संसार में जितने अत्याचार हो सकते थे,
वे सब होते थे उसके राज में!

नित नये विधान बनाता वह। इसके विरुद्ध
परामर्श दे कोई, तो उसका वध कर डालता।
प्रारब्ध का दारुण खेल समझ, बहुत-से लोग
दूसरे नगर की ओर भाग निकले!

तब भी कष्टों का अन्त न हुआ, स्थान
बदलने वालों की भी व्यथा दूर न हुई।
दूध पीते बच्चे भी पापी की
आज्ञा सुनकर सिहर उठते!

प्रजाजनों में कई मतिमान, राजा के
भवन के सामने एकत्र हुए।
तत्काल राजा दुर्ग पर चढ़कर
बोला, "तुम सबको फूँक दूँगा।"

उन सत्पुरुषों के हाथों में शस्त्र नहीं थे। कभी
युद्ध का मैदान उन्होंने देखा तक न था।
यह संस्कृतिहीन शासक हमारी बात नहीं समझेगा,
यह सोच उन्होंने परमात्मा से करबद्ध प्रार्थना की।

अणुविल् उरैन्दिडुम् आंडवनै अवर्
अणुगुण् डरुलिड वेण्डविलै ।
अणुवाय् उलहम् शिदरुदर्कै वहै
आन करुविहल् केट्कविलै

करिय मनत्तुक् कावलनै वेट्रि
काणुदर् कान वषितोन्ड्रिप्
पेरिय मनत्तवर् उत्तमहल् अरुद्
पेरुमान् तन्नैये वेंडिडुवार् ।

"वानिन् इरुलुम् मुहिल्वण्णा, नीदान्
वरमोन् ड्रुलिड वेण्डुमैया !
ऊनिल् उरंगिडु मक्कालिडै उयिर्
ऊट्टुम् कविज्ञनै उदविडुवाय् ।"

'सोमु'

अणुवासी भगवान् से उन्होंने
अणुबम की याचना नहीं की।
ऐसे शस्त्रास्त्र नहीं माँगे, जिनसे पृथ्वी
अणु-अणु बनकर बिखर जाय।

मन के काले राजा पर विजय
पाने का उपाय उन्हें सूझ गया।
उच्चाशयपूर्ण वे उत्तम पुरुष,
कृपानिधान भगवान् से यों बोले:

"कृपा वर्षा करने वाले, हे मेघवर्ण! तुम हमें
यह एक वरदान देने का अनुग्रह करो—
जड़-तन्द्राग्रस्त मानव में चैतन्य
जगाने में समर्थ एक कवि हमें दो।"

'सोमु'

तॆलुगु

चयन : पि. लक्ष्मीकान्तम्

अनुवाद : वारणासि राममूर्ति 'रेणु'

कवि-नाम	कविता
अप्पल वीर वेंकट जोगय्य शास्त्री	*ताजमहल*
अमरेन्द्र	*कवि मानस*
उत्पल सत्यनारायणाचार्य	*जीवनसंगीत*
गड्डि लक्ष्मीनरसिंह शास्त्री	*शरदवसर*
दिगुमर्ति सीतारामस्वामी	*द्वैराज्य*
पि. गणपति शास्त्री	*मणिदीपिका*
बॊड्डु बापिराजु	*जीवनपथ*
भट्टिप्रोलु कृष्णमूर्ति	*परिणति*
साल्व कृष्णमूर्ति	*अमृतकेतकी*
सि. नारायण रॆड्डि	*जलद गीत*

ताजमहल

सुकुलिंचुकोवदे मुग्ध-नेत्रांजलि
क्षणद निद्रित-जलजातमद्लु,
कनुमासिपोयेने कल्याणि-लावण्य
मॅडिवाडिन पूल-दंड रीति

श्रुतिहीनमय्येने सतिगात्रमाधुरि
भग्न-विपंचिका-स्वरमु रीति
स्तंभिंचिपोयेने साध्वि रागरसंबु
रायिगट्टिन पादरसमु माड्कि

दीर्घ निद्रनु जॅदेने-दिव्यमूर्ति, भूरियोग-समाधि-सुप्तुनि विधान
गूडुलोकाल यंदाल गूडगट्टि, मलचिकट्टिन दी टाजिमंदिरान.

ए जलाजात-दीर्घ-तरलेक्षण-सुंदर-दिव्य-मूर्ति क-
व्याज-महानुराग-कुसुमांजलुलन् घटियिंचु फादुषा
रोजुनु रोजु कट्टि यपुरूप-रसांचित-रूपराजि मुं-
तांजिकि प्रेमचिन्हमयि ताजमहल् कनुविंदु चेसेडिन्.

जारिन गुंडॅलो सुनुपु सागिन मोहन-रागमेल्ल वि-
स्फारित-वल्लकीगति यपश्रुति पालयि पोवनाड सा
वेरि मुखारिये हृदय-वीथि विषादपुरेख दिद्दि ये-
तीरुन फादुषा मनसु द्रिप्पेनो शोकमु टाजि सृष्टिके.

गाटपुप्रेमलो मनसु गायमु नोंदिनदानिकिंत या-
र्भटि मदेन्दुको तेलियरादु नवाबुल चित्तवृत्ति सु-
प्पॅटलकंठसीम पेनवेसिन राग-वियोग-दुःखमुल्
माटलचोक यद्भुत-कला-स्थिति गांचुट साजमे कदा

मुप्पदियेंड्लु वार्चि वडपोसिन नीदु कलातपस्सु ई
योप्पुलकुप्पगा प्रभव मोंदि समंचितप्रेमवार्धिकिन्
दॅप्पलुकट्टे, सुप्रणय-दिव्य-कथामय-काव्यपत्रमुल्
द्रिप्पेनु शाजहां ! कडु तरिंचिति वी चॅक धन्यजीविवे.

ताजमहल

सुख चैन के दिनों में हृदय में पल्लवित होते रहने वाला मोहन राग मेला सहसा दिल के टूट जाने पर भग्न-वीणा की तरह बेसुरा रह गया है तो उसकी जगह क्रमशः सावेरी और मुखारी ने लेकर (बादशाह) की हृदय-वीथी में विषाद-रेखाएँ खींच दीं। फिर उस प्रचण्ड शोक ने न जाने किस बादशाह का मन ताज की सृष्टि की ओर फेर दिया है।

तीव्र प्रेम-व्यापार में यदि हृदय पर आघात पहुँचा और उसके टुकड़े भी हुए तो इतनी-सी बात को लेकर यह सारी दौड़-धूप और हंगामा जाने क्यों रचा गया! बादशाही चित्त-वृत्ति को समझ पाना भी कठिन है। हाँ, ठीक ही तो है, यदि उसके कण्ठ-प्रदेश से लिपटे प्रबल राग, वियोग और दुःख यों ही न छूटकर अद्भुत कला-कृति का रूप धर बैठे तो वह सहज परिणाम ही कहा जायगा।

तीस साल तक निरंतर तपने वाली तुम्हारी सुदीर्घ कला-साधना ने इस सौंदर्य की ढेरी के रूप में जन्म लेकर पवित्र प्रेम-पयोधि के संतरण के लिए पोत प्रस्तुत किया है, सुप्रणय-दिव्य-कथामय काव्य के पन्ने पलट दिये हैं। साधु, शाहजहाँ, साधु! तुम्हारा जीवन चरितार्थ हो गया है।

बेगमु फादुषा पेंदविवीडिन यंत्यपुकार्के नोटिकिन्
बीगमुवेय मार्वलुक नेरक, मुक्लु म्रिंगि षाजहान्
त्यागमुचेसे म्रेयसि पदंबुलु साक्षिग ब्रह्मचर्य-दी-
क्षागति गांतु निंक ननि स्मारकचिन्हमु गूर्तुनं चोंगिन्.

तीयनि गुंडेल्लो वलपु तीगलुसागुचु विस्तरिल्लि दी-
र्घायुवु बोसिकोन्नदनि यासिलु नातनि याश गंग पा-
लायें, विषाद-घोर-विपदावृत-दुर्दिनमय्ये मानसं
बायतिशून्यमय्येनु प्रियांगन लोकमु वीडिनंतने.

चेदयि पोयिनट्टि तन जीवितमं दनुरागलेश-सं-
पादन दुर्लभंबनि क्रमक्रम मात्म दलंचि येट्टिदा-
यादुलुनैन केलमोगुचुनट्टि कळामय-दिव्य-सृष्टिकिन्
बादुषहा पुनादि इडिनाडु प्रियांगन कात्मशांतिगान्.

रप्पिंचेन् वाडि पारसीकगुरुशिल्पाचार्युलन् वेग दा
देप्पिंचेन् शशिकांतपुन्शिललु मुंदे पंपे वज्रालकै
गप्पिंचेन् यमुनातटंबु सिकतागारंबुगा, कोट्लले
गुप्पिंचेन् त्रिदशाब्दमुल् नवकळाकोशप्रलोभात्मुडै.

जलयंत्रबुलु मोरलेत्ति सलिलोच्छ्वासंबु गाविंचे, के-
वल वाधिल्लु गुलाबि पेन्नगवु दोपं गन्नु तार्टिचे, वृ-
क्षलता-गुल्ममु लंडजंबुलकु सत्कारंबु गाविंचे, लो-
पलि वैक्रांतपुरापथं बादि समासं बय्ये नानाटिकिन्

खेदमुतोल्करिंप गनुप्रेवल मूगु विषाद-मेघपुं
बादुललो तळुक्कनि नवक्षणिकाद्युति दोचेनंत ना
पादुषहाकु गद्गदुरुपाटुन निल्चिन प्रेम-चिन्हिता-
ह्लाद-सुधामयैक-सुविलासमु कंटिकि दोचिनंतने ।

प्रियतमा बेगम के ओठों से निकली अंतिम आकांक्षा ने जैसे अपने ओठों पर ताला डाल दिया तो प्रतिवाद का एक शब्द तक न निकाल सके। शाहजहाँ ने मन में उमड़ने वाला शोक मन ही में दबाकर, प्रिय पत्नी के चरणों को साक्षी रख प्रतिज्ञा कर ली कि, आमरण ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा और अनुपम स्मृति-चिह्न खड़ा कर दूँगा। प्रियांगना की इहलोक-लीला की समाप्ति पर ही उसका मानस विषदघोर विषदावृत दुर्दिन बना शून्य रह गया है। मधुर हृदयों में प्रणय-बेल फूल-फलकर फैलती जा रही है। और इसकी लंबी उमर होगी ऐसे मीठे सपने देखने वाले उस बेचारे की आशाओं पर सहसा घड़ों पानी फिर गया है।

धीरे-धीरे यह समझकर कि अपने उस तिक्त कटु जीवन में भविष्य में अनुराग का संपादन करना असंभव है, शाहजहाँ ने स्वर्गीया प्रियतमा की आत्म-शांति के लिए ऐसी कलामय दिव्य सृष्टि की बुनियाद डाल दी जिसे देखकर वैसे ही मत्सर-ग्रस्त दायाद क्यों न हों, हाथ जोड़े बगैर न रह सकें।

बात-की-बात में फारस के बेजोड़ शिल्पाचार्यों को बुलवा लिया, पलक मारते चंद्रकांत-शिलाएँ मँगा लीं, हीरे-जवाहरात के लिए पहले ही फरमान भेजे गए, सारा यमुना-तट उनसे पट गया। सर्वथा नूतन कला-कोष के लोभ में आकर तीस साल तक करोड़ों स्वर्णमुद्राओं की वृष्टि कराता रहा।

जल-यंत्र शीर्ष उठाए सलिलोच्छ्वास कर उठे। पास में पनपने वाला आँख मटकाकर खिलखिला पड़ा। वृक्ष-लता-गुल्मों ने अण्डजों का स्वागत-सत्कार किया। दिन बीतने के भीतर वह पुरापथ समाप्त हो गया।

अपने प्रेम के प्रतीक, आह्लाद-सुधामय उस कला-कृति पर नज़र पड़ते ही, खेद व विषाद मेघ-पटलों से आर्द्र बादशाह के हृदय-आलवाल में कोई नवीन ज्योति विद्युत्-सी कौंध गई! (उसका बाह्याभ्यंतर किसी अव्यक्त सुख से झनझना उठा)

ई नुनुरातिलो मॉलकलॅत्तु मनोहर-दिव्यशिल्पसं-
तान-लतांतसंचय-नितांत-यशःपरिसौरभम्मु दिङ्-
मानितमै रहिंचु शतमानवसंतमु लुब्धहिंचि यो-
हो! निरवद्य मिट्टि रचनोद्यति येरि युपज्ञयो कदा!

ललितकळालतांगि सुविलासलसन्नव-हेमकिंकिणी-
कलित-पदद्वयी-चलन-कल्पितसुंदरनाट्य-वैखरी-
विलसनमुल् रचिंचु कनुविंदुग, निंदु मरंदमाधुरी
कलरवमुल् चॅलंग दिरुगाडु शकुंतमु लुर्विजालपै.

मूडु शताब्दमुल् गडचिपोयिन वार्धकता-स्वरूपपुं-
जाडलुलेवु नी येड प्रशस्त-विनिर्मल-कुड्यपालिलो
नेडुनु नीडलानु कमनीयमु नीदु कळाविलास मे-
वाडु प्रमोदरूप-रसवज्झरि नीदडु? निन्नु गांचिनन्?

ई चतुरब्धिवेष्टित-महीवलयस्थ-समस्तदेश-या-
त्राचणशीलु रॅदरु कृतार्थुलमैति मटंचु शिल्परे-
खाचतुरत्व मेर्पडि प्रकाशिलु नी रमणीयमूर्तिलो
चूचु कळासुमाळि दलचूनिरिगारु प्रमोदसुग्धुलै?

कडुननुरागवार्धिपयि गप्पिन चक्कनि मेलि पालभी-
गडतेर गानि इट्टि योक कारुजरूपमु गादु गुंडॅलं
दडरु वियोग-दुःख-पटलाळिकि वॅन्नेलतेटगानि क-
न्पडुनदि केवलाधिगतनव्यकळामयमूर्तिगा दॉगिन्.

कुरुविंदालकु स्निग्धतं गरपु नी कुड्याल शोभिल्लु प्र-
स्तरमुल् सर्वमु नॉक्टॉक्टिग पत्रव्यापृतिंगांचें नी
परमादर्शी-विशुद्ध-सुप्रणय-काव्यंबंदु कूहूरवो-
त्करमुल् सत्कवुलै पठिंचु तम कैतल् माधवप्रीतिकै

इस चिकने पत्थर में अंकुरित होने वाले मनोहर दिव्य-शिल्प संतान-सुमन-संचय का अनंत यशः-परिसौरभ दिग्दिगन्तर में सम्मानित होता हुआ सैंकड़ों वसंत बिता देगा! आहा! जाने ऐसी निरवद्य रचना का उपक्रम किसके मस्तिष्क की उपज थी!

इस भव्य प्रदेश में, ललित कला-लतांगी अपने सुविलास-लसन्नव-हेमकिंकिणी-कलितपदद्वयीचलन-कल्पित सुंदर नाट्य वैखरी विलास प्रदर्शित करके नेत्रों के लिए प्रीति-भोज प्रस्तुत करती है! यहाँ के उर्विजों (वृक्षों) पर मकरंदमधुर-कलरव करता हुआ शकुंत-समूह संचरण करता रहा है।

(ऐ अपर कला सुंदरी!) तीन शताब्दियाँ बीत चलीं किन्तु फिर भी तुम्हारी देह पर बुढ़ापे का कोई चिह्न नहीं दीखता! तुम्हारी विनिर्मल प्रशस्त भित्तियों में आज भी छायाएँ (प्रतिबिंब) नाट्य करती हैं। तुम्हारे कला-विलास हैं ही अनोखे, फिर भला कौन ऐसा जड़ होगा, जो कि तुम्हें देखकर प्रमोदरूप रस-तरंगिणी में गोते न लगावेगा?

शिल्परेखाचातुरी का पराकाष्ठा का रूप तुम्हारी रमणीय मूर्ति में खिले हुए कला-सुमनों को शिरोधार्य करके, हर्षशिथिल हो, इस चतुस्समुद्रवेला-वलयित पृथ्वी के समस्त देशों से आये हुए कितने ही यात्रियों ने अपना अहोभाग्य मान लिया है।

(उन्हें लगा कि) यह तो अनुराग क्षीर-सिंधु पर जमी नवनीत की पर्त है न कि कोई कारीगरी! हृदय को पुटपाक की भाँति धुला-जला देने वाले वियोग-दुःख पटलों के लिए जुन्हाई का शीतल प्रलेप है, किंतु कोरी पार्थिव कला-कृति कभी नहीं हो सकती!

(हे ताज!) घुँघचियों को भी चिकनाहट सिखाने वाली तुम्हारी भित्तियों पर विराजमान प्रत्येक प्रस्तर-खण्ड ने, तुम्हारे इस विशुद्ध आदर्श प्रणय काव्य में एक-एक पत्र (पृष्ठ) का स्थान ले लिया है। चारों तरफ उठने वाले कुहूनिनाद सत्कवि बन, अपनी कविताएँ सुनाकर माधव (वसंत) का मन बहला देते हैं!

लालितरीति युष्मदुदरस्थ-विनिद्रित-जातरूप-पां-
चालिकयैन राणिसरसन् दमि मोघलु सार्वभौमु डे
लील रचिंचॆ दानु पवळिंप समाधि-गतास्तरम्मु तु-
द्वेल-विनिर्मलप्रणयवेदिकि लेवुगदा वियोगमुल् !

रिक्कल जाजिपूल नलरिंचिन नीलिनभंपु गॊप्पुपै
जक्कनि कप्पुचीर मॊगचाटुग दाल्चि त्रियामकांत दा
ग्रक्कुन चंदमाम कपुरंपुनिवाळु लॊसंगबोलु नी-
कक्कट ! यंतनुंडि शशि यारु क्रशिंचि क्रमक्रमंबुनन्.

पॊडमिन नानतो दॊगरुमुकुल चक्कनि पेरटांड्रु नी
यॊडि शयनिंचु प्रेमिकुल युग्ममदात्मलु मॆचुनट्लु पा-
डॆडु नदे ज़ोलपाट प्रकटीकृतशौंडिकता-प्रभाव मे-
र्पडि दिनसंध्यलन् मनुजभाषल कंदनि भावपुष्टितोन्.

ऒरुगन्बारिन गोपुरालु धरपै नूटाड्रु पूदोट ला
पिरमिड्-रूपकळाविशेषरचनाविर्भूति नी गोटिकिन्
सरिगावच्च भवन्नितांतमुखवर्चस्संपदल् इट्टिवं
चॆरुगन् वच्चुने लक्षणज्ञुलकु, टाजी ! शिल्पिकाजीवमा !

अप्पल वीर वेंकट जोगय्य शास्त्री

मधुर लोरियाँ गा-गाकर जैसे किसी ने सुला दिया हो ऐसा तुम्हारे उदर में सोने वाली जातरूप-पांचालिका (सुनहली पुतली) राज्ञी के पार्श्व में, प्रेम से अभिभूत मुगल चक्रवर्ती ने, स्वयं अपने शयन के लिए स्थान बनवा लिया है। अहा! उच्छ्वसित विनिर्मल प्रणय-वेदी पर वियोग के लिए स्थान कहाँ रहता है?

विनील व्योमरूपी शबंध पर नक्षत्रों के जूही-कुसुम सजा, सुंदर काली ओढ़नी पहले त्रियाम-कामिनी (रजनी-रमणी) चाँद का कर्पूर जलाकर संभवतः तुम्हारी आरती उतारती होगी! तभी तो वह (चंद्र) धीरे-धीरे क्षीण होकर, अंत में बुझ जाता है!

सुनो! मानवी भाषा तथा भावनाओं के लिए भी अतीत अद्‌भुत पांडित्य-पूर्ण कल स्वरों में रोज सुबह-शाम तुम्हारी गोद में विश्राम करने वाले प्रेमीयुगल के आत्म-संतोष के लिए, रंग-बिरंगी चोंचों वाली सुंदर सुहागिनियाँ बड़े ही प्यार से लोरियाँ गा रही हैं!

झुके हुए गोपुर, झूलने वाले पुष्प वन और वे 'पिरामिड' इन सबमें प्रदर्शित कलाकारिता को एकत्रित करके देखा जाय तो वह तुम्हारी नख-ज्योति तक की बराबरी नहीं कर सकेगी!

ऐसी दशा में तुम्हारी समूची रूप-माधुरी की गहराई कोई भी लाक्षणिक कैसे समझ पाये? ऐ ताज! शिल्प-शास्त्र के प्राण! तुम्हारा वर्णन असंभव है!

अप्पल वीर वेंकट जोगय्य शास्त्री

कवि हृदयम्

एकरकाल भावालकु नाहृदयं रहदारि
विकसिंचनि जीवालकु ना कंठं रणभेरि
नालो नववसंतालु
कोकिल-मृदु-कूजितालु
मधुकर-झंकारालु
मृदुसुममकरंदालु
नालोने शिशिरंलो
आकुरालि आशलुडिगि
भीकरमौ मौनंतो
ओडिन रणवीरुल वले
मोडैपोइन तरुवुलु
नालोने साधुवुलू
सत्य-कांति-साधकुलू
नित्यशांति-शोधकुलू
नालोने
दरिगाननि तामसुलू
दयनेरुगनि दानवुलू
पातकुलु किरातकुलू
तमपापपु कूपंलो
तन्नुकुने पतितात्मुलु
नालो सुखस्वप्नालो
सोलिपोवु धनवंतुलु
नालोने आकलितो
चीकटिलो चेद्ल किंद
शोकिंचे क्षोभिंचे
दीनुलु, धनहीनुलु बलहीनुलु

कवि मानस

तरह-तरह के भावों का, मेरा मन विचरण पथ है।
अविकसित प्राणियों की रण-भेरी, मेरा कलरव है
मुझमें है नव वसंत
है कोकिल कल-कूजन
मधु षट्पद झंकृतियाँ
मृदु सुमनों के मरंद
मुझ ही में शिशिर शीर्ण
पत्र हीन, आस हीन
अति भीषण मौन लिये
हारे रण-वीरों ने
ठूँठ बने तरु कितने !
मुझ ही में साधु-सन्त
सत्य-ज्योति साधक-जन
नित्य-शांति शोधक-गण
मुझ ही में
कुलहीन तापस-जन
दयाहीन दानव-गण
पातकी किरातक-गण
निज पापों के कूपों
में सड़ते पतितात्मा
मुझमें सुख-सपनों में
छके थके धनकुबेर
मुझमें ही, भूख लिये
तम में, तरुछाया में
शोकाकुल, क्षोभ-शिथिल
दीन वित्त-हीन शक्ति-हीन
सभी सिमटे हैं !

नाहृदयं संध्याकाशं
वॅलुगु चीकट्टुल विचित्रलास्यं
ना जन्ममॅ अविरतसमरं
विरुद्धशक्तुल
कत्तुल मॅरुपुल
नॅत्तुरु धारलु
रकरकाल भावालकु नाहृदयं रहदारि
विकासिंचनि जीवालकु नाकंठं रणभेरि
ना प्राणं शांतिसागरं
ना गानं कांतिसाधनं

अमरेन्द्र

मेरा मन सांध्य-गगन
धूप छाँह के विचित्र
लास्य-हास्य का प्रांगण
मेरा जीवन ही है अविरत रण
अति-विरुद्ध शक्तियों की
अति-विभिन्न व्यक्तियों की
असि-चपलाओं की अति
भयद रक्त-धाराओं का
है इक अद्भुत आँगन!
तरह-तरह के भावों का मेरा मन विचरण-पथ है
अविकसित प्राणियों की रणभेरी मेरा कल-रव है
मेरा प्राण शांति का सागर!
मेरा गान क्रांति का साधन?

अमरेन्द्र

जीवन संगीतम्

चॅप्पॆदवेमो ! नेनिटकु चेरि सुयालल नूगुचुन्न ना
चॉप्पॅरिगिंचॅदेमो ! वनसुंदरि ! कॉंचॆमु-सेपे यातनिन्
त्रिप्पलु पॆट्टनिम्मु ननुनी पसिपच्चनिपैट चॆंगुलो
कप्पि यॊकिंत ना हृदयकंपनमुन् शमियिंप जेयवे !

मापटि की नदीपुलिनमार्गमुलॅल्लनु सांद्रचंद्रिका-
लेपनरंगभूमु लगुले ! चिरुगज्जॆलु काल्ल गट्टि ने
गोपिक नौदुना ! पयटकॊंगुल्लु गालिकि तेलवेसि ओ-
यी ! परदेशि ! नी यॆदुरने मधुरम्मुग नाव्यमाडना !

नाल्गुदिनालनाडु यमुनानदि पोंगिन पोंगुलन् वनं
बल्गुलु नल्गुलै मुनुकलाडगलेदे ! तदीय वैखरिन्
गल्गिन यौवनोज्ज्वल-विकस्वररंजितरागभागनै
पॆल्गॆल्लुदान नावल्पु-वॆल्लुवलन् वन मेल्ल निंपुचुन्.

नवमृद्वीक-मरंदमुल् सुरभिळानंदैक-संदानिला-
युवु लिंदिंदिरबृन्दगानमुलु मायूरारवंबुल् मृगी-
जवमुल् काक शुकीपिकीकलकलस्वैरानुलापक्रिया-
प्रविनोदंबगु नी वसंतवनशोभल् कांच वेंचेयुमा !

पट्टुजवाजिवश्वेतलपाग मुखम्मुन मंचिगंदपुन्-
बोट्टु सुदीर्घमैन कनुबोम्मलु, चेरलगोल्चु कन्नुल-
चट्टि मनोजुडे ! जितजयंतुडॆ ! चुक्कललोन चंद्रुडे
चुट्ट मतंड नाक वनसुंदरि ! यॆचट गुंडॆ चॆप्पुमा !

जीवन-संगीत

ऐ सखी वन-सुंदरी ! झूले की भाँति डाँवाडोल होने वाली मेरी मानसिक दशा का पता कहीं उन्हें तो नहीं दोगी न ? कम-से-कम थोड़े-से समय के लिए तो उन्हें छकाने का मौका मुझे दो। मुझे अपनी नन्ही-सी हरीतिमा के आँचल में ढककर मेरे दिल की धड़कन को शांत बना देना।

रात तक नदी-पुलिन की ये सारी सड़कें सांद्र चंद्रिका रंजित रंगस्थल बन ही जायँगी। तब क्या पैरों में घुँघरू बाँधकर गोपी बन जाऊँ ? अथवा चेलांचल के छोर हवा में लहराकर, ऐ परदेशी ! तुम्हारे ही सम्मुख मधुर नाट्य कर बैठूँ ?

दो-चार दिन पूर्व यमुना में आई हुई बाढ़ में यह सारा उपवन गोते खाता रहा न ? उसी प्रकार उमड़ पड़ने वाले यौवनोज्ज्वल-विकस्वर-रंजित राग लिये मैं इस समूचा वन को निज प्रेम के उपप्लव में बहाती हुई, शोभित हो उठूँगी।

नव-मृद्वीकमकरंद-सुरभितानंदैकमंदानिल-इंदिंदिरों के बृंदगान, मयूर केकारव, मृगीगणों की चौकड़ियाँ, तथा काकशुकीपिककलकलस्वेच्छानुलाप-क्रियाकलाप इन असंख्य आनंदोत्सवों से उल्लसित इस वासंती उपवन की शोभा देखने आ जाओ !

मंजीठी रंग की रेशमी पगड़ी, भाल-भाग पर चंदन बिंदी, सुदीर्घ भौंहें, कर्णफूलों से कनफुँसियाँ करने वाले नेत्रों से अलंकृत कामदेव ही रहा है वह मेरा साजन ! हे वन सुंदरी ! जयंत को पराजित करने वाला वह उडुगण के बीच का चंद्रमा कहाँ है, जरा बताओ तो सही !

गौरवराजवंश्यु डिटकै अरुदेंचिन आतिथेयस-
त्कार मोनर्पवैतिवनि तंड्रि महारुण-रूक्षिताक्षुडै
दूरुनो गाक ! नेनतनि दोड्कोनि वचिन संशायिंचि सी-
त्कार मोनर्चुनो ! वयसुकंचिय लन्विट नप्रयोजकल्

तानै दानमोनर्चुकोन्नयदि सौंदर्यम्मु दानप्रदा-
धीनाधिक्यत जेंदि नासोगसु नुद्दीपिंप नीवो; सदा-
न्यून-प्रश्नपरंपरल् कुरपगा नोरेत्ति येदे समा-
धानं बिच्चिनदान गा नपुडु नाथा ! येमि भाविंचेदो.

नीज़त निस्चियुन्न रमणी-प्रियदर्शन-मुग्ध-मोहनो-
त्तेजमुलैन नी प्रथमदृष्टुलु नी सुविशालनेत्रनी-
रेजमु लोरगा नोक परिन् दिलकिंतुनो लेदो कानि ना-
लो जय-दुंदुभि-ध्वनुलु म्रोसिन दी वय सोक्कमादुनन्.

आक्षणमद्लु मैमरचिनट्लु चूचेडु मादु कल्पना-
चक्षुवुलंदु भाविविकसन्मुख-सुंदरसौख्यजीवना-
पेक्षलु तीवरिंचि पलविंचेडु स्वर्गसुवर्णशाललो
अक्षयलोकसंपदलकै, अतिलोकसुखानुभूतिकै

कम्मनि कारुवेन्नेल पोंगल् वेलिग्रक्केडु चंद्रशालपुन-
गुम्मसुनंदु नंदननिकुंजमुलंदुन पारिजातपुं-
जम्मुललोन नाट्यरभसम्मुलु ने डनुभूतिलोनिवै
गुम्मयिपोयि नाहृदयगोळमु रेंडव स्वर्गमै चनेन्

म्रोसिनादि समस्तमूर्छनल लयिंचि
प्रेमसंगीत मी हृदयवीण
प्रज्वलिंचिन दंगप्रत्यंगमुललोन
विद्युदुज्ज्वल-समुद्वेगशोभ !

गौरवपात्र राजवंशी के आगमन पर समुचित रीति से उनका स्वागत-सत्कार मैं न कर पाई, इस अपराध पर पूज्य पितृपाद आँखें लाल करके जाने मेरी भर्त्सना करेंगे अथवा यदि मैं उन्हें आतिथ्य देकर आश्रम में रखती तो शंकित मन से झल्ला उठेंगे। हाय! कैसी विवशता है। सयानी लड़कियाँ कितनी अभागिनी होती हैं।

(मेरा) सौंदर्य तो प्रदाता बनने का सारा श्रेय लूटने की महत्त्वाकांक्षा में अपने-आपको तुम्हारे चरणों पर दान दे बैठा है! (बड़ी शीघ्रता कर दी) उससे उत्साहित होकर तुमने मुझ पर असंख्य प्रश्नों की झड़ी लगा डाली। और एक मैं रही जो कि ओठों पर ताला लगाए बैठी सब सुनती रही! पता नहीं, हे नाथ! मेरे इस आचरण पर तुम क्या सोचते होगे।

पता नहीं तुम्हारे पार्श्व में खड़ी होने पर रमणीप्रियदर्शन से मुग्ध तथा उत्तेजित तुम्हारी प्रथम दृष्टियों का सौंदर्य अपने इन विलास वक्रिम नेत्रों से देख सकूँगी या नहीं, किन्तु यह तो सत्य है कि मेरे भीतर एक बारगी इस वय (यौवन) ने असंख्य विजय-दुंदुभियाँ बजा दीं।

उस क्षण में जैसे तन-मन भुलाकर देखते रहने वाले हमारे कल्पना-चक्षुओं में भविष्यविकासोन्मुख सुंदर-सुखमय जीवन की आकांक्षावल्लरियाँ स्वर्ग को किसी स्वर्णशाख में अक्षय सुखानुभूति के लिए पल्लवित हो फैलने लग गईं।

मधुर ज्योत्स्ना की धूप उगलने वाली चंद्रशाला की देहलियों में, नंदन वन के निकुंजों तथा पारिजात तरुपुंजों-तले चलते रहने वाले नाट्य संरंभ तथा रहस-रंगों की-सी अपूर्व अनुभूतियाँ प्राप्त कर, मेरा हृदय जैसे दूसरा स्वर्ग ही बन चला है।

यह हृद्वीणा तो समस्त मूर्च्छनाओं को लीन बनाकर प्रेम-संगीत गा उठी (उसके) अंग-प्रत्यंग में विद्युत्-जैसी चौंधियाने वाली उद्वेगपूर्ण शोभा भभक उठी!

आवरिंचिनादि दिगंतराळम्मुलं
दिंपु वासनल मैकंपु मसक !
जागरिल्लिनदि विशालकांतारम्मु
नीडवेंक्षेलल्लु दोगाडुचुंड !

मौनमु वहिंप चंद्रिकापानतरुलु
पुव्वुलाकुल कवुगिळ्ळ पव्वळिंचे
भ्रमर-परिरंभणोद्रेक-पतनमथिन
कलुवपुवु तेप्परिलि नीळ्ळ दुलुपु कॉनियें

सरगुन रावलेंन् किरणसाहिणि ! स्वर्णरथम्मु नेंक्कि स-
त्वर मरुदेंम्मु मंजुलप्रभातम ! दुर्बल निस्सहाय ई
विरहमयस्वरूपिणिकि वीरतमोमयकाळरात्रिकिन्
जरिगेंडु द्वंद्वयुद्धमुन सायमु रम्मु ! वनांतरम्मुनन्.

उत्पल सत्यनारायणाचार्य

समस्त दिशांतराल सौंदर्य व माधुर्य मादक सौरभ-धुंध से महक उठे! छाया व ज्योत्स्नाओं के विचित्र संचरण के बीच सहसा विशाल कांतार जाग पड़ा है। चंद्रिका-पान से छककर वह चुप्पी साध बैठे! पत्तों के आलिंगन पाश में सुमन-शयन करके रह गए। रस-लुब्ध भ्रमर के उद्रेक परिरंभण से उड़-कर पड़े हुए जलकणों को कुमुदिनी ने सँभलकर ढुलका लिया है!

ऐ किरणों के अश्वारोही, शीघ्रता करो! सुनहले रथ पर चढ़कर तुरंत आ जाओ, हे मंजु प्रभात! अब दुर्बल और असहाय इस विरह की मूर्ति और घनघोर अंधकारमय रजनी के बीच भयंकर द्वंद्व चल रहा है। इस वनांतर में इस संग्राम में तुम आकर मेरी बाँह पकड़ लो! (वरना मैं कहीं की न रह जाऊँगी।)

उत्पल सत्यनारायणाचार्य

शरदवसरमु

वेॅलुगुल मिंटिमानिकपुवीथुल नक्षिटि मूसिवेसि पि-
ल्लल जततोड बक्षुल गुलायानिलायमुलं बोनर्चि, गु-
तुलि गनराक दिक्कुलनु, दुर्दिनमुल् घटिथिंचि मिचु ना
जलधरकाल मुल्लसिलजालॅ, मरोक्कॅतेरं गेॅसंगगान्.

अंबुरुहाप्तमित्रु डरुदार जगंबुन नैशतामसं
बंबरमंदु नंबुदमयांधतमंबुनु, दम्मुलंदु नै-
द्रंबगु चीकटिन् निजकरंबुलतो नडगिंचिवैचॅ, दे-
जंबुन नॉप्पु नुच्छ्रितुल शात्रवु लॅय्येड नोंद राहतिन् !

तालिमि, नेॅल्लदेहुलकु दा समकूर्चु, वलाबलंबुलं
गालमॅ, निक्कमंचु वलुकं दॉरकॉन्नटु लॉप्पुचुन् शरत्-
कालमुनंदु हंसलरुतंबुलु, वीनुलविंदुवेॅट्टि, सु-
श्रीललितंबु लय्यॅ, बरुषीकृत-बर्हिकलस्वरंबुगान्.

राजमरालबृंद-मृदुरम्य-मनोहर-मंजुकूजित-
श्रीजितकंठरावमयि, चोॅदिन ईसुनजोसि पोलु दा
नाजि, वेॅसं दनूरुहमु लब्धि राल्चु कॉनेॅन् शिखंडभृं-
द्राजु सहिंपरानिदि गदा परपक्षपराभवं बॉगिन् ?

मतियोॅककानलो बहुलराग-जपाधररम्य-मैन सं-
ततवनराजि राजवदनामुख-भागमुनंदु सुंदरे-
क्षितमृदुविभ्रमंबु लॉलिकिंचुचु नलन नुल्लसिल्लॅ न-
मतिमगुणंबुलै विकचबाणदलावलु लॅंतयेनियुन्.

शरदवसर

समस्त रश्मियों तथा गगन की हीरक-वीथियों को बंद करके बच्चों के साथ पक्षियों के जोड़ों को घोंसलों में भेजकर जैसे पहचानना मुश्किल हो, दिशाओं को ढककर दुर्दिन घटित कर जलधरकाल (वर्षा) अनोखे ढंग से विराजने लगा है।

अंबुरुहासमित्र (सूर्य) ने निज करों से जगत् में व्याप्त नैशांधकार को, गगन-व्याप्त मेघांधकार को तथा जलजगण को ढके हुए नैद्रांधकार (नींद रूपी तम) को एक साथ मिटा डाला है। भला तेजस्वी लोकबांधवों के शत्रु कहाँ पराभव को प्राप्त नहीं होते?

(निर्दिष्ट) समय के आ पड़ने पर सब प्राणियों को घट-बढ़ दोनों समय ही देता रहता है। जैसे इस सत्य की घोषणा करते हुए शरत्काल के मराल कलकूजन कानों में मधु घोलते हुए सुनाई पड़े। उधर मयूरों के परुष केकारव श्रीहीन पड़ गए हैं।

राजहंसगण के मृदुरम्यमनोहर मंजुकूजन से पराभूत कंठध्वनि लिये शायद उसी ईर्ष्या के कारण मयूराधीश जल-भुनकर अपने सारे सुंदर पंख झाड़े बैठे हैं! अहा! शत्रुकृत पराभव तो बड़ा ही असह्य होता है।

प्रत्येक वन में, अनेक लाल जपा-कुसुम-रूपी सुरम्य ओठ लिये विराजने वाली वन-श्री के चंद्र-मुख पर विकच प्रखर दल वाले बाण सुमन अपने अनुपम असित मृदु विभ्रमपूर्ण अवलोकन छलकाते रहे।

पलुचनि पेंडिरेकुलट्टु पचनिरेकुल विचि नव्वुचुन्
वलचु रजंबुलो मुनुगवारिनि येरींनि केसरंबुलं
नलुमरु दुव्वुचुं, प्रियविमानित-मानवतीमनंबुलं
दलकोनु किन्ककुन् निरसनं बसितंबु कृतार्थतं गोनेंन्

बालसरोजमित्रमृदु-बाहुलता-परिरब्धमै सरो-
लोलतरंगडोलिकललो दमि तेलेंडि पूवुदम्मि यु-
द्वेलमुदम्मुतो नरुणदीप्तुलु सिम्मु प्रियास्यबिंबमु-
न्बोलुटजेसि येव्वनिनि मुंपदु तद्‌गत-कौतुकंबुनन् ?

ऍलमिनि, शालिगोपिक तदीरितकोमलगीतनिस्वनं-
बुलु विनि वीनुलं, गनुलु मूयक मुंगल बचिपैरुप-
च्चलु दिगमानि, मैमरचि चक्कग निल्चिन कन्नेलेळ्ळ गुं-
पुल नदलिंचि ता दरुमबूनदु, पंडिन या वनंबुनन्

ऑकयेड नल्लमब्बुतेर, लुल्लसितासिलतासितम्मुलै
योकयेड देल्लमब्बुतेर लोप्प, महेन्द्र-गजेन्द्र-चर्मकं-
चुक-ललितंबुलैनटुलु शोभिलु शारददिक्तटंबुलं
ब्रकटमुगा गनुंगोन, विभासिलवो जनलोचनाब्जमुल् ?

गालिकि रेगिवच्चु नवकांचनकंजपरागमुन् शर-
त्कालसरोरुहास्य, नवुतालकु तेल्ल-सरोजलोचना-
जालमुपैनि गौतुकवशम्मुन जल्ल दलंपु गोन्नदुल्
चालुन जल्ले दा बरिमळम्मुलु सिम्मुचु दिङ्मुखम्मुलन्

प्रमद मेलर्पगा हरितपत्रमुलुन् नवपल्लवंबुलुन्
दमिगोनकूर्चि, दैवतगणंबुलु पंपिन मालवोले व्यो-
ममुन मनोहरं बयि क्षमाजनमानसमुं गरंचे न-
भमुलुग गेंपुमोमु, ललपच्चपुलुंगुलजालु मुंगलन्

पहले स्वर्ण-पटलों की-सी पीली पंखुड़ियाँ खोलकर हँसता हुआ, निज प्रेमपराग में डूबे हुए लाल केसरों को बार-बार सुलझाता हुआ, असन-सुमन प्रियतमों द्वारा मनाई गई मानिनियों के मन में खेलने वाले अमर्ष का निरसन कर बैठा! अपना नाम सार्थक बना लिया।

बाल-सरोज-मित्र (सूर्य) की मृदुबाहुलता से आलिंगिता होकर सरोवर की चंचल तरंग-डोलिकाओं में झूलने वाली कमलिनी आनंद के अतिरेक में अरुण-रश्मियाँ बिखेरने लगी। प्रियतमा के मुखबिंब-सा रहने के कारण वह किसका मन न मोह लेगी ?

पकी चाँदनी की ढेर लगाने वाली उन आश्विन की रातों में शालि गोपिका (फसल की रखवाली करने वाली) निज गान-लहरी में मगन आँखें खोले, सामने लहराने वाली रेशम-सी हरी घास को न छूते, तन-मन झले, खड़े रहने वाले हरिण-यूथों को न भगाती है और हँकारती ही।

एक तरफ (नभोदेश में) उल्लसित असिलताओं से श्वेत घन उड़ते रहे तो दूसरी ओर सफेद परदों-जैसे मेघ-सकल महेंद्र के ऐरावत की ओढ़नियों से झूलते रहे। इस प्रकम शोभायमान शरत्कालीन दिगंचल को देखकर किसके नेत्र-कमल न खिल उठेंगे ?

पवन-झकोरों में उड़ने वाले नव-स्वर्ण-कमल-रज (देखने पर ऐसा लगता था मानो) शरत्काल सरोजमुखी हँसी खेल में समस्त सरोज-नेत्र-समूह पर कौतुकवश पद्मपराग छिड़क देना चाह रही हो! उन सौरभ-राशियों से सभी दिशामुख ढक चले।

देवों ने हरे पत्तों तथा नवपल्लवों की सुंदर मालाएँ गूँथकर प्रेम से भेजी हो, ऐसी लाल चोंच तथा हरे शरीर वाली चिड़ियों की पंक्तियाँ पृथ्वी-जन-मानस मोहती हुई गगन की शोभा बढ़ाने लगीं।

क्रालि मनोज्ञकाशनिकरंबुलतो गनुपंडुवौ शर-
त्कालमुनं दखंड-धन-काम-सुखोदयपूर्णसिद्धिकै
कालमु नाशतो निलिचि कांचिन नेय्युनि गूडि नाटि कु-
ल्लोलमहासुखांबुनिधिलो नोक कामिनि तेले दिव्ययै

मृदुरसमान-सारस-समृद्ध-शरत्समयोत्सवंबुनन्
मुदितल गुब्बमिट्टचनुमुद्दल जिंदिन स्वेदबिंदुवुल्
पोदलुचु म्रोत्तमुत्तियपुनूसलदंडलुवोले गूर्प वे-
यदनुन सौरतोत्सव-सुखानुभवम्मुनकुन् निरोधमुन्

विनि कलहंसकामिनुल विस्तृतकाकुरुतम्मु वीनुलन्
मनसिजसन्निभुं डायिन मालिमि-नेय्युनिपैनि म्रेमुडिन्
मुनिगिन ये मेलंत मुनुमुन्नुग वानिनि गूडि ये विमो-
हन-रसलील देल, दनयं बलयिंपदु वानि म्रोडयै !

गट्टि लक्ष्मीनरसिंह शास्त्री

मनोहर पुष्पित काशवनों से लदकर, दर्शकों के नेत्रों को प्रीतिभोज प्रस्तुत करने वाले शरत्काल में चिरकाल अखंडकामसुखोदय पूर्ण सिद्धि की प्रतीक्षा में बैठी कोई प्रवीण कामिनी प्रियागमन पुलकित हो, उह्लोलित महासुखांबुनिधि में डूबती-तिरती रही !

मृदुमकरंदभरे अरविंदों से समृद्ध शरत्समय के मधुमय क्षणों में मुदिता जन के पीन पयोधरों पर झलकने वाले श्रमजल-कण नये मोतियों की मालाओं से झूलकर भी, सुरतोत्सव-जनित सुखानुभूति में बाधक नहीं बनते हैं।

(इस शरदवसर में) कल-हंसिनियों के कलकाकुलतों के कर्णविवरों में पड़ने पर और कामदेव जैसे प्रियतम के साथ रहने पर कौन ऐसी रमणी होगी जो कि आनन्द-सरसी में ऊभ चूभकर प्रेमी को थका न डालेगी ?

गड्टि लक्ष्मीनरसिंह शास्त्री

द्वैराज्यमु

सनत्कुमारुडु

अलसिन ओळ्ळु नीरवमु लैन कुलायमु लापतत्पला-
श-लुलन-घूर्णित-प्रचुरशैशिरवायुवुलै, हिमागमा-
कुलवनवीथु लोप्प गरकु-जेरतुम्मल संजनीडलन्
बलिकेडु नूरु बिच्चुकलु पाटलुगा ज़लिरेनि कीरुतुल् ।

आकुरालिन ओडुल नाकसम्मु
जूपु हेमन्तमे सुमुक्षुवुल ऋतुवु
पाय विच्चिन येटितिप्पल समाधि
परल पदधूळि दलदालिच प्रलुकुगतुमु !

विरहित-गम्यमौ विषयवृत्त-पथम्मुनयंदु तृष्णयुन्,
जरयुनु दोड्डुगाग पयनं बोनरिंपगनेल आस्थिपं-
जरमुलु विश्रमिंचेडि स्मशानमुलंदु शिवारवश्रवो-
ज्वरकर-चूलिकाश्रुति पिशाचिक लाडग मृत्यु बिंचुनो ?

पुरूरवुडु

ऊर्ध्वमूल मधश्शाख मुपनिषत्तु-लंदु विनिपिंचु संसार मंदागिंचि-
नट्लु विज्ञानमुन सागि यवनिदाकु नट्टि गड्डालतबिसिकि स्वागतम्सु ।

तरुणशक्तिकि वस्तुसौंदर्यमुनकु पायरानट्टि जीवत्-प्रपंचमंदु,
चावुकैपुन ओत्त युत्साहमोसगु नलसरतिवेळ दंतक्षतार्द्र मगुचु ।
आकु रालिचिनंत नेमाये वेंटनांटि ननलेत्तु चिवुरुल नागरादु,
विषयमुल केदि गम्यमो ऋतुलु नेटितिप्पलं दंगनलकड देलिसि कोनिरि ।

द्वैराज्य

सनत्कुमार :

थकीं ठूँठें व नीरव नीड लिये प्रचण्ड व घूर्णित,
शिशिर पवन के झकोरों से व्याकुल वन-वीथिकाएँ,
हिमागम के समय भाँय-भाँय करती रहीं तीखे काँटों-
वाले बबूलों में शाम के समय गौरय्यों के झुण्ड,
चहक रहे हैं, मानो, हिम ऋतु का यशोगान कर रहे हों।

अपने ठूँठों से आसमान की तरफ संकेत करने वाला
हेमंत ही मुमुक्षु जन का ऋतु है (हे पुरूरवा)
क्षीण धार वाली नदियों के सैकत प्रदेशों पर अंकित,
समाधिनिष्ठ महानुभावों की चरण-धूलि निज शीर्ष पर,
धारण करो जीवन का फल प्राप्त करो।

गम्य (लक्ष्य) रहित तथा विषय-वृत्तियों से संकुल इस जीवन-पथ में, तृष्णा और जरा को साथी बनाये क्यों यात्रा कर रहे हो? भयंकर अस्थि-पंजरों की विश्राम-स्थली श्मशान में, श्रवण-ज्वर-कारी शिवारवों की नेपथ्य श्रुतियों तथा पिशाचिनियों के नाट्यों के बीच विहार करने वाली मृत्यु भला (तुम्हें) पसन्द आयगी।

पुरूरवा :

'ऊर्ध्वमूलमधश्शाखा' वाला संसार वृक्ष मानो
साकार हो उठा हो ऐसा विज्ञान से (विज्ञानकोश)
(मस्तिष्क से) निकलकर पृथ्वी का स्पर्श करने वाले लंबे श्मश्रु मंडित (दढ़ियल)
तपस्वी का स्वागत हो।

तरुणराग एवं वस्तुगत सौंदर्य से अभिन्न (अविभक्त) इस जीवंत जगत् में मृत्यु मादकता और नवोत्तेजना प्रदान करने वाला अनमोल पेय है अलस रति के समय आर्द्र दंतक्षत की भाँति स्पृहणीय।

पत्ते झड़ गए तो क्या हुआ? उनके पीछे-पीछे उझक-उझककर झाँकने वाले किसलयों को भला कौन रोके? विषय-वासनाओं का गम्य (लक्ष्य) क्या होता है, इस गूढ़ तत्त्व का रहस्य ऋषियों तक ने अंगनाओं के संग में रहकर जान लिया है।

उपनिषत्तुलमानवु नुद्धरिंप ऋषुलु सूपिन मार्गमुल् कृत्रिमपुलु
अपुनरुक्तचिचुंबिष नलमुकोनेंडु तरुणिकन्नुलु सुगमसत्यमु स्फुरिंचु।
चैत्रवनमंदु नन्नि वृक्षमुलु पूय, वन्नि पुलुगुलु पाडवु नटुले मेन,
जवुलु पंडवु नेंडिन-जडुल कंचु, मधुविनोदमु लेवाडु मानुकोनुनु।

पेदपरचिन शुष्कनिर्वेद कळल दापसुलु व्रासिनट्टि ग्रंथमुलकन्न,
नच्चरलतोडि गार्हस्थ्य मधिकरिंचु वारि गाथलु नम्रतत्वमु दिशिंचु।
सूक्तदर्शन-माहिम के सोगसिपोक रमणुलंदुन दम मूर्ति प्रतिफलिंप
गरगि गर्विंचु श्यावश्य-कौशिकादि रसिकऋषुलकु हृदयपूर्वकनमस्सु।

दिगुमूर्ति सीतारामस्वामी

मानव के उद्धार के लिए ऋषियों ने उपनिषदों में जो भी मार्ग बताये हैं, सब बनावटी हैं। अविरत चुंबन की आकांक्षा से तरुणोज्ज्वल तरुणियों के नेत्रांचल सत्यशोधन के सुगम पथ हैं। उनमें सत्य सदा झलकता रहता है।

चैत्रोपवन में सभी वृक्ष कुसुमित नहीं होते, सभी चिड़ियाँ भी मधु गीत नहीं अलापतीं। इसी प्रकार शुष्क कायाओं में (विरागियों में) सरस राग अंकुरित व कुसुमित नहीं होते। यह सत्य जानकर भी मधु-विनोदों से, कौन पुरुषार्थी मानव, मुँह मोड़ बैठेगा? जीवन-लाभ से हाथ धो बैठेगा।

रस दरिद्र व निर्वेद कला के पारंगत तपस्वियों के रचे उन ग्रंथों से, अप्सरियों के साथ घर-गिरस्ती चलाने वाले मनीषियों की गाथाएँ कहीं अधिक उपदेशप्रद हैं। उनमें भली-भाँति नग्नतत्त्व का प्रतिपादन हो पड़ा है।

केवल सूक्त तथा दर्शनों की महिमा पर ही निछावर न होकर रमणी जन में भी अपनी मूर्तियाँ प्रतिष्ठित करके, उस आनंद में गलकर गर्व करने वाले श्यावस्त्र, कौशिक वगैरह रसिक ऋषियों का मैं हृदयपूर्वक नमन करता हूँ।

दिगुमर्ति सीतारामस्वामी

मणि-दीपिका

तॊलिरॆलुपूल जल्लुलयि तीयनि नी करुणा-वियन्नदी-
जलपरिवाहमै विशद-शारद-कौमुदि-नीलसांध्यवे-
ळल मॆरयिंचिनन्त कनुलन् दरलाश्रुवु लॊल्क संभ्रमो-
च्चलित मॆडंद नी पदादिशं बयनिंचॆ महोमराळमै ।

नाकनुलं जॆलंगुचु ननारत मी शरदिंदुशुभ्ररे-
खाक्षतु लॊवकरूपयि हृदंतरपीठिकपै नॊनर्चॆ मु-
क्ताकमनीयसुस्मितविकस्वरमुन् लसदिंद्रचापशो-
भाकरमौलितावकमहश्शिवमूर्ति वॆलिंगि निंडगन् ।

अहरहसुं ब्रफुल्लदळमै स्थिरमै भवदीयवेदना-
दहन-हिरण्यतामरसदामसु नी पदधाम मंदुको
दहतह मुस्मरिंप नरुतं गयिसेयुदुवम्म विस्मया-
वहमुलु नीदु कान्कलु, कृपानमिताभयहस्तगुप्तमुल् ।

नी दय तप्पॆनेनि यवनिंगल भाग्यमुलॆल्ल कॊल्ललै
पो दरिजेर्चि, मेमरचिपोवग जेतुवु, जालिगॊन्नचो,
नी दुरदृष्टकंटक-सुमावलि मालिकगूर्चि, संभृता-
द्रादरवै प्रपन्नजनतालकलं घटियिंतु कान्कगन् ।

पदलाक्षारुणिमल् चॆलंग विनमद्वर्षाभ्रनीला ! दुरा-
पदलन् ग्रीलिन पॆदगुंडियल जृंभद्रक्तधारा-दिशा-
पदविन् नी वरुदॆंचि वत्सलत नापन्नक्षतालिन् क्षमा-
मृदुबाष्पावळि जार नद्दॆदवु नॆम्मि, गाढकाश्मीरमुल् ।

मणि दीपिका

श्वेत काश-कुसुमों की बौछार व स्वर्गंगा की स्वच्छ
तरंगिणी बनी तुम्हारी मधुर करुणा, नील सान्ध्य-
गगन में विशद शारदी-कौमुदी को जब खिला
देती है तब (हे माते) मेरा यह मन तरल मोती
नेत्रों में महा मराल बन तुम्हारी चरण-दिशा में ससंभ्रम उड़ पड़ता है।

लगातार मेरे नेत्रों में विहार करने वाली इन शुभ्र शरच्चन्द्र
रेखाओं ने एकरूप बन, मेरे हृदय-मन्दिर में मुक्ताकमनीय
सुस्मित विकस्वरा तथा इन्द्रचाप शोभाकर मौलिशोभिता
तुम्हारी महद्दिशवमूर्ति प्रतिष्ठित करा दी है। उसीकी
ज्योति से मेरे बाह्यान्तर भर गए हैं।

हे अम्बे! सदैव प्रफुल्लदलवाला स्थिर तथा तुम्हारी (करुणा के
अभाव जनित) वेदना-ज्वालाओं में संतप्त यह मेरा मन-रूपी
हेम तामरसदाम, तुम्हारे चरण धाम को प्राप्त होने को तरस उठता है।
तो तत्काल तुम उसे स्वीकार करती हो। कृपानमित अभयहस्त में छिपे
ऐसे तुम्हारे उपहार तो अत्यन्त विस्मयकारी हैं।

हे जननी, तुम्हारी कृपा जिधर नहीं रहती है
उधर सभी लौकिक सम्पत्तियाँ जुटाकर लोगों को आत्मविस्मृत
और उन्मत्त बना देती हो, किन्तु जिस पर तुम्हारी
आर्द्र व सादर दृष्टि जाती है, उस प्रपन्न जन की अलकों
पर अभाग्य कंटक सुमन-माला अपने हाथ से उपहार के रूप में पहना देती हो।

हे विनमद्वर्षाभ्रनीले! भयंकर विपदावातों से विदीर्ण
दीन-हीन हृदयों से छूटने वाली रक्तधाराओं से
खिंचकर तुम निज लाक्षारुण चरण धरती हुई आ जाती हो।
और उन विपन्न जनों के घावों पर अपने वात्सल्य का लेप
लगाकर उनके बाष्प-मृदुता से पोंछ लेती हो। तुम्हारी इस
दया-जनित सुख-शीतलता के सामने काश्मीर का हैम-शैतल्य झूठा है।

आरतुलै समुन्नतनभोंगणतारक लंदलेनि मं-
दारयुगम्मु नीमृदुपदद्वयि वॅल्गुनु तलि, दुःखपू-
रारुणनेत्रुलै, श्रमभरानतुलै, हतभाग्यदीपिकां-
कूरलु नैन दीनुल विकुंचितजीर्णकुटिन् प्रभातमै ।

कवनवनान शाश्वतसुगंधमनोज्ञमु लाद्रभावना-
नवनव-मंजरी-दळविनम्रसुमम्मुलु दोयिलिंचि यैं-
दव-मणि-पीठि गॉल्वयि सदावरदानतपाणिवैन नी
भवनकवींद्रवैभवशुभम्मुल मिंचॅनटंचु बॉगॅदन् ।

पि. गणपति शास्त्री

हे अम्बे, तुम्हारी मृदुचरणद्वयी वह मन्दार सुमन-
युगल है, जिन तक समुन्नत गगन-प्रांगण में निरन्तर
आरतियाँ उतारकर भी, तारिकागण नहीं पहुँच पाता।
किन्तु उन्हीं चरणों की (नख-)ज्योति
दुःखपूर्ण अरुण नेत्र वाले, श्रमभारानत, तथा हतभाग्य
दीपिकांकुर दीन-जनों की जीर्ण कुटियों के लिए
प्रभात का काम देती है।

हे माँ! मैं तो अपने भाग्य पर फूला नहीं समाता
हूँ कि मैं कवितोद्यान से शाश्वत, सुगंधित, मनोज्ञ
तथा आर्द्रभावना-नवनव-मंजरीदल-विनम्र-सुवर्ण-सुमन
चुनकर, चन्द्र-कान्त मणिपीठिका पर समासीन तुम वरदानतपाणी
के चरणों पर चढ़ा पाता हूँ
तुम्हारे दरबार का कवि कहलाने का सौभाग्य प्राप्त कर
सका हूँ।

पि. गणपति शास्त्री

ब्रदुकुबाट

अड्डु गड्डगु नन्दु मॉलुचु निराश वेंट
आश यॉकटि मृगतृष्ण यगुचु निलुचु
कष्टसुखमुलु पड्डगु-पेकलुग जेसि
ब्रदुकु नेयु ने देवता-वस्त्रमुलनॉ ?

येमियु लेनिचोट नॉकयिम्मुन चक्कनितीव नाटि, त-
त्कोमलवल्लि गॅजिवुरु गूरिचि तिय्यनि मॉग्ग दीर्चि पै
नामनि दॅचि, क्रॉनुवुल नंदमु लार्चुनु नाश, अंतटन्
सामजमद्दुलु वचि चरणाहति गूल्चु निराश नव्वुचुन् .

उलिपिरिसूत्र मूडि तॅगि युन्नतमेघपथालु दाटि, क्रॉ-
म्मिलमिळ्ळाडि तत्परनिमेषमुनन् सुडिगालि दूलि चि-
न्गुल दिगजारि, कोनलनॉ कॉम्मलनो तुरियाडि याडि पे-
रलमट जॅंदु गालिपट मय्यॅनु जीवित मुज्झितार्थमै ।

अंदिनपंड्डलॉ ममत लंटक चिट्टचिटारु कॉम्मने
यंदनि वन्दुको तलपुलाडु नहो ! तुदकंदनीदु नि-
ष्पंदसुखानुभूति कनुपट्टक पालकु रायि मोयुचुन्
वंदुरुचुन्न ई ब्रदुकुबाटकु पाटकु ने मुगिंपुलो ?

तीयनितॅनॅलो मॅदिपि तीसिन चेदुविषम्मु क्रिंगि यो-
हो यनि मॅच्चि पैरुचुल, कुञ्चु विषाग्नुल कोडि, शीतल-
च्छायल कंगलार्चॅद दॅसल् परिकिंचॅदगाक दर्शितो-
पायुलु पूर्वयात्रिकुल भारपदांकमु लॅंदु जूचिनन् ।

जीवन-पथ

पग-पग पर उगने वाली निराशा के पीछे
मृग मरीचिका बन आशा उठ खड़ी होती है।
कष्ट सुख के ताने-बाने से यह जीवन
जाने कौन देवता वस्त्र[1] बुन लेता है।
शून्य में कोई एक सुन्दर बेल लगाकर उसमें नन्हें चिकने
लाल-लाल पल्लव व कलियाँ जोड़ देती है आशा
उसे वासन्ती नव-कुसमों से सजा जाती है। फिर (दूसरी
तरफ से) हँसती हुई निराशा मस्त हाथी की चाल से
आ जाती है और उसे पैरों तले कुचल जाती है।
कच्चे पतले धागे के टूट जाने पर, ऊँचे मेघ-मंडल को
पार करके (सूर्य की रोशनी में) अपनी जगमगाहट
दिखा फिर दूसरे ही क्षण जोर के बगूले के चक्कर
में फँसकर, तार-तार हो किसी पेड़ की शाखा अथवा
पहाड़ की चोटी पर अटके रहने वाले पतंग की भाँति
मेरा यह जीवन निरर्थक बन गया है।
अहा! (मेरे) विचार पकड़ाई में आने वाले फलों
का स्पर्श न करके कहीं दूर बड़ी ऊँची शाखा पर लगे
फल के लिए बाँह पसार रहे हैं। परिणाम-स्वरूप
दोनों तरफ से निराश होकर दूध के लिए पत्थर ढोने वाले ऐसे
जीवन पथ तथा गान की समाप्ति जाने कैसे होगी?
मीठे शहद में पुते कड़ुए विष को निगलकर पहले
मारे खुशी के फूल उठा हूँ फिर धीरे-धीरे (उदरस्थ)
विष की लपटों से झुलसकर शीतल छाया के लिए
छटपटा रहा हूँ, जब कि विश्व की तथा बुद्धिमान
पूर्व-यात्रियों के स्फुट व स्पष्ट चरण-चिह्न चारों तरफ
बिखर पड़े हैं। (कैसी विडम्बना है!)

---

१ खरगोश के सींग और गगन कुसुम की भाँति वह वस्तु जिसका अस्तित्व नाम भर का रहता है, आंध्र में 'देवता-वस्त्र' कहलाता है।

चेरुव नुन्न तीरमुनु चीकटिलो पसिकट्टलेक ये-
दूरपुकोंड-कॉम्मुननों दोचिसु-दोचनि वॅल्गुरेककै
यारटमन्दु नाविकुनि यड्डुलु ना येदनुन्न शान्तिने
यारयलेक यूरक दिगन्तरमुल् परिकिन्तु वॅरि नै ।

अदिगॉ आदि पूलबाट लोयलकु जेर्चु
निदिगॉ इदि मुंड्लत्रोव पैचदल कॅत्तु
ननुचु चूपिन प्रथमप्रयास किष्ट-
पड्दु ग्रदु केमनंदुनो प्रभु, वाचिंपु ?

बोंड्डु बापिराजु

अंधकार-वश समीपवर्ती तट को न देखकर दूर
आसमान में किसी पहाड़ी चोटी पर टिमटिमाने वाली
प्रकाश-रेखा के लिए तरसने वाले नाविक की भाँति मैं
अपने ही हृदयगत शान्ति का पता न पाकर पागल
की तरह दसों दिशाओं का चक्कर लगा रहा हूँ।

देखो, वह सुमन पथ घाटियों में ले जाने वाला है
और लो, यह कंटक मार्ग गगन वीथियों में
उठाने वाला है। इस स्पष्ट निर्देश को पाकर
भी मेरा जीवन श्रम से जी चुरा लेता, है, प्रभु !

बोड्डु बापिराजु

परिणति

अनुमानमु

वेलुगुचुन्नवि नीलाभ्रवीथिलोन
ऊह कन्दनिदूराल, नुडुगणालु
ग्रहवितानमु लेंडद संभ्रमसु गल्गु
हेतुरहितम्मों ई चित्रसृष्टि येल?

अणुवुलो परमाणुवु, अंदु मरल
परम-परमाणुवुलु परिभ्रमण सेयु
स्वीयनिर्णीतपथमुल चित्रगतुल
ये महाशक्ति सृजियिंचे निंत विंत?

ई मधु-शुभ्रयामिनुल नी विलसद्गगनम्मु तारका-
धाममु जूचुनप्पु डेंडदन् गदियिंचेडु संदियं बोकं
डी महितादभुतम्मुल सृजिंचिन शक्ति कणुप्रमाणमौ
भूमि वसिंचु मानवुनि मोदमु भेदमु लेक्कलोनिवा?

आ नीरंध्र-वियत्पथम्मुन अनंताकर्षणोद्वेलता-
दीनंबै भ्रमियिंचुचुन्न ग्रहपंक्तिन् गोळ मोंडिनि स्व-
स्थानभ्रंशमु पोंदेना, धर समस्त म्मोक्क मूर्तम्मुलो
नानाच्छिद्रमुलै नशिंचु, स्थिरमा ना तृप्त्यतृप्तिस्थितुल्?

अहंभावमु

आ महाग्रहराशि नवलोकनमु सेसि ना चित्तियेडद दैन्यंबु नोंद
नालोनि परमाणु पाळिनि गनुगोग नामहामेधये नव्वुकोनुनु

परिणति

शंका

नील गगन-वीथी में अहा की पहुँच के लिए भी
बाहर सुदूर उडुगण व ग्रह-समूह चमक रहे हैं।
(यह देख) हृदय चकित रह जाता है। क्या यह
सारी विचित्र सृष्टि हेतु-रहित है?

अणु के भीतर परमाणु फिर उसके गर्भ में
परम परमाणु अपने-अपने निश्चित पथों में परिभ्रमण
कर रहे हैं विचित्र गतियों में। किस महासत्ता ने इस आश्चर्य का
सृजन किया है?

इन वासन्ती शुभ्र यामिनियों तथा उल्लसित
तारिकाधाम गगन की ओर दृष्टि जाती है तो
मन में एक शंका उठ खड़ी होती है। इतने महान्
आश्चर्यों की सृष्टि करने वाली सत्ता की दृष्टि में
अणु-जैसी पृथ्वी पर निवास करने वाले मानव के मोद व
खेद का भी कोई मूल्य रहता है?

उस नीरन्ध्र वियत्पथ में अनन्ताकर्षणोद्वेलता
के वशीभूत होकर भ्रमण करने वाली ग्रह-पंक्ति में से
यदि एक गोल भी अपनी जगह से इधर हुआ तो फिर पलक
मारते यह सारी धरा क्षत-विक्षत होकर
नष्ट हो जायगी। फिर भला मेरी तृप्ति व अतृप्ति कब
स्थिर रह पायेगी?

अहं भाव

उस अनन्त ग्रहमंडल का अवलोकन करने पर
मेरा लघु हृदय बैठने लगता है, तो दूसरे ही क्षण
(अपनी इस कातरता पर) परमाणु-शक्ति का पता लगाने
वाली मेरी मेधा हँस देती है। उस

आ क्षीरजलधि अव्यक्तप्रकाशमु गनि ना येडद लज्ज मुणिगि पोवु
मद्देह-विलसित-महित विद्युज्ज्योळकांति ना कनुलॉल्कु गर्वदीप्ति
तरणि कॅन्नितंलो अगु तरळशोण-तार नार्द्रनु गनि ना हृदयमु मुकुळ
मैन, ना कालिक्रिंद नल्गाडिपोवु, ई पिपीलिक जूचि संतृप्ति नाकु.

उंडवच्चुनु गाक ब्रह्मांडमुलगु गोळमुलुनु नवग्रहकूटमुलुनु
भौतिकमुग नल्पुडनें कावच्चु गानि ज्ञानतेजंपुकलिमिनि नेन मिन्न.

ई समस्तसृष्टि निंतदाकनु परि-शोध चेसि दीनि शोभ दॅलिय-
जालु शक्ति यॊक्क नालोनि मेदडुके साध्यमय्ये नी विशालजगति ।

अंजलि

अंचुलु कानरानि जगमंतकु तंड्रिवि नीवुगा प्रसा-
दिंचिन ज्ञानतेजमुनने गद मानवु डिंत यय्ये त्व-
च्चंचलनेत्रदीप-विलसत्तरुणप्रभचिंददेनि कन्-
पिंचुनॅ वॅल्गुरेक ? ऒकटे तम मॆल्लड गप्पिवेयदे ।

नीवॊक कुम्मरि वस्मज्जीवन-मृण्मयघटम्मु सृजियिंचिति वी-
वे विषमॊ, अमृतमो, मरि नी वैलास्यम्मो दीन निंपुसु तंड्री

क्षीर-जलधि (आकाश गंगा) का अद्भुत प्रकाश विलोक
कर मेरा मन लज्जा में डूब जाता है तो तुरत मेरे
घर का भास्वर विद्युत् प्रकाश मेरे नेत्रों को गर्व से
चमका देता है। तरणि-बिम्ब से कितने ही गुना तरल
व लाल आर्द्रा तारिका पर दृष्टि पड़ने पर मेरा
हृदय मुकुलित हो जाता है, तो दूसरे ही क्षण अपने
पाँव तले कुचले जाकर तड़पने वाली चींटी को
देखकर मेरा मन संतोष की साँस लेता है।
(विश्व में) कितने ही ब्रह्मांड गोल हो सकते हैं,
कितने ही नवग्रह-मंडल रह सकते हैं
भौतिक दृष्टि से भले ही मैं तुच्छ
बना रहूँ किन्तु फिर भी ज्ञान-प्रकाश की संपत्ति में तो
मैं ही सर्वोपरि सर्वश्रेष्ठ हूँ। अब तक इस अनन्त
विशाल सृष्टि का परीक्षण करके उसकी शोभा
का ज्ञान प्राप्त कर चुका हूँ तो यह एक-मात्र
मेरे ही मस्तिष्क के लिए संभव था।

आत्म-समर्पण

इस जगत्, जिसका कि कोई ओर-छोर नहीं
दीखता, के पिता, तुम्ही हो, तुम्हारे प्रदत्त ज्ञान के प्रताप
से ही न आज मानव इतना (बड़ा) बना है। तुम्हारे
चंचल नेत्र दीप में शोभित होने वाले तरुण प्रकाश की
छींट (इधर) न पड़ती तो भला आलोक-रेखा की झाँकी
तक (हमें) मिलेगी? नीरन्ध्र निविड अन्धकार सारे
विश्व को न निगल जाता?

पिता! तुम हो एक कुम्हार और मेरा यह जीवन एक
मिट्टी का घड़ा। इसे बनाया तो तुम्हींने! अब इसमें
अमृत भरोगे या विष, यह तुम जानो अथवा तुम्हारी
लीला।

आकाशम्मुल निर्विचारमुग निद्रावस्थ गन्मूयवे
काकम्मुल्? चरियिंचुंगादे कुजशाखावक्रमार्गम्मुलन्
चीकुंजितयु लेनिचंदमुन ना चीमल्? भयं बेल ना
काकाशाब्धि-धरानिलानल-परिव्यप्तात्म नी वुंडगा?

ना देसुन्नदि तंड्रि नी अड्गुजंटन् नम्मि आ नीडने।
नादारिन् वेदुकाड्कोंदुनु महानन्दाबुधिं देलिनन्
स्वेदांभोनिधि मुन्गिनन् सतमु नी केल्ले गदा यूतयौ
ने दीनुंडनु दाचुको गदे प्रभू, नी चल्लनौ कन्नुलन्।

भट्टिप्रोलु कृष्णमूर्ति

चंचल शाखाओं पर निश्चिंत होकर कौए सोया
नहीं करते। वृक्ष-शाखाओं की टेढ़ी-मेढ़ी सड़कों पर
तुच्छ चींटियाँ चिन्ता तजकर विहार नहीं करतीं. तव
हे आकाशाब्धि धरानिलानल परिव्याप्तात्म प्रभु
तुम्हारे रहते मैं डर किससे मानूँ?

हे परम पिता! यहाँ मेरा अपना है ही क्या?
तुम्हारे चरण-युगल मन में रख उन्हींका अनुसरण करता
हुआ अपना मार्ग प्रशस्त बना लूँगा। (इस यात्रा में) यदि
मैं आनन्दसिन्धु की तरंगों पर तिर गया तो तुम्हारी ही
बाँह के सहारे, अथवा विषाद सागर में डूब गया तो
तब भी तुम्हारा ही करावलम्बन पाकर। प्रभु
मैं नितान्त दीन हूँ सो अपनी शीतल दृष्टि की ओट में
छिपा लेना।

मल्लिप्रोलु कृष्णमूर्ति

अमृतकेतकि

ऍन्नि नाळ्ळकु वच्चॆ नी हृदय बंध-
न-प्रवास-शिक्षा-मोचनंबु नाकु !
ऍन्नि युगमुलु तल्लि त्वत्सन्निधान-
परमभाग्य-विलुप्ति-शापंबु नाकु !

ऍंत कृशिंचि पोयितिनि इट्टिनिराहृति प्राणवल्लिका-
क्रंतनतीव्रमै यॆडद गीचिन रापिडि नॆ चलिंचि, शा-
पांतमु नॆ डिटुल् पिलिचिनट्टुल वच्चिन शर्वरीसमा-
क्रांत-तमोगुळुच्छ-विसरंबुलु जारॆ नुषस्सुहासिनी ।

ना यॆदलोन पंडिन सनातन-धर्म-मरीचि निन्नु का-
त्यायनिगा मलंचुकॊन तल्लि, मदीय-निरंतर-स्मृति-
ध्येयमु त्वत्पदांबुरुह-दिव्यनखांकुर-रक्तदीप्ति-कों-
पायत-नेत्रगोळ-मसृणांचलरेख निटुल् रगिल्चितो ।

चीलिन नादुगुंडॆ परिशीर्णवनांतरवीथि ग्रुंगि जी-
वालय-सुप्तकोणतति नंटु स्मृतिव्यथ लाक्रमिंप शं-
पाललिताभमूर्ति इटु पर्विन भावतरंग मॊंडु बा-
धालुलितंबुनन् प्रतिहितं बॊनरिंचॆ पदेंड्लु सागिनन् ।

ललित-मरुद्विधूत-विकलद्युतिसंगत-मेघ-मालिका-
चलितशशांकमुग्धरुचि चाड्पुन कोपनतावकृष्टमै,
पॊलचिन बुद्धिना मिसिमिपोवनि नव्वु कलंगि भंगमै
तलपु प्रसिंचॆनेमो चकित-भ्रुकुटी-परिक्लस-रेखयै,

हेलाकल्पन-कृष्णमेघ-भयदाहि-स्पृष्ट-वर्षानिभः-
खेलामीलत लागि नॆ डखिलदिक्सीमा-परिव्यासमा-
लालीलामृदुचंद्रमःप्रभलु वालुभ्यानुरूपंबुलै,
पालिंचॆन् परिवृत्त-कोपमति शर्वाणीशिरःकेतकी ।

साल्व कृष्णमूर्ति

अमृत केतकी

देवी, कितने दिन के अनंतर हृदय-द्वार के बंधन खुले हैं, और मुझ प्रवासी के कठोर दंड की अवधि समाप्त हुई है। तुम्हारे चरणोपांत वास करने के सौभाग्य से वंचित मुझ अभागे को, कितने युग तक वह शाप भोगना पड़ा है!

इतने निरादर के कारण मैं कितना कृश बन गया हूँ। प्राण वल्लरीकृन्तन जैसी भयानक व्यथा से हृदय विचलित हो उठा था। तब हे उषस्सुहासिनी, आज सहसा जैसे किसी का बुलावा पाकर शापमोचन आ गया है और लो, शर्वरी को चारों तरफ से घेरे हुए अंधकार-पुंज (तमोगुलुच्छ) झड़ पड़े हैं।

माते! मेरे हृदय में पकी सनातन धर्म मरीची ने तुम्हारी कल्पना कात्यायनी के रूप में कर ली है। तुम्हारे पदकमल के अलक्त-रंजित दिव्य नखांकुर मेरे निरंतर स्मरण के लक्ष्य रहे। किन्तु तुमने क्या अपने करुणावदात नेत्रों को, निज पदनखों की रक्त दीप्ति से (क्रोधरूक्षित) क्रोधारुण बना लिया है?

हे शंपाललिताभमूर्ति मेरा विदीर्ण शीर्ण-हृदय भीतर-ही-भीतर धँस चला तो स्मृति-व्यथाएँ उसे चारों ओर से घेरे रहीं। इस प्रकार फैली हुई भावलहरी मुझे दस वर्ष तक आहत बनाए रही।

ललित पवन से उड़ाये जाकर विशकल बनी मेघमाला के द्वारा विचलित शोभा को प्राप्त चंद्रमा की भाँति क्रोधाविल बनी तुम्हारी बुद्धि से, तुम्हारी चिकनी हासरेखा विकल एवं चकित भ्रुकटी परिवृता बनी है। लगता है उसने स्वस्थ सूझ और विचार को निगल लिया हो।

हे शान्त चित्त वाली शर्वाणीशिर केतकी, आज हेलाकल्पित कृष्ण-जलद रूपी भयानक सर्पों के संचार से वर्षानभ को संक्षुभित बनाने वाले वे सारे खेल समाप्त हो चले हैं। दिग्दिगंतर में, पवित्र वाछभ्य के प्रतीक चन्द्रमा की शीतल सौम्य रश्मिमालिकाएँ परिव्याप्त होकर, समस्त विश्व का परिपोषण कर रही हैं। विश्व-कल्याण की शुभ घड़ियाँ निकट आ चली हैं।

साल्व कृष्णमूर्ति

जलद गीति

सागुमा ओ नीलमेघमा ।
गगनवीणा-मृदुलरागमा ।
बीटबारिन चेल्ल पीयूषमुलु राल
गरिकलेनि पोलाल मरकतम्मुलु देल,
सागुमा ओ नीलमेघमा ।

नेमलिपादाल किंकिणुलु घल्लुन म्रोय ।
म्रियुरालि वलपु-मल्लियलु जिल्लुन पूय ।
सागुमा ओ नीलमेघमा ।

कविराजु निनु जूचि नवनीत मैपोव
नवनीत मैपोव नवगीतमै लेव
सागुमा ओ नीलमेघमा ।

निनु जूचि विरहिणुलु निट्टूरपुलु निंप
निट्टूरपुलु निंप निलुवेल्ल पुलकिंप
सागुमा ओ नीलमेघमा ।
गुंडे लोतुल पादुकोन्न पातदनालु
नी पदम्मुलु ताकि नीरु नीरै पोव
सागुमा ओ नीलमेघमा,
गगनवीणा-मृदुलरागमा ।

सि. नारायण रेड्डि

जलद गीत

चल, बढ़ चल, अरे नील मेघ,
नभवीणा के नव मृदुल राग,
फटी दरारों वाले खेतों में पीयूष बहाकर,
हरी घास से शून्य मड़ैयों में मरकत बरसाकर ।

चल, बढ़ चल, अरे नील मेघ,
नभ वीणा के नव मृदुल राग ।
वन मयूरगण पदकिंकिणियों को संगीत पिलाते,
प्रिया प्रेम लतिका में नवमल्लियाँ असंख्य खिलाते,

चल, बढ़ चल, अरे नीलमेघ ।
देख तुझे विरहिणियाँ लंबी-लंबी आहें भर लें,
लंबी आहें भर लें निज तन पुलकों से भर लें ।

चल, बढ़ चल, अरे नील मेघ ।
दिल की गहराई में जमी पुरातनताएँ सारी,
तेरे पद छूकर पानी-पानी हो जावें भारी,
चल, बढ़ चल, अरे नील मेघ,
नभ वीणा के नव मृदुल राग ।

सि. नारायण रॆड्डी

पं जा बी

चयन : पंजाबी सलाहकारी समिति

अनुवाद : देवेन्द्र सत्यार्थी

कवि-नाम	कविता
अमृता प्रीतम	माया
तेरासिंह चन्न	भगतसिंह का वीरगान
देवेन्द्र सत्यार्थी	मैं अपनी आत्मकथा लिखूँ
प्यारासिंह सहराई	ओ दोस्त
प्रभजोत कौर	कठपुतलियों का खेल साजन
बलबीरसिंह	एक ख्याल तेरा
बाबा बलवन्त	समाजवाद
मोहनसिंह	प्रतीक्षा
भाई वीरसिंह	मैं स्वयं उनके द्वार पर जाता हूँ
सन्तोखसिंह धीर	उषा के उपहार

माया

(प्रसिद्ध चित्रकार विनसैण्ट वैन गॉग दी कल्पित प्रेमिका माया नूँ)

परीए नी परीए !
हूराँ शाहज़ादीए !
गोरीए विनसैन्ट दीए,
सच्च क्यों बणदी नहीं ?

हुसन काहदा, इश्क़ काहदा,
तूँ कही अभिसारिका ?
आपणे किसे महिबूब दी,
आवाज़ तूँ सुणदी नहीं।

दिल दे अन्दर चिणग पा के,
साह जदों लैंदा कोई,
सुलगदे अंगियार कितने,
तूँ कदे गिणदी नहीं।

काहदा हुनर काहदी कला,
तरला है इक एह जीऊण दा,
सागर तखईयुल दा कदे,
तूँ कदे मिणदी नहीं।

परीए नी परीए,
हूराँ शाहज़ादीए,
खिआल तेरा पार ना
उरवार देंदा है।

रोज़ सूरज ढूँढदा है,
मूँह किते दिसदा नहीं,
मूँह तेरा जो रात नूँ,
इकरार देंदा है।

माया

(प्रसिद्ध चित्रकार विन्सैण्ट वैन गॉग की कल्पित प्रेमिका माया के प्रति)

परी, ओ री परी !
ओ री हूरों की शाहज़ादी !
ओ री विन्सेण्ट की प्रेयसी !
सत्य क्यों नहीं बनती ?

हुस्न कैसा, इश्क कैसा,
तू कहाँ की अभिसारिका,
अपने किसी महबूब की,
आवाज़ तू सुनती नहीं।

दिल में चिनगारी रखकर,
जब साँस लेता है कोई,
सुलग उठते कितने अंगार,
तू कभी गिनती नहीं।

कैसा हुनर, कैसी कला,
यह तो है जीने की एक लालसा।
कल्पना के सागर को
तू कभी मापती नहीं।

परी, ओ री परी !
ओ री हूरों की शाहज़ादी,
तेरी कल्पना के उस पार का,
पता चलता है, न इस पार का,

प्रतिदिन सूरज ढूँढता है,
मुँह कहीं दीखता नहीं,
मुँह तेरा जो रात को,
इकरार देता है।

तड़प किस नूँ आखदे ने,
तूँ नहीं एह जाणदी,
क्यों किसे तों ज़िन्दगी,
कोई वार देंदा है।

दोवें जहान आपणे,
लाँदा है कोई खेड ते,
हसदा है नामुराद,
ते फिर हार देंदा है।

परीए नी परीए,
हूराँ शाहज़ादीए,
लक्खाँ खिआल इसतराँ
ओणगे टुर जाणगे।

अरगवानी ज़हर तेरा,
रोज़ कोई पी लवेगा,
नकश तेरे रोज़ जादू
इसतराँ कर जाणगे।

हस्सेगी तेरी कल्पना,
तड़पेगा कोई रात भर,
सालाँ दे साल इस तराँ,
इस तराँ खुर जाणगे।

हुनर भुक्खा रोटीए,
प्यार भुक्खा गोरीए,
कितने कु तेरे वैन गाग
इस तराँ मर जाणगे।

तड़प किसे कहते हैं,
तू नहीं यह जानती,
क्यों किसी पर अपना जीवन
कोई निछावर कर देता है।

अपने दोनों लोक,
लगाता है कोई दाँव पर,
हँसता है नामुराद
और हार जाता है।

परी ओ परी,
ओ री हूरों की शाहज़ादी!
लाखों विचार इस तरह,
आयँगे, चले जायँगे।

तेरा अरग़वानी ज़हर
प्रतिदिन कोई पी लेगा,
प्रतिदिन तेरे नक्श
जादू कर जायँगे इस तरह।

हँसेगी तेरी कल्पना,
तड़पेगा कोई रात भर।
अनेक वर्ष इस तरह
इस तरह घुल जायँगे।

कला भूखी है, ओ री रोटी,
प्यार भूखा है, ओ री रूपसी!
कितने और तेरे बैन गॉग
इस तरह मर जायँगे।

परीए नी परीए,
हूराँ शाहज़ादीए,
हुसन काहदी खेड है,
इश्क जद पुगदे नही,

रात है काली बड़ी,
उमराँ किसे ने बालीयाँ,
चन्न सूरज कहे दीवे,
अजे वी जगदे नहीं।

बुत्त तेरा सोहणीए,
ते इक्क सिट्टा कणक दा,
काहदीयाँ एह धरतीयाँ,
अजे वी उगदे नहीं।

हुनर भुक्खा, रोटीए,
प्यार भुक्खा गोरीए।
काहदा है रुक्ख निज़ाम दा,
फल्ल कोई लगदे नहीं।

अमृता प्रीतम

परी, ओ री परी,
ओ री हूरों की शाहज़ादी,
हुस्न कैसा खेल है,
इश्क़ जब विजयी नहीं होते?

रात बहुत काली है,
किसी ने आयु की दीपशिखा बाली
कैसे दीपक है चाँद-सूरज,
अब भी जलते नहीं।

तेरी मूर्ति, ओ री रूपसी,
और गेंहूँ की एक बाल,
कहाँ की यह धरती,
अब भी उगती नहीं।

कला भूखी है, ओ रोटी,
प्यार भूखा है, ओ री रूपसी,
कैसा पेड़ है व्यवस्था का,
फल कोई लगते नहीं।

अमृता प्रीतम

भगतसिंह दी वार

अजे कल्लह दी गल्ल है साथीओ, कोई नहीं पुराणी,
जद जकड़ी सी परदेसीयाँ, एह हिन्द मिनाणी,
जद घर घर गोरे ज़ुल्म दी टुर पई कहाणी,
ओहने मेरे देश पंजाब दी, आ मिट्टी छाणी,
पिण्डाँ विच हुट्ट के बहि गई, गिद्धयाँ दी राणी,
गये दाणे मुक्क भड़ोलयों, घड़ियाँ चों पाणी,
दुद्ध बाझों डुसकण लग पई, कन्ध नाल मधाणी,
होई नंगी सिर तों सभ्यता, पैराँ तों वाहणी,
ओदों उट्ठिया शेर पंजाब दा, संग लै के हाणी,
ओहने ज़ुल्म जबर दे साहमणे, आ छाती ताणी,
उस किहा कंगाली देश चों, असां जड़ों मुकाणीं,
सुण ओहदीयाँ भबकाँ कम्ब गई, लहू पीणी ढाणी,
ओहनाँ एहदा दारू सोच के, इक मौत पछाणी,
ओहदी देख जवानी दगदी, फाँसी कुमलाणी,
ओदों रो रो खारे हो गये, सतलज दे पाणी।

उस सीने दे विच घुट्ट लये, चा भरे हुलारे,
ना वागाँ भैणाँ गुन्दीयाँ, न जौं ही चारे,
ना गान्ना किसे ने बन्हयाँ, न चढिया खारे,
ना सगणाँ वालीयाँ महिन्दीयाँ, कोई हत्थ शिंगारे,
ना डोली उत्तों माँ ने, उठ पाणी वारे,
जदों डुब्बिया चन्न पंजाब दा, डुब्ब गये सितारे।

जद फाँसी चुम्मी शेर ने, ओहदे बुल्ह मुसकाये,
ओहदे नैणाँ अन्दर देश दे, सुपने लहिराये,
ओहदे सीने विच्यों उठ पये, अरमान दबाये,
ओह चुप्प चुपीते ओहदियाँ बुल्हाँ ते आये,

भगतसिंह का वीरगान

कल की ही तो बात साथियो, नहीं बहुत पुरानी,
जब फिरंगियों ने भारत को जकड़ लिया था,
जब घर-घर चल पड़ी फिरंगी की अन्याय-कहानी,
उसने मेरे पंजाब की थी माटी छानी,
बैठ गई थक हार जब गिद्धों[1] की रानी।
चुक गया अनाज बखार में, चुक गया घड़ों में पानी,
दूध बिना सिसकने लगी दीवार सहारे धरी मथानी।
हुई सभ्यता सिर से नंगी, पैरों से नंगी,
तब दल-बल के साथ उठा पंजाब का सेनानी,
जुल्म-जब्र के सम्मुख आकर छाती तानी।
बोला, हम जड़ से मिटायँगे निर्धनता अपने देश की,
उसकी वाणी सुनकर काँपी रक्त-पान करने वालों की मंडली।
सोच उपाय इसका उन्होंने एक मौत पहचानी,
लखकर जलती जवानी उसकी, मुरझाई फाँसी,
रो-रोकर खारी हुआ सतलज का पानी।

सीने ही में उसने दबाईं चाव-भरी उमंगें।
न बहनों ने बागें गूँथीं, न जौ चारे।
न किसी ने कँगना बाँधा, न बैठे खारे पर चढ़कर,
न मंगल-सूचक मेंहदी से हाथ किसी ने रँगे तुम्हारे,
न माँ ने डोली के ऊपर से जल वारा,
जब अस्त हुआ पंजाब का चाँद, अस्त हो गए तारे।

जब सिंह ने फाँसी को चूमा, होंठ मुस्काये,
उसके नयनों में जन्मभूमि के सपने लहराये,
सजग हुए उसके सीने के दबे हुए अरमान,
वे सब उसके शब्दहीन होंठों पर आये,

१ गिद्धा : लोकप्रिय पंजाबी नृत्य, जो घेरे में नाचा जाता है।

शाळा मेरी नींदर देश नूँ, हुण जाग लिआये,
ना मेरे पंज दरियाँ नुँ, कोई वैण सिखाये,
ना पैलीयाँ विच्च थाँ दाणयाँ, कोई भुख्ख उगाये,
ना वेखण हलाँ रोंदीयाँ, धरती दे जाये ।

उस किहा, हे रोंदे तारिओ, तुसीं दिओ गवाही,
मैं हसदे हसदे मौत नूँ, है जफ्फी पाई,
मैं जुलम जबर दे साहमणे नहीं धौण निवाई,
मैं आखिरी टेपा खून दा, पा शमा जगाई,
मेरे सिर ते सेहरे दी थाँ फाँसी लहिराई,
मैं मां दे पीते दुद्ध नूँ, नहीं लीक लगाई ।

मेरी सुख्खाँ लध्धड़ी माँ वी, न हंझू केरे,
ना डोलण मेरे पिओ दे, फौलादी जेरे,
अजे मेरे जेहे पंजाब दे, ने पुत बथेरे,
जेहडे पुट्टणगे इस देस चों, दुख्खाँ दे डेरे,
की होइया मैनूँ निगलिया, अज्ज घोर हनेरे,
पर इस दी कुख्ख चों जम्मणे ने सुर्ख़ सवेरे ।

जद सतलज कण्ढे आण के, आ बलीयां अग्गाँ,
ताँ वध के गरमी छुट्ट लईयाँ, सतलज दीयाँ रग्गाँ,
ओहदे मूंह चों वग के आ गईयाँ छाती ते झग्गाँ,
अज्ज लहि के गल विच्च पै गईयां, पंजाबी पग्गाँ ।

पर अड्डो अड्ड हो गिआ, दुद्ध नालों पाणी,
जिन्हाँ बन्द नहीं कीती अजे वी, ओह लहर पुराणी,
जिन्हाँ ओदों तक आज़ादीयाँ दी, शमा जगाणी,
नहीं मिटदी कालख जदों तक, चानण नूँ खाणी,
नहीं मुकदी जद तक देश चों, रत्त पीणी ढाणी,
ओहनाँ रल के गल सरदार दी, है सिरे चढाणी,
फिर नाल अदावाँ वहेगा, सतलज दा पाणी ।

सेरासिंह चक्र

मेरी महानिद्रा, भगवान्, वसुधा को जगाये,
मेरे पाँचों दरियाओं को शोक-गान कोई न सिखाये,
न खेतों में फसलों की जगह कोई भूख उगाये,
न हलों को रोते देखें धरती के जाये।

उसने कहा, ओ रोते तारो, तुम दो साक्षी,
मैंने हँसते-हँसते किया मृत्यु-आलिंगन,
अत्याचार के सम्मुख मैंने नहीं झुकाई गर्दन,
अन्तिम रक्त-बूँद से मैंने शमा जलाई,
सेहरे की जगह मेरे सिर पर फाँसी लहराई,
माँ का दूध पिया जो मैंने उसे न लाज लगाई।

मेरी सौभाग्यवती माँ भी न गिराये आँसू,
न हो डाँवाडोल मेरे बाप का फौलादी साहस।
मेरे जैसे पंजाब के बेटे अभी बहुत हैं,
जो उखाड़ फेंकेंगे वसुधा से दुःखों के डेरे,
परवाह नहीं यदि निगल रहा है मुझको घोर अन्धकार,
जन्मेंगे फिर इसी कोख से लाल सवेरे !

भभक उठी सतलज के किनारे आग,
गरमी ने बढ़कर कस डालीं सतलज की रगें तत्काल,
उसके मुख से निकले झाग छाती पर फैले,
गलों में पड़ गईं आज पंजाबियों की पगड़ियाँ।

पृथक् हुआ दूध आज, पृथक् हुआ पानी,
सरदार के समवयस्क आये एक पताका के नीचे,
रुकने न दिया पिछला आन्दोलन,
आज़ादी की शमा जलाये रखेंगे,
रक्त-पान में लीन जनों की टोली जब तक खत्म नहीं हो जाती,
मिलकर सिरे चढ़ायेंगे वे ही सरदार की बात,
फिर नई अदा से बहेगा सतलज का पानी।

तेरासिंह चन्न

लिखाँ मैं अपणी जीवनी

लिखाँ मैं अपनी जीवनी छड्डु के सारे प्यार,
मेनूँ वी ख़ुद पसन्द है, गोरीए, तैण्डा विचार :
ऐपर बड़ा मुश्किल एह कम्म, मैं नहीं हाँ निर्विकार,
दाग़ दाग़ लेखनी, दाग़ दाग़ एह नुहार।

कणक दी फसल जिवें लम्मीयाँ घालाँ दा फल।
लम्मीयाँ मजलाँ कच्छ के वग रिहा गंगा दा जल,
छलकदे हुसन कई वगदे ने प्यार ढल,
राहाँ दी धूड़ नापदे तुरे जाण अगाँह वल।

घुप्प हनेरियाँ चों लंघ किरण तुरी आ रही,
कोई नर्तकी है हस्स रही कोई नर्तकी है गा रही।
उस दी हर इक मुसकणी है जोत कोई जगा रही,
एह दाग़ दाग़ जीवनी है होर वी कजला रही।

पतझड़ाँ नूँ छड्डु पिछाँह मुस्करा पई बहार,
चिर विछुन्नी कूँज ने लम्भ लई फिर ओही डार,
मैं नहीं हाँ शैल पत्थर, मैं नहीं फोका करार,
पिघल पिघल समें सार रूप नवें लवाँ धार।

मोढियाँ ते लै के घर, मुट्ठी अन्दर ले के जान,
कर्म ते कुकर्म दी हाँ सिखदा फिरिया ज़बान,
टूणा नहीं है यातरा यातरा जीवन-पछाण
पानी है घाट घाट दा, दाने दाने दा ईमान।

रिश्माँ सखीयाँ मेरीयाँ, हनेरयाँ दे नाल प्यार,
दिस्साँ मैं कदी फकीर, दिस्साँ कदी गुनाहगार,
सुफना वी है चेतना, अचेतना खुल्हा दवार,
जम्मियाँ मैं खून चों, निम्हियाँ मैं निराहार।

मैं अपनी आत्मकथा लिखूँ

मैं अपनी आत्मकथा लिखूँ समस्त स्नेह-प्रवृत्तियों से विरक्त होकर,
मुझे स्वयं भी पसन्द है, रूपसी, तुम्हारा यह विचार।
पर बहुत कठिन है यह कार्य, मैं विकार रहित नहीं हूँ,
दाग़-दाग़ है मेरी लेखनी, दाग़-दाग़ है मेरा रूप।

गेहूँ की फसल है जैसे लम्बे परिश्रम का फल,
लम्बी मंज़िलों को पीछे छोड़कर बह रहा है गंगा-जल,
कई हुस्न छलक रहे हैं, कई प्यार पिघल कर बह रहे हैं,
रास्तों की धूल नापते आगे-ही-आगे जा रहे हैं।

सघन अन्धकार से लाँघकर कोई किरण आ रही है,
कोई नर्तकी हँस रही है, कोई नर्तकी गा रही है,
उसकी प्रत्येक मुस्कान कोई ज्योति जगा रही है,
यह दाग़-दाग़ आत्म-कथा और भी कजला रही है।

पतझड़ों को पीछे छोड़कर बहार मुस्करा पड़ी,
चिर-वियोगिनी कूँज ने अपनी पाँत ढूँढ ली,
मैं नहीं हूँ शैल-पाषाण, मैं नहीं हूँ नीरस प्रतिज्ञा,
समयानुसार धारण कर लेता हूँ नूतन रूप।

कन्धों पर उठाकर घर, मुट्ठी में लेकर जान,
मैं सीखता रहा कर्म और कुकर्म की भाषा,
टोना नहीं है यात्रा, यात्रा तो है जीवन की पहचान,
घाट-घाट का पानी, दाने-दाने का ईमान।

रश्मियाँ हैं मेरी सखियाँ, अन्धकार भी प्रिय है,
कभी नज़र आता हूँ फ़कीर, कभी नज़र आता हूँ गुनहगार,
स्वप्न भी है चेतना, अचेतना भी खुला द्वार,
रक्त से मेरा जन्म हुआ, गर्भस्थ अवस्था में रहा निराहार।

दुद्ध चाँदनी सजीव, हनेरे दी वी जीवनी,
इश्क दे बूहे आण के नफरत वी पैन्दी पीवनी,
ताँघ तुरे वधे आस, जीवनी जे थीवनी,
जे है जित्त चमत्कार, हार वी संजीवनी।

नीवाँ हां मैं बहुत बहुत, मैं हाँ बहुत बेनियाज़,
ढिल्ली ढिल्ली एह सितार, नंगा नंगा मेरा राज़,
तुराँ तुराँ अगाँह वल्ल, मैनूँ पै रही है वाज।
खम्भाँ विन उडारीयाँ, है चुप्प चुप्प मेरा साज़।

यातरा एह जायदाद, गोरीए, कन्न धर के सुण,
जीवनी है सच्च झूठ, जीवनी है पाप पुन्न,
छोह है अछोह है, विच्चे रात विच्चे चन्न,
पैण्डयाँ दे फुल्ल कण्डे, होंवदे न भिन्न भिन्न।

मैनूँ वी खुद पसन्द है, गोरीए, तैण्डा विचार,
लिख्खाँ मैं अपणी जीवनी, छड्ड के सारे प्यार।
यातरा खुल्ल्ही किताब, यातरा कोई हुलार,
यातरा कोई पड़ाओ, रुके न जित्थे कहार।

देवेन्द्र सत्यार्थी

दूधिया चाँदनी है सजीव, अन्धकार की भी है आत्मकथा,
इश्क के द्वार पर नफरत भी पीनी पड़ती है,
अभिलाषा हो अग्रसर, आशा बढ़े, यदि आत्मकथा की सत्ता अपेक्षित है,
विजय एक चमत्कार है, तो पराजय भी है एक संजीवनी।

मैं हूँ अत्यन्त विनम्र, मैं हूँ बहुत बेनियाज,
ढीला-ढीला है यह सितार, एकदम खुला हुआ है मेरा राज,
मैं चल रहा आगे-ही-आगे, मुझे पड़ रही आवाज,
पंख विहीन होकर भी, मैं उड़ रहा, चुप-चुप-सा है मेरा साज।

यात्रा है जायदाद, रूपसी, कान खोलकर सुन,
आत्मकथा है सच-झूठ आत्मकथा है पाप-पुण्य,
यह है स्पर्शवान, यह है अस्पृश्य, बीच में अमावस्या, बीच ही में पूर्णिमा,
रास्ते के फूल-काँटे अलग-अलग तो नहीं।

मुझे स्वयं भी पसन्द है, रूपसी, तुम्हारा यह विचार,
मैं अपनी आत्मकथा लिखूँ समस्त स्नेह-प्रवृत्तियों से विरक्त होकर,
यात्रा है खुली पुस्तक, यात्रा है आनन्द साकार,
यात्रा है एक पड़ाव, रुक नहीं सकता अधिक जहाँ कहार।

देवेन्द्र सत्यार्थी

दोस्ता

दे ज़रा दिल नूँ सहारा दोस्ता,
दिस्सण वाला मूँह प्यारा, दोस्ता !

पैरों दे छाले बी महकाँ छड्डदे,
सफर हुण लगदा न भारा, दोस्ता !

खुल्ह गये ने भेत सारे खुल्ह गये,
छल सके कोई न लारा, दोस्ता !

मंज़ल ताँ मैंनूँ रही मेरी उड़ीक,
मंझधार एह नहीओं किनारा, दोस्ता !

जिहड़े दिल सूरज सकण आपे चढ़ा,
लोचण किवें जुगनू सहारा, दोस्ता !

मैंनूँ संघणे न्हेरियां दा गम नहीं,
हर पैर ते चढ़िया सितारा, दोस्ता !

साडे वेहड़े वी ताँ धूड़ाँ लिशकीयाँ,
तक्क चानण दा पसारा, दोस्ता !

अक्खड़ी रोई बड़ी, पर बण गिआ,
अन्तला अत्थरू सितारा, दोस्ता !

हर थाँ हुण महकन सवेराँ सुच्चीयाँ,
मूँह झाखरा करदा इशारा, दोस्ता !

प्यारासिंह सहराई

दोस्त

जरा दिल को सहारा दे, ओ दोस्त,
प्रिय मुखड़ा अभी नज़र आया चाहता है, ओ दोस्त !

पैरों के छाले भी महक छोड़ रहे हैं,
अब तो सफ़र भारी नहीं लगता, ओ दोस्त !

खुल गए, सारे भेद खुल गए,
अब कोई बहाना छलेगा नहीं, ओ दोस्त !

मेरी मंज़िल मेरी बाट जोह रही है,
यह तो मँझधार है, किनारा तो नहीं, ओ दोस्त !

जो दिल स्वयं सूरज चढ़ा सकते हैं,
वे कैसे जुगनू का सहारा ढूँढें, ओ दोस्त !

मुझे सघन अन्धकार का ग़म नहीं,
पग-पग पर एक तारा उदय हुआ, ओ दोस्त !

हमारे आँगन में तो धूल भी चमक उठी,
प्रकाश का प्रसार देख, ओ दोस्त !

आँख बहुत रोई, पर बन गया
आखिरी आँसू सितारा, ओ दोस्त !

स्थान-स्थान पर महक रही है ज्योतिर्मय उषा,
मुँह-अन्धेरा संकेत कर रहा है, ओ दोस्त !

प्यारासिंह सहराई

कठपुतलीयाँ दी खेड सजन

कठपुतलीयाँ दी खेड सजण,
पा घुम्मड़ आया जग वेखण ।

तैनूँ कोई नचाये नचदा तूँ,
कोई ओहलिओं हस्से हसदा तूँ,
तक एह तमाशा डोरी दा,
मन भरम गिरा है गोरी दा,
ना मैं जाणाँ,
ना तूँ जाणें,
एह खिडर खिडारा होरी दा ।

एह बोल तेरे ना बोल सजण,
ना गीत तेरे दिल चों निकलण,
मैं होर ते मेरा वख्ख जीवन.
मजबूर, बेबस बेहिस जीवन,
है लास लास होइया तन मन,
की दस्साँ की इस दा कारण,
न वस्स तेरे,
ना वस्स मेरे,
कठपुतलीयाँ दी खेड सजण ।

तूँ प्यार करें मैं प्यार कराँ,
चढ़िया है जोश जवानी दा,
सागर औखाँ दा पार कराँ,
लत्थ जाँदे पर एह जवार चढ़े,
आज़ाद न तूँ मजबूर हाँ मैं,
दोहाँ नूँ जग्ग लाचार करे,
ना तूँ दोषी,

कठपुतलियों का खेल, साजन !

कठपुतलियों का खेल, साजन !
नाच-नाच कर आया देखने सब संसार ।

तुझे कोई नचाये, तू नाचने लगता है,
कोई ओट से हिले, तू भी हिलता है ।
देखकर यह तमाशा डोरी का,
मुग्ध हुआ मन गोरी का ।
न मैं जानती हूँ,
न तू जानता है,
यह है किसी दूसरे का खेल ।

ये बोल न तेरे बोल, साजन,
दिल से न निकलें तेरे गीत,
मैं हूँ और, पृथक् मेरा जीवन,
मजबूर, बेबस, गतिहीन जीवन,
चोटों से आसन्न है तन-मन,
क्या बताऊँ इसका कारण ?
न मेरे बस में,
न तेरे बस में,
कठपुतलियों का खेल, साजन !

तू प्यार करे, मैं प्यार करूँ,
चढ़ गया यौवन-उन्माद,
मैं पार करूँ कष्टों का सागर,
पर उतर जाते हैं ये चढ़े हुए ज्वार,
तू नहीं आज़ाद, मैं भी मजबूर,
दोनों को जग करता लाचार,
न तू दोषी,

निर्दोष हाँ मैं,
कुसकुसदे ने मन प्यार-भरे,
धरती चुप है ख़ामोश गगन,
कठपुतलीयाँ दी खेड सजण ।

प्रभजोत कौर

न मैं दोषी,
कसमसाते हैं प्यार-भरे मन,
धरती चुप है, खामोश गगन,
कठपुतलियों का खेल, साजन !

प्रभजोत कौर

इक ख़िआल तेरा

खिआल तेरा
मैं नवीयाँ रुत्ताँ दे चेहरियाँ ते
हुसीन नकशाँ नूँ देखदा हाँ....

खिआल तेरा
जिवें कि फुल्लाँ चों महिक उडदी
जिवें कि धरती सुनहिरी धुप्पाँ च साह लैंदी
फसल दे वालाँ च वा पुरे दी जिवें कि लहिराँ दा गीत रचदी
मेरे खिआलाँ च अज्ज गगन दी है नीलता दा निखार आया
एह किस दे चेहरे दा फुल्ल खिड़िया
एक कौन राहाँ ते मुस्कराया

खिआल तेरा
मैं ज़िन्दगी दे हुसीन नकशाँ नूँ देखदा हाँ
एह किंज राताँ दी चित्रशाला च सुपनियाँ दे जाल बणदे
एह किंज खेताँ दे चेहरियाँ ते है चानणी सुपन-जाल बुणदी
नजर मेरी दा बदल गिआ जाविआ केहा अज
नजर मेरी विच्चों नवें खिआलाँ दे रंग आये

कदे मैं तारे हाँ टंग देंदा किसे दे जूड़े दी महिक विच्चों
कदे मैं तकदा हाँ नील गगनाँ च चन्न मुखड़ा गुआच जाँदा
कदे जुलफ दे मैं पेच दे विच खिआल लभदा हाँ मोड़ खाँदे
कदे मेरे नैण पुच्छदे हन
कि हाली कितनी है रात लम्मी
एह शाह पलकाँ दी रात काली
कि जिन्दगी दी शाहराह ते मैं
दिहुँ राताँ दी छाँ नूँ तेरे खिआलाँ च जी रिहा हाँ !

बलवीरसिंह

एक ख्याल तेरा

तेरा ख़्याल
मैं नये मौसमों के चेहरों पर
हसीन नक्शों को देखता हूँ........

तेरा ख़्याल
जैसे फूलों से महक उड़ती है
जैसे ज़िन्दगी सुनहरी धूप में साँस लेती है
जैसे पुरवाई फसल के बालों में लहरों का गीत रचती है
मेरे ख़्यालों में आज गगन की नीलिमा का निखार आ गया
यह किसके चेहरे का फूल खिल गया?
यह रास्तों पर कौन मुस्कराया?

तेरा ख़्याल
मैं ज़िन्दगी के हसीन नक्शों को देखता हूँ
रातों की चित्रशाला में ये स्वप्न-जाल कैसे बनते हैं?
खेतों के चेहरों पर चाँदनी यह स्वप्न-जाल कैसे बुनती है?
आज कैसे बदल गया मेरा दृष्टिकोण?
मेरी नज़र में नये ख़्यालों के रंग आये।

कभी मैं तारे ही टाँक देता हूँ किसी के जूड़े की महक में से
कभी मैं नील गगनों में चाँद-मुखड़ा गुम होते देखता हूँ
कभी मैं ज़ुल्फ़ के पेच में नया मोड़ लेते विचार ढूँढता हूँ
कभी मेरे नयन पूछते हैं
कि अभी रात कितनी लम्बी है
यह काली पलकों की काली रात
कि मैं ज़िन्दगी के राजमार्ग पर
तेरे ख़्यालों में दिन-रात की छाया को लेकर जी रहा हूँ।

बलवीरसिंह

समाजवाद

खूब होइयाँ कोशिशाँ मेरे मिटावण दे लई,
इक नवीं उगदी होई आशा दी उगदी बेल नूँ
जुलम दे पैरां चि रोलण ते दबावण दे लई
खूब होइयाँ कोशिशाँ मेरे मिटावण दे लई।

जन्म तो पहिलाँ मेरे इक जोतषी कहिंदा रिहा,
इस दे हत्थों है महाराणी दी मौत।
इस लई राणी दे राखे उसदे गोले ते वज़ीर,
उस दे कुत्ते उस दे दारूगीर ते उस दे फ़कीर,
जन्म दे दिन ही मेरे मारण नूँ आई एह वहीर।
सैंकड़े यमरूप तोपाँ, गोलियाँ फौजां दे नाल
बण के आये मेरे काल।

साज़शी लोहे दी इक दीवार बणवाई गई,
घेरिया वख वख मुलक गुस्से दीयाँ कड़ीयां दे नाल,
खूब होइयाँ कोशिशाँ मेरे मिटावण दे लई।

पर मिरी परवश वी इक पूरन मरद करदा रिहा,
जुलम दी अगनी नूँ ओह हर दम सरद करदा रिहा,
ओह सदा मेरे लई जींदा रिहा मरदा रिहा,
कौम दी रग रग चि जीवन दा लहू भरदा रिहा।

दाहड़ीयाँ दे ज़लज़ले आये, तसबीआं दे तूफ़ान,
तीर लै के वेद उट्ठे लै के तलवाराँ कुरान,
कीते परचाराँ दे खंजर तेज़ खूब अंजील ने,
जनम नूँ मेरे किहा कारागरी शैतान दी,
मौत बा-ईमान दी।
मेरे पालक रिच्छ वहशी, कह के जग्ग भण्डे गये,
कह के आमदखोर कीता सबर हर अखबार ने।

समाजवाद

खूब कोशिशें हुईं मुझे मिटा डालने के लिए,
एक नई आती हुई कोमल आशा-लता को
जुल्म के पैरों तले कुचलने और दबाने के लिए
खूब कोशिशें हुईं मुझे मिटा डालने के लिए।

मेरे जन्म से पूर्व एक ज्योतिषी कहता रहा,
इसके हाथों महारानी की मृत्यु होगी,
इसलिए रानी के अंगरक्षक, उसके दास, उसके मन्त्री,
उसके कुत्ते, उसके चिकित्सक, उसके फ़कीर,
मेरे जन्म-दिन पर ही मेरी हत्या के लिए दल-बल सहित आये।
सैंकड़ों यम जैसे तोपों, गोलों और सेनाओं के साथ,
वे मेरा महाकाल बनकर आये।

लोहे की एक साज़िशी दीवार बनवाई गई,
अलग-अलग देश घेर लिये क्रोध-शृंखलाओं में,
खूब कोशिशें हुईं मुझे मिटाने के लिए।

पर एक महापुरुष मेरा पालन करता रहा,
अत्याचार की आग को वह प्रतिक्षण ठण्डी करता रहा।
वह सदैव मेरे लिए जीता रहा, मरता रहा,
जाति की रग-रग में जीवन-रक्त भरता रहा।

दाढ़ियों के ज़लज़ले आये, तसबीओं के आये तूफ़ान,
तीर लेकर वेद उठे, तलवारें लेकर उठे कुरान,
इंजील ने भी तेज़ किये प्रचार के खंजर,
मेरे जन्म को शैतान की कला बताया गया
बा-ईमान की मौत (बताया गया)।
मेरे पालकों को रीछ और वहशी कहकर संसार में बदनाम किया गया।
उन्हें आदमखोर कहकर हर अखबार ने, सब्र का घूँट पिया।

गिरजियाँ ने संघ पाड़े, मौत है ईसा दी एह,
मस्जिदाँ चों शोर होइया, चौधवीं आई सदी,
मिल के सब उट्ठे हनेरे लैस हथियाराँ दे नाल,
इक उभरदा इक निकलदा दिन दबावन दे लई,
खूब होइयाँ कोशिशाँ मेरे मिटावन दे लई।
खूब होइयाँ कोशिशाँ मेरे मिटावन दे लई
पर मैं कुरबानी दियाँ खेताँ चि पलदा ही रिहा,
रात फुलदा ही रिहा परभात फलदा ही रिहा,
मेरी जीवन-रोशनी वधदी गई वधदी गई,
जनता दा पिआर मेरी ज़िन्दगी बणदा गिआ।

दूसरे पासे महारानी दे साह घटदे गये,
चिहरयां तों अहिलंकाराँ दे गिआ बेफिकर नूर,
शाही दरबाराँ दी रौणक ते उदासी छा गई,
कम्बदे मालूम होए तखत दे पावे तमाम।
कम्बदे ते लरज़दे बुल्हाँ चों फिर आई आवाज़,
की बचा दी कोई सूरत ही नहीं ?
की कोई ऐसा बहादर ही नहीं दरबार विच ?
की किसे तलवार दी तेज़ी चि है मेरा बचा ?
हीरियाँ दे मुल्ल तों बी की नहीं मिलदी दवा ?
की कोई ऐसी फफेकुटनी नहीं ?
जो कि उस बच्चे नूँ देवे ज़हर जा ?

फेर होइयाँ कोशिशाँ मेरे मिटावण दे लई,
फेर कुझ दीवाने उट्ठे मरदी राणी वास्ते,
आदमी दे खून नूँ अमृत बनावण दे लई
इक बुढापे नूँ बचावण दे लई,
फेर होइयाँ कोशिशाँ मेरे बचावण दे लई।

कुझ पुराणे नाँ जहे बदले गये,
असल पर ओहो रहे।

गिरजों ने गला फाड़कर कहा : यह है ईसा की मृत्यु।
मस्जिदों से शोर उठा : यह आ गई चौदहवीं सदी।
हथियारों से लैस होकर सभी अन्धकार मिलकर उठे,
एक उभरते, एक उदय होते दिन को दबाने के लिए,
खूब कोशिशें हुईं मुझे मिटा डालने के लिए।
खूब हुई कोशिशें मुझे मिटा डालने के लिए,
पर मैं बलिदान के खेतों में पलता ही रहा,
दिन रात फूलता-फलता रहा,
मेरे जीवन का प्रकाश बढ़ता गया, बढ़ता गया,
जनता का प्रेम मेरा जीवन बनता गया।

दूसरी ओर महारानी के साँस घटते गये,
मुसाहिबों के मुख से लुप्त हो गया चिन्ता-रहित प्रकाश
शाही दरबारों की रौनक पर छा गई उदासी,
काँपते दिखाई दिये सिंहासन के पैर,
काँपते-लरजते होंठों से आई यह आवाज़,
क्या मेरी रक्षा का कोई उपाय नहीं हो सकता?
क्या दरबार में कोई ऐसा वीर नहीं रहा?
क्या कोई ऐसी पूतना नहीं,
जो जाकर उस बालक को विष दे सके?

फिर कोशिशें हुईं मुझे मिटाने के लिए।
मरती रानी को बचाने के लिए फिर उठे कुछ दीवाने,
मानव के रक्त को अमृत बनाने के लिए,
एक वृद्धावस्था की रक्षा के लिए,
फिर कोशिशें हुईं मुझे मिटाने के लिए।

कुछ पुराने नामों में परिवर्तन किया गया,
वास्तविक वस्तुएँ वही रहीं,

आरियाई नसल दा आया तूफान,
इक हनेरी तेज़ काले रोम दी,
पीला हड इक एशियाई जोश दा,
परदियाँ विच सभ दे राणी दा बचा,
नारियाँ तों अरश कम्बाया गिआ,
नसल दा नाँ लै के हर इक जीव कम्बाया गिआ,
हत्थ आये दूसरे फिरके नूँ मरवाया गिआ,
अग्गाँ चि सड़वाया गिआ,
मेरे हामी रसतियाँ विच कतल करवाये गये,
बेगुनाह फाँसी ते लटकाये गये,
कैद विच लक्खाँ जिसम गाले गये,
मेरा जिस कागज़ ते नाँ आया सवाह कीता गिआ,
मेरा हर हुलिया तबाह कीता गिआ,
इक बुढापे नूँ बचावन दे लई,
फेर होइयाँ कोशिशाँ मेरे बचावन दे लई।

बाग कर दित्ते गये किन्ने वीरान,
खेत कर दित्ते गये किन्ने तबाह,
देस कर दित्ते गये किन्ने उजाड़,
टैंक लड़वाये गये टैंकाँ दे नाल,
जिद्दाँ लड़दे ने पहाड़,
भिड़िया लोहे नाल लोहिया इस तरहाँ।
बिजलियाँ टकराउण अरशी जिस तरहाँ,
फौज ते फौजाँ दे हल्ले इस तरहाँ,
गरजदे ने काले बद्दल जिस तरहाँ,
खूब टकराये ने दो तरफों जवान,
जिस तरहाँ लड़दे ने आपस विच तूफान,
इस तरहाँ दा लगदा सी रण दा हाल
घुल रहे ने जिस तरहाँ लक्खाँ भुचाल

आर्यवंश परम्परा का आया तूफ़ान,
काली करतूतों वाले रोम से उठी एक आँधी,
एशिया के एक देश से भी आया पीला तूफ़ान,
सब के पर्दों के पीछे थी रानी की रक्षा,
नारों से गगन कँपाया गया।
नस्ल के नाम पर हर इन्सान को भड़काया गया,
दूसरे सम्प्रदाय के हाथ आये लोगों को मरवाया गया,
आग में जलाया गया।
मेरे पृष्ठपोषक रास्तों में कत्ल किये गए,
बेगुनाहों को फाँसी पर लटकाया गया,
कारागार में लाखों व्यक्तियों के शरीर नष्ट किये गए,
जिस कागज़ पर भी मेरा नाम आये उसे जलाकर खाक कर डाला,
मेरा हर हुलिया नष्ट किया गया,
एक वृद्धावस्था की रक्षा के लिए।
फिर कोशिशें हुई मुझे मिटाने के लिए।

अनेक बाग कर दिये वीरान,
अनेक खेत कर दिये नष्ट,
अनेक देश उजाड़ दिये,
टैंक लड़ाये गए टैंकों के साथ,
जैसे पर्वत जूझ रहे हों,
लोहे से लोहा टकराया इस प्रकार,
गगन पर बिजलियाँ टकरायें जिस प्रकार,
सेना पर सेनाओं के आक्रमण हुए इस प्रकार।
जिस प्रकार गरजते हैं काले मेघ।
दोनों तरफ़ से युवक खूब टकराये,
जैसे जूझें आपस में तूफ़ान,
ऐसा लगता था रण का हाल,
जैसे झुले जा रहे हों लाखों भूचाल,

सूचना तो बिन सी जो हमला महान,
मिट गिआ आखर नूँ उसदा नाँ निशान ।

मेरा युग आया है जो बिन आये जा सकदा नहीं,
कोई महारानी दी हस्ती नूँ बचा सकदा नहीं ।
कोई परबत, चीन दी दीवार, यख सागर कोई,
कोई मेरे पैर दी ज़ंजीर हो सकदा नहीं ।
ज़ोर तों चलदे समें दा पहिया रुक सकदा नहीं,
इक दवन्दव दी नज़र तों कोई लुक सकदा नहीं ।
जिस तरहाँ दरिया दा निस दिन हर कदम जाये अगाँह,
इक कदम मेरे अमल दा मुड़ नहीं सकदा पिछाँह,
दो तों अग्गे तिन्न जिद्दाँ, तिन्न तों अग्गे ने चार,
हैं असूलाँ दी सचाई दा सदा एहो विहार ।
हैं असूलाँ दी सचाई तों मेरा परकाश वी,
होणगे मेरे तों रोशन धरत वी आकाश वी ।
रह नहीं सकदा कोई सनमुख मेरे पहला निज़ाम,
जगत विच होणा है आम ।
मैं असूलाँ दी सचाई तों ही हो जाणा है आम ।
रह नहीं सकदी कदी कुदरत तरक्की रोक के,
मेरे पिच्छे होर है इक सिहर दी बारश अजे,

उस तों पिच्छे होर हो सकदा ए रहमत दा निज़ाम,
सूझ इन्सानी किसे दी रह नहीं सकदी गुलाम,
ज़िन्दगानी नूँ सदीवी बेड़ीयाँ कोई नहीं ।
ज़िन्दगी दे सुपनियाँ दी मैं हाँ इक तसवीर ही,
दब गये उट्ठे सी जो मेरे दबाहन दे लई,
मिटणगे उट्ठे ने जो मेरे मिटावण दे लई ।

बाबा बलवन्त

बिना सूचना दिये हुआ जो आक्रमण महान्,
आखिर मिट के रहा उसका भी नामो-निशान।

मेरा युग आया है जो बिन आये जा सकता नहीं,
कोई महारानी की हस्ती को बचा सकता नहीं।
कोई पर्वत, चीन की दीवार, या सागर कोई,
कोई मेरे पैर की जंजीर हो सकता नहीं।
बल से नहीं रुक सकता समय का चलता पहिया,
इस द्वन्द्व की दृष्टि से कोई नहीं छिप सकता,
जैसे दिन रात आगे ही आगे जाता है दरिया का कदम,
पीछे नहीं हट सकता मेरे व्यवहार का एक भी कदम।
दो से आगे तीन होते हैं जैसे, तीन से आगे चार,
सिद्धान्तों के सत्य की भी यही है परम्परा।
सिद्धान्तों के सत्य से है मेरा प्रकाश,
मुझसे उज्ज्वल होगी धरती, उज्ज्वल होगा मुझसे आकाश,
मेरे सम्मुख ठहर नहीं सकती कोई पहली व्यवस्था,
जगत् में लोकप्रिय होके रहेगी,
सिद्धान्तों के सत्य से ही मैं हो जाऊँगा लोकप्रिय,
रह नहीं सकती प्रकृति रोककर मेरी प्रगति,
मेरे पीछे और है अभी अनुग्रह की वर्षा।

उस के पीछे और भी हो सकती है दया की व्यवस्था,
मानव की सूझ किसी की गुलाम होकर नहीं रह सकती,
जीव को कोई सदा के लिए बेड़ियों में नहीं जकड़ सकता,
जीवन के स्वप्नों का ही तो मैं हूँ एक चित्र,
वे स्वयं दब गये जो मुझे दबाने के लिए उठे,
मिट जायँगे जो मुझे मिटाने के लिए उठे हैं।

बावा बलवन्त

उडीक

डूँघी आथण हो गई माहीया,
लत्थी संझ चुफेर वे :
विच पच्छम दे सूही लाँगड़,
सूरज दित्ती खलेर वे :

लोप होई चानण दी सग्गी
संघणा होइया हनेर वे ।
अद्ध असमानी चन्न दा डोला,
तरियाँ भरी चंगेर वे ।

बुझीयाँ खित्तीयाँ तिंजन पाइया,
रिशमाँ रहीयाँ अटेर वे ।
धरती विच घंगोसे डुब्बी,
अम्बर रिहा उंघेर वे ।
पिछला पहर रात दा लग्गा,
वज्जी फजर दी मेहर वे ।
चूहकी चिड़ी लाली चिचलाणी,
लग्गा होण मुन्हेर वे ।
पूरब गुजरी रिड़कन बैठी,
छिट्टाँ उड्डीयाँ ढेर वे ।

चानण नाल अकाश भर गये,
चढ़ पई सोन सवेर वे,
इतनी वी की देर वे माहीया,
इतनी वी की देर वे ।

मोहनसिंह

प्रतीक्षा

अतलस्पर्शी गोधूलि वेला हो आई, प्रियतम !
चतुर्दिक् साँझ उतर आई रे !
पच्छिम में रक्ताभ आँचल
सूरज ने फैला दिया रे !

प्रकाश का सीस-फूल लोप हो गया,
अन्धकार सघन हो गया रे !
आकाश के बीच है चाँद का डोला,
तारों-भरी चंगेर रे !

वृद्धा स्थिर-तारकाओं ने मिलकर तिंजन[1] लगाया है।
रश्मियाँ सूत अटेरती हैं रे !
धरती चुप्पी में डूब रही है,
अम्बर ऊँघता है रे !
रात का पिछला पहर लग गया,
सवेरे की भेरी बजने लगी रे !
चिड़िया चहकी, लाली[2] चहचहाई,
मुँह-अँधेरा हो आया रे !
पूरब की गूजरी दही बिलोने लगी,
ढेर छींटे पड़ने लगे रे !

आकाश में प्रकाश भर गया,
स्वर्णिम उषा का आगमन हुआ रे !
इतनी भी क्या देर, प्रियतम,
इतनी भी क्या देर रे !

मोहनसिंह

---

१. तिंजन : चरखा कातने वालियों का दल।
२. लाली : भूरापन लिये लाल रंग की छोटी चिड़िया।

जाँदा आप हाँ ओहनाँ दे दुआर !

मैं बकरीयाँ चारदी,
दुपहिराँ दे सूरज तों थकी;
चिनार दी छाँवें पत्थर शिला ते बैठी नूं,
मेरे राजन तेरे सिपाही ने,
तेरा हुकम सुणाइया :

रात हाँ अद्धी रात।
आ महिलीं खड़का दरवाजा,
पातशाही महल दा
पिछवाड़े पासे दा दरवाज़ा।
खोलेगा आप आ राजा,
अपने किवाड़।
हाँ रूलदीए खुलदीए,
भा गिआ ए राजा नूँ,
तेरा लीराँ लपेटिया रूप।

....

कम्बदी ते ओदरदी
कदे अमन्ना करदी,
कदे हासी समझदी,
मैं तुर ही पई अद्धी रात।
तुरदी ते ठहिरदी,
कदे ठुमकदी, कदे थिरकदी,
आ पहुँची हाँ तेरे द्वार
राजा जी खोहलो किवाड़।

मेरे भागाँ ने आँदे ने मेघ,
आ जुड़े ने विच आकाश,

मैं स्वयं उनके द्वार पर जाता हूँ

मैं बकरियाँ चराती,
दोपहर की धूप में थक-हार,
चिनार की छाया में पाषाण-शिला पर बैठी कि
मेरे राजन्, तुम्हारे सिपाही ने
तुम्हारी आज्ञा सुनाई :

"रात को, हाँ, आधी रात के समय,
खटखटाना मेरे प्रासाद का द्वार,
राज्य प्रासाद का—
पिछवाड़े की ओर का द्वार,
महाराज स्वयं आकर खोलेंगे
अपने किवाड़।
हाँ, ओ रास्ते-रास्ते भटकने वाली
मुग्ध हो गये महाराज,
चिथड़ों में लिपटी तुम्हारी देह निहार!"

काँपती और उदास होती,
कभी अनमनी-सी,
कभी इसे उपहास समझती,
मैं आधी रात को चल ही पड़ी।
चलती और रुकती,
कभी ठुमक-ठुमक पग धरती, कभी थिरकती,
आ पहुँची मैं तेरे द्वार,
राजा जी, खोलो किवाड़।

मेरे सौभाग्य से घिर आये मेघ,
आ जुड़े बीच आकाश,

छा गिया हनेरा चुफेर
आई ठोहकराँ खाँदी मैं ढेर
नप्पदी आसाँ दा लड़ घुट्ट घुट्ट,
आ पहुँची हाँ तेरे दुआर,
राजा जी खोहलो किवाड़।

लहि पईयाँ नी बूँदाँ हुण, हाय,
वुल्ल पई ए पुरे दी पौण,
मेरे राजा,
गड़कदी ए बिजली अकाश,
नाल गज्जदी ए बद्दलाँ दी फौज।
चुँधियाँदी ए अक्खाँ नूँ लिशक,
पर दिखा जाँदी ए बन्द किवाड़,
तेरे राजा जी बन्द किवाड़,
खोल आपणे बन्द किवाड़।

कित्थे ओ बन्द किवाड़ ?
मैं ताँ मर गई साँ तेरे दुआर।
तेरे देख के बन्द किवाड़,
खा के मीहाँ दी हाय बुछाड़।

एह ताँ मेरी है आपणी छन्न
कुल्ली कक्खाँ दी कानियाँ दी छन्न,
विच बैठे ने मेरे महाराज
राजा जी राजा महाराज।
किंज गये हो आ मेरी कक्खाँ दी छन्न ?
किंज गई हाँ आ देख बन्द किवाड़।

लै के झोली दे मैं विचकार,
कीते राजा ने बुल्ह उघाड़
जेहड़े करदे ने मैनूँ पिआर।

छाया चतुर्दिक् अन्धकार,
अनेक ठोकरें खाती मैं आ पहुँची,
बड़े ज़ोर से थाम-थाम रखती आशाओं का आँचल,
आ पहुँची मैं तेरे द्वार,
राजा जी, खोलो किवाड़।

हाय, होने लगी बूँदा-बाँदी,
चलने लगी पुरवाई,
मेरे राजा,
कड़कती है बिजली बीच आकाश
गरजती है साथ में मेघों की सेना,
कौंधकर आँखों को चुँधियाती,
पर दिखा जाती बन्द किवाड़,
राजा जी, तुम्हारे बन्द किवाड़,
खोलो अपने बन्द किवाड़।

कहाँ हो, बन्द किवाड़?
मैं तो मर गई तुम्हारे द्वार,
देखकर तुम्हारे बन्द किवाड़,
हाय, खाकर वर्षा की बौछार।

यह तो है मेरी अपनी कुटिया
घास-फूँस की मढ़ैया, सरकण्डों की कुटिया,
इस में विराजमान हैं मेरे महाराज,
राजा जी, राजाधिराज,
कैसे आन पधारे मेरी घास-फूँस की कुटिया?
कैसे लौट आई मैं बन्द किवाड़ निहार?

मुझे अपनी झोली में लेकर,
महाराज ने होंठ खोले:
जो मुझे करते हैं प्यार,

ओह जाँदे ने मेरे दुआर।
किवें मिल जये उन्हाँ दीदार।
पर करदा मैं जिन्हाँ नूँ पिआर,
जाँदा आप हाँ ओहनाँ दे दुआर,
दुआर ओहनाँ दा मेरा दुआर।

भाई वीरसिंह

वे जाते हैं मेरे द्वार,
जैसे-तैसे मिल जाये मेरा दीदार :
पर मैं स्वयं जिन्हें करता हूँ प्यार,
जाता हूँ मैं उनके द्वार—
उनका द्वार, मेरा द्वार।

भाई वीरसिंह

सखीयाँ दे ढोये

इक्को रुक्ख ते बैठे अनेक पंछी, पइयाँ प्यार प्रीतियाँ गूढ़ीयाँ ने,
वग्गी वा कि मनाँ च फरक पै गये, माया नागणी ने ज़हराँ धूडीयाँ ने।
बुरे मूँह कीते साकाँ सज्जणाँ ने, कूड़ खट्टिया नीतीयां कूड़ीयाँ ने।
मार मार के चाबकाँ वितकरे ने, जिन्दाँ हीराँ वरगीया सूड़ीयाँ ने।

टुट्टे लक्ख तारे साडे अम्बराँ चों, नूरी अक्खीयाँ न्हेरीयाँ हो गइयाँ,
राही राह भुल्ले वाटाँ लम्मीयाँ दे, पै गये न्हेर ते मंजिलाँ खो गइयाँ।

हद्दाँ खिचीयाँ जिमीं दे होये टोटे, पिण्डे सभ्यता दे लीरो लीर होये।
मिट्ठे बोल तहज़ीब दे होये कौड़े, तत्ते बोल झनावाँ दे नीर होये।
अक्खाँ ओह ना पिओ ते पुत्त दीयाँ, अज्ज ओपरे भैणाँ नूँ वीर होये।
देस अपने अज्ज परदेस हो गये, मोह, माण मुलाहजड़े तीर होये।

उड्डी मुसकणी बुल्हाँ तों मित्तराँ दे, अक्खाँ कैरीयाँ ने मत्थे घूरीयाँ ने।
रही ममता आँढ गुआँढ दी ना, साँझी कन्ध ओहले लक्खाँ दूरीयाँ ने।

सुत्ती पई दम्यन्तीए, परत पासा, तेथों अज्ज नमोहिया नल होइया।
डाची प्यार दी हो गई अज्ज सुफना, जीण सस्सीए नी, तेरा थल होइया।
रूप हंस दा धारिया बग्गले ने, सोन मिरग सुनक्खड़ा छल होइया,
पुन्न जाण मनुक्ख दी बली दिन्दे, जिन्हाँ रब्ब नूँ मिलण दा झल्ल होइया।

ओहले सच्च दे झूठ शिकार खेडे, ओट धर्म दी पाप ने लई होई ए।
दुआरे रब्ब दे बण गये कतलगाहाँ, अन्ही विच्च जहान दे पई होई ए।

पत्थर उत्ते सियाणियाँ लीक खिच्ची, पर हाँ बणी न कदे बिगाड़ीए जी।
जिहड़ी मिट्टी गुलाब दा फुल्ल उग्गे, ओहनूँ कदे ना आखीए माड़ी ए जी।
साँझे दिल समुन्दरों होण डूँघे, मिले दिलाँ नूँ कदे ना पाड़ीए जी।
वारसशाह ना दब्बीए मोतीयाँ नूँ, फुल्ल अग्ग दे विच्च न साड़ीए जी।

जिहड़े पैराँ दे हेठ लिताड़ हुन्दे, हौला जाणीए ना कक्खाँ कानियाँ नूँ,
उन्हाँ सिरा नूँ लक्ख सलाम हुन्दे, सिर लैण जो दुक्खाँ बगानियाँ नूँ।

उषा के उपहार

एक वृक्ष पर बैठे थे अनेक पक्षी, उनमें थी गहरी प्यार-मुहब्बत?
ऐसी हवा चली कि मनों में आ गया अन्तर, माया नागिनी ने विष बुरक दिया,
सगे सम्बन्धियों ने बुरे मुँह कर लिये, झूठी नीति ने झूठ कमा लिया :
चाबुक मार-मारकर दुर्व्यवहार ने हीरों जैसे शरीरों को बना डाला निष्प्राण।

हमारे गगनों से लाखों तारे टूटे, ज्योतिर्मय नयन हो गए ज्योतिहीन!
लम्बी राहों के राही पथ भूल गए, अन्धकार उतर आया, खो गई मंज़िल।

खींची सीमाएँ, धरा खण्ड-खण्ड हुई, सभ्यता की देह हुई चिथड़ा-चिथड़ा।
सभ्यता के मधुर बोल हुए कटु वचन, चनाव का जल हुआ गरम तेल :
पिता पुत्र की न रहीं वे आँखें, आज बहनों के लिए भाई हुए पराये,
स्वदेश हुआ आज विदेश, ममता, गर्व और लिहाज़ खो गये,

मित्रों के होंठों से उड़ गई मुस्कान, बिल्ली की-सी हैं आँखें, माथे पर हैं त्योरियाँ,
पास-पड़ोस की न रही ममता, बीच की दीवार के पीछे हैं लाखों दूरियाँ।

ओ सोई हुई दमयन्ती, करवट बदल, आज नल हुआ निर्मोही,
स्नेह की ऊँटनी आज बनी सपना, ओ सस्सी अब थल में ही बीतेगा तेरा जीवन।

बगले ने धारण कर लिया हंस का बाना, नयनाभिराम स्वर्ण मृग बन गया छल,
पुण्य समझ कर दे रहे मानव की बलि, जो भगवान् के दर्शन के लिए बने दीवाने,
सत्य की ओट में असत्य खेले शिकार, पाप ने ले ली धर्म की ओट,
भगवान् के द्वार बने क़त्लगाह, संसार में मच रहा अन्धेर।

सयानों ने खींची पत्थर पर लीक, बनी को कभी न बिगाड़ना चाहिए,
जो माटी गुलाब के फूल उगाती है, उसे कभी बुरी मत कहो।
साझे दिल होते सागर से भी गहरे, मिले दिलों में कभी फूट न डालनी चाहिए,
वारसशाह, मोतियों को दबाना न चाहिए, फूलों को आग में जलाना न चाहिए।

पैरों के नीचे जो कुचला जाता, उस घास-फूँस को अकिंचन न मानना चाहिए।
उन सिरों को होते लाख सलाम, जो अपने ऊपर लेते बेगानों के दुःख।

कवी बोलिया सोलहवीं सदी अन्दर धर्म कोहिया राजे कसाइयाँ ने।
कवी बोलिया ठारहवीं सदी अन्दर, चिड़ीयाँ बाज़ाँ तो अज्ज सवाइयाँ ने।
कवी बोलिया उन्हीवीं सदी अन्दर, किरनाँ सुच्चीयाँ ज़मीं ते आइयाँ ने।
कवी अज्ज दा कहे मनुख्खता ने, हद्दाँ उत्तों दी जोटीयाँ पाइयाँ ने।

मुख्ख उज़ले पहु फुटालयाँ दे जिहड़े नित्त समेटदे न्हेरियाँ नूँ।
उत्थे सूरजाँ दा सदा वास हुन्दा जिहड़े तक्कदे नैण सवेरियाँ नूँ।

बोली बोलदे वेद कतेब इक्को, बोल पैण कन्नीं गुरू बाणीयाँ दे।
आईयाँ आयताँ लै के पैगाम ओही, दुःख सुख साँझे सम्भे प्राणीयाँ दे।
बोल बुद्ध दे, नानक दे गीत मिट्ठे, पख्ख पूरदे जिन्दाँ निमाणीयाँ दे,
इक्को मत्त है सौ सियाणयाँ दी, अड्डो अड्डु लीहे मूर्ख ढाणीयाँ दे।

काशी काबा, नंदेड़ दी पाक मिट्टी, बार बार आखे : सांझीवाल सारे।
इक्को नूर तों उपजिया जग्ग सारा, इक्क पिओ ते इक्क दे बाल सारे।

अद्धी रात चुराहे ते जगे दीवा, तन्दाँ नूर ने न्हेर नूँ पाईयाँ ने,
होणहार नूँ लीक ना लगदी ए अजाँ सच्च नूँ कदे ना आईयाँ ने।
चन्न चढ़े नूँ बेखदा जग्ग सारा, किसे होणीयाँ नहीं लुकाईयाँ ने,
तेरे मुख दी होई पछाण सज्जण, धुन्दाँ लोअ ने छाण गुआईयाँ ने।

रात संघणी उलझदे रहे दीवे, अन्त सरघीआँ दे ढोये आण लग्गे।
डाराँ उड्डीयाँ नील आकाश अन्दर, पंछी रल के चोग नूँ जाण लग्गे।

सन्तोखसिंह धीर

सोलहवीं शताब्दी में कवि बोला, कसाई सम्राटों ने धर्म का नाश किया !
अठारहवीं शताब्दी में कवि बोला, आज बाज़ों से भी सवाई हैं चिड़ियाँ।
उन्नीसवीं शताब्दी में कवि बोला, पवित्र किरणें धरा पर उतर आईं,
आज का कवि कहता है, मनुष्यता ने सीमाओं के ऊपर भी भाईचारे की नींव रख दी।

चिर-ज्योतिर्मय है उषा की मुखाकृति जो सदैव अन्धकार को दूर भगाती है,
वहाँ सदैव सूरज विद्यमान रहता है, जहाँ नयन प्रभात का दर्शन करते हैं।

एक ही भाषा में बोलते हैं समस्त वेद-शास्त्र,
गुरुवाणी के भी वही बोल सुनने को मिलते हैं।
वही सन्देश लाईं आयतें, साझे हैं सभी प्राणियों के सुख-दुःख,
बुद्ध के बोल और नानक के मीठे बोल, दबे-पिसे लोगों का पक्ष लेते हैं,
सौ सयानों का है एक ही मत, मूर्खों की टोलियों के पथ हैं अलग-अलग।

काशी, काबा और नंदेड़ की पावन माटी बार-बार कहती है, सभी समझेदार हैं;
एक ही प्रकाश से उपजा सारा जगत्, एक ही पिता है, एक ही के हैं सब बालक।

आधी रात को जलता है चौराहे में दीपक, प्रकाश ने अन्धकार में पिरोये अपने तार,
होनहार को लोकनिन्दा नहीं लगती, साँच को आँच नहीं आती,
उदय हुए चन्द्रमा को सारा संसार देखता है, होनी को किसी ने छुपाया नहीं,
तुम्हारे मुख की पहचान हो गई साजन, प्रकाश ने धुन्ध को दूर किया।

सघन रात में उलझते रहे दीपक, अन्त में आ गए उषा के उपहार,
नील गगन में उड़ीं पाँतें, चोगे के लिए निकल पड़े पक्षी।

सन्तोखसिंह धीर

बँगला

चयन : डा. सुकुमार सेन

अनुवाद : नेमिचंद्र जैन

कवि-नाम	कविता
अजित दत्त	ऊर्ध्वबाहु
अशोक विजय राहा	शीशमहल
(स्व.) जतीन्द्रनाथ सेनगुप्त	भोर हो गया
(स्व.) जीवनानन्द दास	यात्री
प्रथमनाथ विशी	अनिर्वचनीया
मणीन्द्र राय	असंपूर्ण
विश्व वंद्योपाध्याय	काल-पक्षी
संजय भट्टाचार्य	स्मरण
सुधीन्द्रनाथ दत्त	उलटा रास्ता
हरप्रसाद मित्र	व्याध

ऊर्ध्वबाहु

एखाने आकाश आसे न माटिर काछे,
एखाने केवल आकाशेर दिके केवल दु'हात
बाड़ानो आछे।
दुटि हाते जदि ओ-नील सागर थेके,
सुदूरेर रंग कोनोमते पारि चोखे मुखे निते मेखे—
तबे मने हय, वनराजिनील दिगन्त सीमानाय
आकाशे माटिते की करे मिलेछे, किछु किछु जाना जाय।

एखाने रूक्ष उषर कृपण माठ,
काड़ाकाड़ि करे जारा बेशी नेय तादेरि राज्यपाट।
ए माटिर रंगे गेरुया छोपाले भिक्षा भाग्यलिपि
जतइ उँचुते उठि, बड़ जोर सेटा बल्मीक ढिपि।
दूर जेते गेले पिछे गाँटछड़ा-बंधंन देय टान,
वासर घरेर अन्धकूपेइ मानुष भाग्यवान।

ऊर्ध्वबाहु

यहां आकाश नहीं आता धरती के समीप।
स्वयं धरती ही आकाश की ओर
दोनों हाथ बढ़ाये रहती है।
यदि उस नील सागर में से निकाल कर,
सुदूर के वे रंग,
दोनों हाथों से
किसी तरह आँखों पर मुख पर मल सकता,
तो लगता है
कुछ-कुछ यह जान पाता
कि दिगन्त की सीमा पर नील वनमाला
धरती और आसमान के साथ,
किस भांति एकाकार हो गयी है।

यहां तो रूखा मैदान है,
ऊसर और कृपण;
और छीनाझपटी कर के,
अधिक पा जाने वालों का ही राजपाट है।
इस मिट्टी के गेहुँए रंग में
भिक्षा की भाग्यलिपि है,
ऊंचे से ऊंचे चढ़कर,
अधिक से अधिक दीमक के ढूह पर
पहुंचा जा सकता है।
आगे बढ़ते ही
पीछे से
गठजोड़े के बन्धन खींचने लगते हैं,
क्योंकि वासर-गृह के अंधकूप में ही है
मानव का भाग्य।

तबुओ आकाशे नीलेर जोयार एले
सब सीमान्त छाड़िये जावार किछु इंगित मेले,
दु'हात बाड़ाये भावि,
ओइ नीले जदि हृदय छोपाइ पावो स्वर्गेर चाबि ।

साराटा जीवन खुँजेओ मेलेना उपरतलार सिड़ि,
आकाश छोँयार मत उँचु नेइ कोनो कांचनगिरि ।
तबुओ ऊर्ध्व केवलि उँचुते टाने,
क्षणवन्याय मुछे दिते चाय गृहस्थालिर माने ।
जानि ओ-स्वर्ग आसे ना धरार काछे,
तबुओ एखाने आकाशेर छुँते दु'हात बाड़ानो आछे ।

अजित दत्त

तो भी आसमान में
नीलिमा का ज्वार आने पर,
लगता है,
सब सीमाएँ लांघ जाऊँ,
दोनों हाथ बढ़ा कर सोचता हूँ,
उस नीलम से यदि मेरा हृदय रँग सके
तो स्वर्गलोक का रहस्य
मेरे आथ आ जाये।

जीवन भर खोजने पर भी
ऊपर की मंज़िल की सीढ़ी नहीं मिलती,
आकाश के समान कोई कंचनगिरि ऊँचा नहीं,
तो भी ऊर्ध्व ऊँचाई की ओर ही खींचता है,
क्षण भर का ज्वार गृहस्थी के मोह को बहा ले जाता है।
जानता हूं कि स्वर्ग कभी धरती के पास नहीं आता,
तो भी धरती आकाश को छूने के लिए
दोनों हाथ बढ़ाती ही रहती है।

अजित दत्त

काचघर

सकालेर काचघरे आलो हय हीरा
उड़े एसे वनेर पाखिरा
दले दले रंग मेखे जाय
विचित्र पाखाय।
तुलिर छोंयाय
घासफूल चोख मेले चाय
पथेर दु'पासे
टगरेरा भिड़ करे आसे।

हठात् पर्दा ओड़े ओ देकेर खोला जानालाय
एलोचुले के एसे दाँड़ाय
चेये थाके एका
मुखखानि कबेकार देखा?
शिरीषेर कचि डाले पातार भितरे
एकटि छायार पाखि नड़े
घासे घासे शालिकेरा नाचे
बुद्धेर मूर्त्तिर काछे चुप करे आछे
एकटि अवाक मेये, खोंपाय मालती,
नयनतारार वने दुटि फुल हल प्रजापति।

छबि मुछे जाय
आवार से काचघरे एका
झाउयेर पाताय
काँपे शुधु हिजिबिजि रेखा

शीशमहल

प्रभात के शीशमहल में
आलोक हीरा हो जाता है,
जंगल के पक्षी उड़ते हुए आते हैं
झुंड के झुंड,
और अपने रंग-बिरंगे पंखों में
रंग भर ले जाते हैं।
तूलिका के स्पर्श से
घास का फूल आँख खोलकर देखता है,
पथ के दोनों ओर
टगरफूल भीड़ लगाये खड़े हैं।

अचानक उधर खुली हुई खिड़की का पर्दा उड़ उठा,
जहाँ कोई मुक्तकेशिनी आकर खड़ी होती है
और अकेली जाने क्या देखती रहती है—
कब देखा था उसका मुख!
शिरीष की नयी डाल पर
पत्तों के भीतर
एक छाया-पक्षी कुनमुनाता है,
घास पर चारों ओर सारिकाएँ नाचती हैं,
बुद्ध की मूर्त्ति के पास
चुपचाप खड़ी है एक अवाक लड़की,
जूड़े में मालती के फूल हैं
नयनतारा के वन में दो फूल तितली बन गये हैं।

चित्र मिट जाता है,
फिर उस अकेले शीशमहल में,
झाऊ के पत्तों में,
केवल एक टेढ़ी-मेढ़ी रेखा-सी काँप उठती है,

चारिदिके झरे पड़े आकाशेर नील
डानार झिलिके भासे चिल
कोथा थेके एसे एक सुर
हये जाय माठ मेघ दूर ।

अशोकविजय राहा

चारों ओर झरता है आकाश का नील,
पंखों की झिलमिल में चील तैरती है,
कहीं से आनेवाले किसी गीत के स्वर से
मैदान तथा बादल दूर जान पड़ते हैं।

अशोकविजय राहा

भोर हये एल

भोर हये एल कवि तोर।
नीड़छाड़ा वन पाखी,
करे दूरे डाका डाकि,
खोपे खोपे काँदे कबुतर।

जीवन रजनी शेषे,
दाँड़ाये शियर देशे,
मरण अरुण ओइ,
चाहिया निर्निमेषे,
तोरइ घुम भाँगाते,
तोरइ पथ राँगाते,
बाहिया तिमिर तरी एल से।

जे आलो नयनातीत,
सेइ आलो हाते तार,
जे बोझा वहनातीत,
सेइ बोझा माथे तार,
तोरइ ज्वाला सहिते,
तोरइ बोझा वहिते,
एत दिने अवसर पेल से।

रवि शशी ज्वेले ज्वेले,
एइ जे रजनी जागा,
केंदे हेसे भालबेसे,
एइ जत भाल लागा,
कोजागरी अभिनय,
आर नय आर नय,
घुरिये दे ए दुयारे चावि रे,

भोर हो गया

कवि तेरा भोर हो आया।
नीड़ों से निकले हुए वन-पक्षी दूर से बार-बार पुकारने लगे,
खाँचों में बन्द कबूतर रो उठे।

जीवन-रजनी बीत रही है,
और मरण-सूर्य सिरहाने खड़ा
निर्निमेष तुम्हारी ओर ताक रहा है,
तुम्हारी नींद भंग करने,
तुम्हारा पथ रंजित करने,
तिमिर की नौका खेता हुआ वह आ पहुँचा है।

उसके हाथों में है नयनातीत प्रकाश,
उस के सिर पर रक्खा है अवहनीय भार,
तुम्हारे प्रकाश की ज्वाला सहने का,
और तुम्हारा भार वहन करने का,
इतने दिनों बाद उसे अवसर मिला है।

रवि-शशि के दीपक जला जला कर
यह रात-जागरण,
रोना, हँसना, प्यार करना, यह सब अच्छा लगना,
शरद् पूर्णिमा की मोहमाया—
और नहीं, अब और नहीं चाहिये।
इस द्वार में अब ताला डाल दो,

आज आर डाकिस ने
भक्तेर भगवाने,
सुखे दुखे मुखे बुके,
कोथाय से सेइ जाने,
एल जे करुणामय,
आँखिभरा वराभय,
नम से अवश्यम्भावीरे,
ओरे कवि, नव प्रभाते ।

रवि शशी तारा ज्वाला,
रजनीर दीपमाला,
निबेछे अरुण प्रभा-ते ।

(स्व.) जितेन्द्रनाथ सेनगुप्त

आज अब भक्त के भगवान को न पुकारो,
सुख-दुख में, मुख में, हृदय में,
वह कहाँ है यह वही जाने;
आज तो जो करुणामय
अपने नयनों में अभय का वरदान लेकर
उपस्थित हुआ है,
हे कवि,
इस नव प्रभात में
उस अवश्यम्भावी को ही प्रणाम करो।

रवि, शशि और तारिकाओं का आलोक
बुझ गया है,
रजनी की दीपमाला
प्रभात की लाल आभा में डूब गयी है।

(स्व.) जतीन्द्रनाथ सेनगुप्त

जात्री

मने हय प्राण एक दूर स्वच्छ सागरेर कूले
जन्म नियेछिल कबे,
पिछे मृत्युहीन जन्महीन चिन्हहीन
कुयाशार जे इंगित छिल
सेइ सब धीरे धीरे भूले गिये अन्य एक माने
पेयेछिल एखाने भूमिष्ठ हये आलो जल आकाशेर टाने,
केन जेन काके भालबेसे।

मृत्यु आर जीवनेर कालो आर सादा
हृदये जड़िये निये जात्री मानुष
एसेछे ए पृथिवीर देशे,
कंकाल अंगार कालि चारि चारि दिके रक्तेर भितरे
अन्तहीन करुण इच्छार चिन्ह देखे
पथ चिने ए धूलोय निजेर जन्मेर चिन्ह चेनाते एलाम।

काके तबु?
पृथिवी के? आकाश के? आकाशे जे सूर्य ज्वले ताके?
धूलोर कणिका अणु परमाणु छायावृष्टि जल कर्णिका के?
नगर बन्दर राष्ट्र ज्ञान अज्ञानेर पृथिवी के?
सेइ कुज्झटिका छिल जन्मसृष्टिर आगे, आर
जे सब कुयाशा रबे शेषे एक दिन,

यात्री

लगता है प्राणों ने
कभी किसी सुदूर स्वच्छ सागर के किनारे
जन्म लिया था,
उस पिछले जन्म-मरणहीन निश्चिन्ह कुहासे का
जो संकेत था,
वह सब धीरे धीरे विस्मृत हो गया
और
प्रकाश जल तथा आकाश के आकर्षण से
यहाँ इस धरती पर उतर कर,
किसी को जाने क्यों प्यार करके,
एक दूसरा ही अर्थ मिल गया।

मृत्यु और जीवन की कालिमा और सफेदी
हृदय से चिपकाये
यह यात्री मानव
धरती पर आया है।
कंकाल, बुझे हुए अंगारे, स्याही,
और चारों ओर रक्तपात के भीतर
अनंत करुण लालसा के चिन्ह देख
और पथ पहचान कर
इस धूल में अपने उस जन्म के चिन्ह दिखाने आया हूं।

पर वह किस को ?
धरती को ? आकाश को ? आकाश में चमकते हुये सूर्य को ?
धूल के कण, अणु-परमाणु, छाया, वृष्टि और जल की बूँदों को ?
नगर, बंदरगाह, राष्ट्र तथा ज्ञान-अज्ञान की इस दुनिया को ?
जन्मसृष्टि के पहले भी यही कुहासा घेरे हुआ था,
और एक दिन अंत होने पर भी

तार अन्धकार आज आलोर वलये एसे पड़े पले पले,
नीलिमार दिके मन जेते चाय प्रेमे,
सनातन कालो महासागरेर दिके जेते बले।

तबु आलो पृथिवीर दिके
सूर्य रोज संगे करे आने,
जेइ ऋतु जेइ तिथि जे जीवन जेइ मृत्यु रीति,
महा इतिहास एसे एखनओ जानेनि जार माने।
सेदिके जेतेछे लोक ग्लानि प्रेम क्षय
नित्य पदचिन्हेर मतो संगे करे,
नदी आर मानुषेर धावमान हृदय
रात्रि पोहाल भरे, काहिनीर कत शत भोरे,
नव सूर्य नव पाखि नव चिन्ह नगरे निवासे,
नव नव जात्रीदेर साथे मिशे जाय
प्राण लोक जात्रीदेर भिड़,
हृदय चलार गति गान आलो रयेछे अकूले
मानुषेर पटभूमि हयतो वा शाश्वत जात्रीर।

(स्व.) जीवनानंद दास

जो धूमिल कुहरा बाकी रह जायगा
उसका अन्धकार आज ही
आलोक के वलय में पल-पल घिर रहा है;
प्यार से भर कर मन
नीलिमा की ओर
सनातन काले महासागर की ओर
जाने के लिए बुलाता है।

तो भी रोज सूर्य आलोक को
अपने संग धरती पर ले आता है,
एक ऋतु, एक तिथि, एक जीवन, एक मृत्युरीति—
जिन सबका अर्थ
महाइतिहास आज तलक नहीं जान सका है।
उधर पदचिन्हों की भाँति
ग्लानि, प्रेम, क्षय को निरंतर साथ लिये
मानव चलता चला जा रहा है,
नदी और मानव का भागता हुआ हृदय।
रात बीत गई,
और कहानी के अनगिनती सबेरों के
नये सूर्य, नये पक्षी, नये चिन्ह,
नगरों में, घरों में दीखने लगे हैं।
प्राणलोक के यात्रियों की भीड़
नये-नये यात्रियों के साथ मिलती जाती है;
हृदय में गति का गान और आलोक भरा हुआ है,
मानो इस निरुपाय, शाश्वत मानव यात्री की
वे ही पटभूमि हैं।

(स्व.) जीवनानंद दास

अनिर्वचनीया

ओ पारेर गिरिमालाय, आर आकाशेर आलोते,
सारा दिन ए की लीला !
पाखीर गाने पा टिपे टिपे
आलो आसे,
खुले फेले ओर नील घोमटा,
बेरिये पड़े चपल हासि,
चापा ठोंटेर कोनो कोणे,
कालो चोखेर कूले कूले,
सारा दिन ए की लीला !

आबार कखनो वा आलो आसे चुपे चुपे,
झां-झां करा दुपुरे झिमिये-पड़ा
नैःशब्द्येर ताले ताले,
हठात् ओर माथाय परिये देय मयूरकण्ठी वसन
मेघेरे पाँज दिये चाँदेर चरखाय बोना।
आलो आसे,
गिरिमालार भाव जेन कतइ अप्रत्याशित,
सारा दिन ए की लीला।

कखनो वा देखि मेघेर फाँक दिये,
गिरिर माथाय झरछे आलोर गाँदा फुल,

अनिर्वचनीया

उस पार की उन गिरिमालाओं
और आकाश के आलोक के बीच
सारे दिन
यह कैसा खेल होता रहता है!
पक्षियों के संगीत पर पैर रखता रखता
आलोक आता है
और उस का नील घूँघट खोल देता है,
एक चपल हँसी बिखर जाती है
बंद होठों के कोनों पर
काली आँखों के किनारे किनारे।
यह कैसी लीला है सारे दिन!

फिर कभी आलोक आता है चुपके चुपके,
साँय साँय करती दोपहर की
उनींदी निस्तब्धता की लय पर,
और अचानक उस के सिर पर
बादलों की पूनी से
चाँद के करघे पर बुना हुआ
मयूरकंठी वस्त्र पहना देता है।
आलोक आता है
और गिरिमाला का भाव
जाने कैसा अप्रत्याशित-सा हो जाता है।
कैसा खेल है यह सारे दिन!

कभी कभी देखता हूँ
बादलों के बीच से
गिरिमाला के शिखरों पर
आलोक के गैंदे झर रहे हैं,

समस्त उपत्याकाटा जाय भरे,
झलमिलये उठे नदीर जल,
वनतल हय आभामय।
सबुज श्यामले सोनालि नीलिमाय,
मुहुर्मुहु ए की उड़नार अपसारण।
कत रंग आछे आलोर,
कत उड़ना गिरिमालार।
फिके आलो थेके घन आलोर मध्ये
ए की तुरन्त सारेगामा साधा,
रंगे रंग,
चोख पारे ना धरते कोथाय शेष आर शुरु,
नाम केमन करे बलबो,
आलोते आर गिरिते
सारा दिन ए की लीला।

ज्योत्स्ना राते आलो आसे
श्वेत मयूरेर कलाप मेले
गिरिमाला तखन मिलिये जावार प्रान्ते।
निःशब्द, निर्जन पृथिवी जेन
कोन् चन्द्रलोकेर प्रान्तर,
वनेर घन कालोर उपरे पड़ेछे
अप्रत्ययेर सादा।
आकाशेर शुभ्रता आर पृथिवीर कालिमा
एइ दुकूलेर मध्ये तलिये गेछे सब रंग,
दिनेर सब वैचित्र्य
रंगेर ए की निर्वाण
सारा दिन बसे देखि आमि
सारा दिन आरा सारा रात।

सारी उपत्यका भर जाती है
नदी का जल झलमला उठता है
समस्त वन-प्रान्तर आभामय हो जाता है।
हरी श्यामलिमा में, सुनहरी नीलिमा में
बार बार यह कैसी चूनरी खिसकी पडती है!
कितने रंग हैं आलोक के!
गिरिमाला की कितनी चुनरियाँ हैं!
फीके आलोक से गाढ़े आलोक के बीच
यह कौन रंग-बिरंगे सरगम साधता है!
आँखें पकड़ नहीं पातीं,
उसका कहाँ अंत है और कहाँ शुरू,
कैसे बताऊँ उस का नाम!
आलोक और गिरिमाला के बीच
सारे दिन यह कैसा खेल है!

चाँदनी रात में आलोक
सफेद मोर के पंख फैलाये आता है,
उस क्षण गिरिमाला उस में जैसे लीन हो जाना चाहती है।
निस्तब्ध निर्जन पृथ्वी ऐसी लगती है
मानो चंद्रलोक का ही कोई प्रांतर हो।
वन के गहरे काले रंग के ऊपर
अविश्वास की सफेद चादर पड़ गई है।
आकाश की शुभ्रता और पृथ्वी की कालिमा,
इन दोनों किनारों के बीच
सब रंग,
दिन का समस्त वैभव डूब गया है।
रंगों का यह कैसा निर्वाण है!
दिन भर बैठे-बैठे मैं देखता हूँ—
सारे दिन और सारी रात।

गिरिते आलोते ए की लीला ।
रंगे रंगे ए की मालाबदल,
पृथिवीते एत रंग केन के जाने,
जे बेगुनी छोंया धूमल मलमल
टेने दिच्छे आवरण,
ए जे चलति मेघेर नील छायार
चलमान कौतुक
आर
ए जे गोधूलिर चेलिगिरिमालार सीमन्ते
परिये देय गुण्ठन,
ए सब केन के जाने,
केवल आमार मन भोलावार जन्यइ
एमन आयोजन ?
आलो छायार एइ पाणिग्रहण ?
रंगेर साथे रंगेर जोड़ मेलानो ?
ए दिगन्तजोड़ा भूमिकार लक्ष्य
क्षुद्र एइ आमि ?
मन बले ना किछुइ नय ।
ओदेर मने ओरा रयेछे,
ओरा आमि निरपेक्ष ।
ओदेर मने ओरा रयेछे
आमार मने आमि,
आमि ओरा निरपेक्ष ।
तबे रंग एत संगीत केन ?
आकाश केन एत सुन्दर ?
पृथ्वी केन एत मोहांजनमय ?

तोमार दिके ताकाले
उत्तरेर जेन आभास पाइ ।
तोमार मुखे चोखे कपाले

गिरिमाला और आलोक के बीच यह कैसा खेल है,
रंग-रंग में यह कैसी वरमाला की अदला-बदली है।
कौन जानता है इतने रंग क्यों हैं धरती पर।
वह हलके बैंगनी रंग की धूमिल मलमल
आवरण डाल रही है,
वह उधर भागते हुए बादलों की नील छाया का
चंचलतापूर्ण खेल,
और वह गोधूलि का रक्त-वस्त्र
गिरिमाला के सीमंत को
घूँघट से ढँके ले रहा है—
यह सब किस लिए है कौन जानता है!
क्या यह सब आयोजन
मेरा मन बहलाने के लिए ही है?
आलोक और छाया का यह पाणिग्रहण
रंग के साथ रंग की जोड़ी
क्या इसीलिए मिलायी जा रही है?
इस दिगन्तव्यापी अभिनय का लक्ष्य
क्या यह क्षुद्र मैं हूँ!
मन कहता है—नहीं, कदापि नहीं!
उन के मन में वे हैं और उन्हें मेरी अपेक्षा नहीं।
उनके मन में वे हैं और अपने मन में मैं हूँ,
और मुझे उनकी अपेक्षा नहीं।
तो फिर ये रंग इतने रंगीन क्यों हैं?
आकाश क्यों इतना सुन्दर है?
पृथ्वी क्यों इतनी मोहमयी है?

तुम्हारी ओर देखते ही
मानो उत्तर का आभास मिलता है।
तुम्हारे मुख पर, आँखों में, कपोल पर

तोमार अंचलेर मालिनीते
तोमार कुन्तलेर भुजंगप्रयाते
तोमार कण्ठेर स्रग्धराय
मन्दाक्रान्ताय तोमार चरणेर
तोमार ललाटेर बसन्ततिलके
आर
तोमार वक्षेर शिखरिणीच्छन्दे
एइ सदुत्तर जेन लिखित,
हे सुन्दरी,
तुमि एइ विश्वकाव्येर
अनिर्वचनीया मनोरमा टीका।
तोमाके देखे ओदेर कतक बुझि।

प्रमथनाथ विशी

तुम्हारे अंचल की मालिनी में
तुम्हारे कुन्तलों के भुजंगप्रयात में
तुम्हारे कंठ की स्रग्धरा में
तुम्हारे चरणों की मंदाक्रान्ता में
तुम्हारे ललाट के बसंत-तिलक में
और
तुम्हारे वक्ष के शिखरिणी छंद में
यह सदुत्तर मानो लिखा हुआ है।
हे सुन्दरी
तुम इस विश्व-काव्य की
अनिर्वचनीया मनोरमा टीका हो।
तुम्हें देखते ही मुझको उसका संकेत मिलता है।

प्रमथनाथ बिशी

असम्पूर्ण

आश्विने बूझि सबइ आज लागे तुच्छ ?
सोनाली दिनेर खुशीर आभाय
दीस सबुजे गिनि झरे जाय।
माटिर कामना मिटेछे धानेर गुच्छे।
तबु कि तृप्त हयेछे आमार इच्छे ?
मने आछे सेइ ग्रीष्मेर दिन पंजि,
रोदे फुटि-फाटा माठेर पाँजेरे
कचि शस्येर चारा धुँके मरे।
घूर्णि धूलोय एसेछे नकल पाँजा
आसेनि प्रबल विवर्षणे मेघपुंज।
एल तार परे ढलनामा क्ष्यापा वन्या।
क्षुब्ध नदीर ढेउयेर झापटे
मने भय जागे कखन की घटे।
सर्वनाशार बाँधभाँगा पैशुन्ये
बुझि डोबे माठे सारा बछरेर अन्न।
से फाँदा कटेछे फिरे गेछे सेइ दस्यु।
चैत्र श्रावण पार हये आज
शरतेर माठे पेयेछि स्वराज
प्राण प्राचुर्ये देखि नइ बटे निःस्व
तबु कि चिन्ता छाया फेले सेइ हृदये।

असम्पूर्ण

आश्विन में आज सभी कुछ तुच्छ लगता है शायद !
सुनहले दिन की प्रसन्न आभा में
दीप्त हरियाली में
सोना बिखर गया,
धरती की कामना
धान के गुच्छों से पूरी हो गयी।
तो भी क्या मेरी इच्छा पूरी हुई ?
ग्रीष्म के वे दिन याद हैं,
धूप से तड़के हुए मैदान के कंकाल में
धान के अंकुर खड़े थे, सहमे हुए-से,
धूल के बवंडर घिर रहे थे,
बरसते हुए मेघपुंजों का कोई पता नहीं था !
और फिर उस के बाद आयी
उमड़ती पागल बाढ़,
क्षुब्ध नदी की झपटती हुई लहरों से
मन में डर लगता था
जाने कब क्या हो जाय !
सर्वनाश की उन्मत्त क्रूरता में
खेत का सारा बरस भर का अन्न
शायद डूब गया—।
और फिर वह अशुभ घड़ी भी बीत गयी,
डाकू वापिस लौट गया।
चैत और सावन पार करके
आज शरद में खेतों को स्वराज मिल गया है,
प्राणों की प्रचुरता में
अब कोई दरिद्रता नहीं दीखती,
तो भी वे सब दृश्य
कैसी आशंका की काली छायाएँ छोड़ गये हैं !

मने हय तबु आजओ मेटेनि तो स्वप्न ।
फसलेर आशा जतोइ भोलाय
देखि आजओ ताके तूलिनि गोलाय
भरा आश्विने ज्वलि ताइ खर प्रश्ने
कबे जे पौषलक्ष्मी मिटाबे तृष्णा ।

मनींद्र राय

लगता है आज भी वह स्वप्न मिटा नहीं है।
फसल की आशा चाहे जितना बहकाये
अभी भंडार से तो वह दूर ही है;
इसीलिए भराभर आश्विन की गोद में भी
इसी प्रश्न की आग में जलता रहता हूँ
कि पौष-लक्ष्मी कब बुझायेगी मेरी प्यास!

मनीन्द्र राय

समयेर पाखि

माथाय ओदेर नील आकाशेर छाति
उड़े चले ओरा उदयेर थेके अस्तेर दिके रोज
मानुष देखेछे नित्य तबुओ मानुष पायनि खोंज।
एरा कि बलाका? एरा शकुनेर पाँति?
एरा कि आदिम स्फुलिंग सेई सृष्टिर आगुनेर,
ग्रीष्म, वर्षा, शरत् एवं हेमन्त फागुनेर?
गलाय ओदेर अविराम दोले षड्ऋतु फूलमाला,
रवि रश्मिर खर गतिवेग ओदेर डाला?

प्रत्यह एक पाखि उड़े आसे
प्रत्यह चले जाय,
मानुषेर आयु थरथर.काँपे
चंचल दु'डानाय,
महाचेतनार गोल गवाक्षे
नित्यइ बसे देखि
केन आसे एरा कि एमन काजे,
केन चले जाय एकि?

एकटि पाखाय दिवालोक उड़े
आरेक पाखाय रात ढाका पड़े
दिन राते मिले प्रवाहेर तोड़े
कोथा नेगिये हाराय।

कालपक्षी

उन के मस्तक पर नील-आकाश का छत्र है
प्रत्येक दिन वे उदय से अस्त की ओर उड़े चले जाते हैं
मानव नित्य उन्हें देखता है
पर उसे पता नहीं चलता।
यह बलाका है ?
या यह गिद्धों की पंक्ति है ?
या ये सृष्टि की उसी अग्नि के,
ग्रीष्म, वर्षा, शरत, हेमंत एवं बसंत के
आदिम स्फुलिंग हैं ?
उन के गले में छहों ऋतुओं की
फूलमालाएँ निरंतर डोलती रहती हैं;
सूरज की किरनों के प्रखर गतिवेग से
उनका निर्माण हुआ है ?

प्रतिदिन एक पक्षी उड़ कर आता है
और वापिस लौट ज़ाता है।
मनुष्य की आयु
दो चंचल डैनों के बीच थर-थर काँपती है।
महाचेतना के गोल गवाक्ष में बैठकर
नित्य ही देखता हूँ,
क्यों ये आते हैं ?
ऐसा कौन सा काम है ?
और क्यों वापिस चले जाते हैं ?

एक पंख में दिन का आलोक फूटता है,
और दूसरे में रात घिर आती है;
दिन और रात मिलते ही
प्रवाह के वेग में
जाने कहाँ जा कर खो जाते हैं ?

प्रतिदिवसेर मरुपार छले
साराटि बछर एरा दले दले
कोलाहल करे आसे केन आर
कोन् अदृश्ये जाय
सबार चेतना सचकित करे दुखानि
पाखार घाय?
तो दिन गेलो कतो गेलो पाखि?
कतो रात से ओ केउ गोने ता कि?
(नेपथ्ये केउ आछे कि एकाकी?)

सबार जीवन ए भावेइ जेन
चल्छे नियत मापा।
मनेर जानूला भेजिये दिलेइ
सब पड़े जाय चापा।

विश्व बंधोपाध्याय

प्रत्येक दिन के मरु को पार करने के बहाने
वर्ष भर तक ये झुंड के झुंड
कोलाहल करते हुए क्यों आते हैं ?
और फिर अपने दोनों पंखों के आघात से
सबकी चेतना को चकित करते हुए
किस अदृश्य की ओर चले जाते हैं !
कितने दिन गये—कितने पक्षी गये ?
कितनी रातें गयीं ?
यह सब क्या कोई गिनता है !
(नेपथ्य में क्या कोई इतना अकेला है ?)

सभी का जीवन इसी प्रकार
मानो निश्चित नपा-नपाया-सा चल रहा है....
मन की खिड़की बंद करते ही
सब कुछ आँखों से ओझल हो जाता है।

विश्व बंद्योपाध्याय

स्मरणे

तोमार नाम त नय साड़िर आँचल
टेने निये मोछा जावे शाओनेर जल,
अश्रुर छबि, चोखे झलमल फोंटा।
फोटा फुलओ हत जदि छिंड़े निये बोंटा,
हृदय देया जेतो सुरभित श्वास।

नाम नय आकाशेर कोन नामी तारा,
ताकिये जे बाकि कटा दिनेर पाहारा
पार हये पाव एक कवोष्ण आश्वास
मरण-मेरुर शीते मेरुण आलोर
अरोरार भिड़े,
आर आछे से कि भोर?

प्रेम नय खालि शालीनता आमादेर,
ए कथा बलार आछे। जदि एसो फेर
पृथिवी ते दिते शीत प्रेत हये आज,
कि अनील आगुने जे ए देह निलाज
हय अहरह, निजे देखे जाओ एसे।
से कोथाय जारे रेखे गेछो भालबेसे।

संजय भट्टाचार्य

स्मरण

तुम्हारा नाम कोई साड़ी का आंचल तो है नहीं,
जो खींच कर उस से सावन का जल,
आँसुओं की तस्वीर,
आँखों में झिलमलाती बूँद,
पोंछ ली जाये।
यदि खिला हुआ फूल भी होता
तो उस का डँठल तोड़ कर
हृदय को सुरभित किया जा सकता।

तुम्हारा नाम आकाश का कोई नामी तारा भी नहीं,
जिसे ताक कर
और बाकी दिनों के पहरे को पार करके
एक हलकी उष्ण-सी आशा मिलेगी,
मरण-मेरु के शीत में,
मैरून आलोक की अरोरा के सामने!
अब कहाँ है वह सबेरा?

प्रेम नहीं,
अपनी रुचि के कारण ही
यह बात कहनी है:
यदि तुम प्रेत होकर
फिर हमारी धरती पर जाड़ों का मौसम लाओ,
तो आकर यह अवश्य देखती जाना
कि कैसी अनील आग में यह देह
दिन-रात निर्लज्ज होती जाती है,
और जिसे तुम प्यार करती थीं
वह आज कहाँ है?

संजय भट्टाचार्य

उन्मार्ग

ढेउ गुणे गुणे केटे जाय बेला
सिन्धु तीरे,
जानि पुनराय भासाव ना भेला
अबाध अगाध अपार नीरे।
तबे माझे माझे केन मने पड़े
पालेर स्फूर्ति उद्दाम झड़े;
उधाओ तारार इशाराय पथ
अबार निरुद्देशे,
जेथा सर्वतोभद्र जगत्
सम्भावनार निखिल निर्विशेषे ?
अथवा निवात, निर्मल नील
द्विप्रहरे,
परिणत मायामुकुरे सलिल,
आकाशे वातासे आलस भरे;
स्तंभित तरी जेन पटे आँका,
अवाक बलाका संवृत पाखा,
अनाथ द्वीपेर वृथा अधिवास
विलीन विस्मरणे,
अप्सरीदेर निभृत विलास
मुक्ता विकच रक्त प्रवाल वने।

कखनओ आबार बादले व्याहत
आलोर ग्लानि,
चेतनाचेतने घनाय नियत

उलटा रास्ता

लहरें गिनते-गिनते समय बीत जाता है
समुद्र के किनारे;
जानता हूँ अब फिर से नहीं बहाऊँगा
इस अबाध, अगाध, अपार जल में
अपना बेड़ा।
तो भी बीच-बीच में
उद्दाम तूफ़ान के समय पाल का उत्साह
जाने क्यों याद आ जाता है;
सितारों के इंगित पर चलने वाला पथ
ऐसी उन्मुक्त सीमाहीनता में खो जाता है
जहाँ यह सर्वतोभद्र जगत्
संभावना की सर्वव्यापी अभिन्नता में
वर्तमान है!
अथवा वातहीन, निर्मल नील
दोपहर में,
जल के माया-दर्पण में
आकाश और वातास
अलसाये हुए भर जाते हैं;
पट पर किश्ती स्तंभित अंकित है;
बलाका पंख समेट कर निस्पंद हो गयी है;
स्वामीहीन द्वीप का वृथा अधिवास
विस्मृति में विलीन है,
मुक्ताविकच रक्त प्रवाल वन में
अप्सराओं की एकांत क्रीड़ा है।

फिर कभी-कभी
बादलों में छिपे हुए आलोक की ग्लानि
चेतन-अचेतन में

अजात दिनेर अन्ध हानि।
किन्तु एकदा सन्ध्यार आगे
स्नानजात्रार स्वर्णतरणी
मुक्त मर्त्यधामे :
दक्षिणे डोबे स्मित दिनमणि
पौर्णमासीर चन्द्रमा जागे बामे।
तार पर प्रति पलेर अभेद
दिवा ओ निशा
आने ना कालेर स्रोते विच्छेद
एमन कि आयु हाराय दिशा।
नित्य अन्तरीक्ष ओ जल
अतृप्त तृषा तथा कुतूहल
एवं दुराप दूर दिगन्त
मूर्त्त असन्धान,
ग्रीष्म, वर्षा, शीत, वसन्त,
से यवनिकार प्रतिभासे क्षीयमान।

तबु एसेछिल सहसा व्याघात
स्वगत ध्याने,
कठिन माटिर अभिसम्पात
वर्त्तेछिल कि अभिज्ञाने?
अन्तत दिते चेयेछिल घुष
मणि-कांचन जोगे प्रत्युष,
प्रशस्ति बले हयेछिल भुल
शंखचिलेर हासि,
मायावि पुलिने लोभेर प्रतुल,
देखेछ तरणी शून्ये अविश्वासी।

अजात दिवस के अंध विनाश को
निरंतर सघन करती लगती है।
किन्तु एक दिन संध्या से पहले,
स्नानयात्रा की स्वर्णसरणी
मर्त्यधाम में मुक्त हो जाती है:
दायीं ओर मुस्कराता हुआ दिनमणि डूबने लगता है,
और बायें पूर्णिमा का चंद्रमा जागता है।
उसके बाद पल-पल का भेद मिट जाता है,
दिन और रात से
काल के स्रोत में कोई विच्छेद नहीं पड़ता,
यहाँ तक कि आयु भी दिशा भूल जाती है।
नित्य अंतरिक्ष और जल
अतृप्त तृषा और कौतूहल
एवं दूरातिदूर दिगन्त—
मूर्त्त असंधान;
ग्रीष्म, वर्षा, शीत, बसंत
उसी यवनिका के आलोक में
क्षीण होते जाते हैं।

फिर भी यह स्वगत ध्यान
भंग हो गया।
कठोर मिट्टी का अभिशाप
किस चिन्ह में वर्तमान था ?
कम से कम मणिकांचन योग में
प्रत्यूष ने घूस देनी चाही थी;
सफेद चील की हँसी भूल से
प्रशंसा जैसी जान पड़ी थी,
मायावी पुलिन पर
इतना अधिक लोभ देखते ही
तरणी को शून्य में अविश्वास हो गया।

अनात्मीयेर मुख चेये आछि
से दिन थेके;
उंछ्र कुड़िये अगत्या बाँचि
निरुपार्जन निर्विवेके,
दृष्टिर सीमा मापे हिमगिरि,
पर्णकुटीरे दुर्जोगे फिरि,
सैकते एसे बसि कदाचित्।
अमार उपक्रमे
महार्णवेर सामसंगीत
हय तो वा सुनि शुक्तिर माध्यमे।

सुधीन्द्रनाथ दत्त

उसी दिन से किसी अनात्मीय के
मुख की ओर ताक रहा हूँ;
निरुपार्जन के निर्विवेक से लाचार होकर
चूरे को कुरेद-कुरेद कर दिन काटता हूँ,
दृष्टि की सीमा तो हिमगिरि को नापती है,
मैं दुर्भाग्यवश पर्णकुटी में वापिस लौटता हूँ।
अमावस्या के बहाने
कभी-कभी बालू पर आ कर बैठता हूँ,
और शायद
महासागर का सामसंगीत
सीपियों के माध्यम से सुनता रहता हूँ।

सुधीन्द्रनाथ दत्त

व्याध

आमार तूणीरे आछे शतशत मरणेर शर ।
फलके, अमोघ विष, धनुके रणन्-ठन टान ।
आमि सारा दिन हाँटि एइ वने सकाल विकेल,
गड़िये पहाड़ थेके राँगा रोड भाँगे खान् खान् ।
फुराय दिनेर आलो, राते शुधु बृहत् आकाश ।
तारार चुमकि फोटा, तारापुले भरा एक माठ,
तीर धनुकेर नीचे घुम घुम सराल मराल ।
घुम घुम कि निझुम से कि शुधु घुमेर बागान ?

आकाश बृहत् चाका । के घोराय ? कोथाय हातल ?
के जाय के जाय बले एका जेगे पाहाड़ेर नीचे
आमिइ डेकेछि ताके । से कि शुधु सुरेर प्रलाप ?
मादल बेजेछ राते से कि शुधु शिकारेर गान ?

व्याध

मेरे तूणीर में मरण के शतशत तीर हैं,
फलक में अमोघ विष है,
धनुष में रनन् ठन टंकार है।
मैं सारा दिन, सबेरे शाम,
इसी जंगल में भटकता रहता हूं,
ढालू पहाड़ी से उतर कर
रंगीन सड़क टुकड़े टुकड़े हो जाती है;
दिन का आलोक चुक जाता है,
और रात में रह जाता है
केवल फैला हुआ आकाश
जिसमें झिलमिलाते हुए
कामदानी के-से सितारे टँके जान पड़ते हैं,
अथवा लगता है
ताराफूलों से भरा कोई मैदान हो।
तीर-धनुष के नीचे सराल-मराल सोये-सोये-से हैं
कैसी सोयी-सोयी-सी निस्तब्धता है !
यह क्या केवल नींद का उपवन है ?

आकाश एक विशाल पहिया है।
कौन घुमाता है इसे ?
कहाँ है इस का हथेला !
'कौन है, कौन है' कह कर
अकेले जागते हुए
पहाड़ के नीचे से मैंने ही उसे पुकारा है।
वह क्या केवल स्वरों का प्रलाप है ?
रात में बजती हुई मादल से
क्या केवल शिकार का ही संगीत निकलता है ?

ज्वलेछि शुकनो पाता मिठे घुमे दिये इस्तफा,
देखेछि निजेर छाया काँपे एइ निबिड़ देयाले।
पाखिरा हठात् डाके गाछे गाछे तार परे चुप।
तीर धनुकेर नीचे घुमियेछे सराल मराल।
आमार तूणीरे आछे शतशत मरणेर शर
आगुन मादल मृत्यु आमि एक निबिड़ देयाल।

हरप्रसाद मित्र

मीठी नींद को छुट्टी देकर
मैंने सूखे पत्ते जला लिये हैं,
इस निविड़ दीवार के ऊपर
मैंने अपनी ही छाया काँपती देखी है;
अचानक ही
पेड़-पेड़ पर पक्षी पुकारते हैं
और फिर चुप हो जाते हैं।
तीर-धनुष के नीचे राजहंस सोये हैं।
मेरे तूणीर में मरण के शतशत तीर हैं
आग, मादल, मृत्यु—मैं एक निविड़ दीवार हूँ।

हरप्रसाद मित्र

म रा ठी

चयन : कुसुमावती देशपांडे
वा. ल. कुलकर्णी
मं. वि. राजाध्यक्ष

अनुवाद : प्रभाकर माचवे

कवि-नाम	कविता
'अनिल'	प्यास
इंदिरा सन्त	मृण्मयी
कुसुमाग्रज	कोई दिन
देशपांडे, ना. घ.	कब होगा मिलन
मर्ढेकर, बा. सी.	आया आषाढ सावन
मंगेश पाडगांवकर	प्रतीक्षा
मुक्तिबोध, शरच्चंद्र	यद्यपि कल का सपना टूटा
रेगे, पु. शि.	आओ पुनः
वसन्त बापट	बबूल का पेड
विन्दा करंदीकर	कूजन करता शुभ्र कबूतर

तहान

जिवाला लागते तहान जेव्हां
पिऊन घेतों अनंत ताऱ्यांनीं थरारलेली तरल हवा
सुखदु:खांचे ऊन-थंड श्वास
आशा-निराशांच्या अंतरंगांतील अदम्य विश्वास
मिसळोनी आर्द्र झालेली हवा

जिवाला लागते तहान जेव्हां
पिऊन घेतों आकाश-धरेच्या भास्वर रंगांचा स्निग्ध ओलावा
अवसेच्या काळ्या डोळ्यांतील पाणी
पुनवेच्या अंगीं रजतरंगाचे हिमसेक आणि
विना-किनाऱ्याच्या सागरावरचे निळे तुषार
गवतावरल्या लसलसत्या हिरव्यागार
रंगामधल्या दवबिंदूंचा स्निग्ध ओलावा

जिवाला लागते तहान जेव्हां
पिऊन घेतों जिवलगांच्या सहवासांतील तृप्त विसांवा
स्तन्य ओसंडितां बाळाच्या ओठीं
जड पापण्यांत झांकळतां दिठी
प्रिया-प्रियकर-मीलनाची सैल पडतां मिठी
आकंठ पूर्तीचा दिसे जो विश्रब्ध तृप्त विसांवा

जिवाला लागते तहान जेव्हां
पिऊन घेतों वासंतीं भिजल्या आठवणींचा ओला गारवा
मातीच्या उन्मत्त गंधांत न्हालेली प्रथम भेट
सागाच्या फुलांत चिंब झालेली खिन्न ताटातूट
प्राजक्तीच्या हारीं झिमझिम सरी पुष्पम्लिन
मोगऱ्याचा वास चिरसहवास
दुरावतां आणि दूरदुरून
पिकल्या धानाच्या सूक्ष्म सुवासाच्या आठवणींचा ओला गारवा

प्यास

लगती है जब जी को प्यास
पी लेता हूँ अनन्त तारों से कंपित तब तरल हवा.
सुख के दुख के गरम व ठंडे श्वास
आशा और निराशाओं के अंतरंग के अदम्य-से विश्वास
मिलकर बनती सजल हवा.

लगती है जब जी को प्यास
पी लेता हूँ नभ-धरती के भास्वर रंगों का तब स्निग्ध जलांश
मावस की कजरारी आँखों का पानी
रजत-रंग की पूनम के हिमसेक अंग के
बिना किनारे के सागर के नील तुषार
हरित-हरित लह-लह तृण-पल्लव के
रंगों में की ओस-बिन्दु का स्निग्ध जलांश

लगती है जब जी को प्यास
पी लेता हूँ तब प्रियजन के सहवासों का तृप्त विराम
स्तन्य उमड़ता जब बालक के ओठों पर
भारी पलकों में दृष्टि जरा ओझल होती
प्रिया-प्रियकरालिंगन का जब पाश शिथिल पड़ता है
पूर्ति भरा आकंठ और विश्रब्ध दिखाई देता है जो तृप्त विराम

लगती है जब जी को प्यास
पी लेता हूँ सुगंध-सिंचित सुधियों की शीतलता सजला
मिट्टी की उन्मत्त गंध में प्रथम भेंट जो न्हाई थी.
सागों के फूलों में ही फिर खिन्न विदा भीगी थी.
पारिजात के हारों में रिमझिम धारों का पुनर्मिलन
बेला सुवास सहवास चिरंतन
और दूरता दूर-दूर से लाती है जो
पके धान की सूक्ष्म गंध की सुधियों की शीतलता सजला

जिवाला लागते तहान जेव्हां
पिऊन घेतों स्मृतींच्या तंद्रींत मंद्र संगीताचा धुंद गोडवा
वेळूवनांतील नाजुक शीळ पतझडीची आर्त सळसळ
सागराचें घन-गंभीर गर्जित अस्ताईचे मंद खर्जातील सूर

सनईसारख्या कोवळ्या गळ्याची तीव्र हुरहूर
कपालाकाशांत शान्त घंटानाद
निर्याणगीताच्या शिंगाची साद
महाप्रस्थानाच्या प्रलयलयीच्या मंद्र संगीताचा धुंद गोडवा

'अनिल'

लगती है जब जी को प्यास
पी लेता हूँ तंद्रा में ही स्मृतियों की तब मंद्र गीत की मस्त मिठास
वेणुवनों की नाजुक सीटी, आर्त सरसराहट पतझर की
सागर-गर्जित घन-गंभीर खरज सुरावट मंद-मंद अस्ताई की

शहनाई जैसे मृदुल गले की तीव्र टीस
शान्त घंटिका-नाद कपालाकाश गुँजा
महाप्रयाण प्रलय लय के उस मंद्र-गीत की मस्त मिठास

'अनिल'

मृण्मयी

रक्तामध्यें ओढ मातिची
मनास मातीचें ताजेपण
मातींतुन मी आलें वरती
मातीचें मम अधुरें जीवन

कोसळतांना वर्षा अविरत
स्नान-समाधीमधें डुबावें
दंवांत भिजल्या प्राजक्तापरि
ओल्या शरदामधिं निथळावें

हेमंताचा ओढुन शेला
हळूच ओलें अंग टिपावें
वसंतांतलें फुलाफुलांचें
छापिल उंची पातळ ल्यावें

ग्रीष्माची नाजूक टोपली
उदवावा कचभार तिच्यावर
जर्द विजेचा मत्त केवडा
तिरकस माळावा वेणीवर

आणिक तुझिया लाख स्मृतींचे
खेळवीत पदरांत काजवे
उभें राहुनी असें अधांतरि
तुजला ध्यावें···तुजला ध्यावें !

इंदिरा सन्त

मृण्मयी

मिट्टी की रक्त में लगन है
मन में मिट्टी की ताज़गी
मिट्टी में से ऊपर आई
मिट्टी ही मेरी अधूरी ज़िंदगी

जब वर्षा अविरत झरती है
स्नान-समाधि लिये हम डूबें
शबनम-भीगे हरसिंगार से
गीली शारद-ऋतु में निखरे

हेमंती मैं ओढ़ दुशाला
धीमे पोंछूँ गीला यह तन
औ' वसंत की बूटों वाली
महँगी साड़ी पहनूं सुंदर

और ग्रीष्म के धूपायन पर
कच अपने धूपायित करके
मस्त केतकी-सी बिजली की
टेढ़े जूड़े माल सजाऊँ

और तुम्हारी लाखों सुधियाँ
अंचल में खद्योत खिलाऊँ;
धरा और अंबर बिच ठाड़ी,
तुझको ध्याऊँ····तुझ को ध्याऊँ

इंदिरा सन्त

एखादा दिवस

उसासे टाकीत जांभया देत
आज हा दिवस जाहला जागा
उदयगिरीच्या
निळ्या उशीवर
विषण्ण मस्तक रेलून राही
कोणत्या सुंदर स्वप्नाचा त्याच्या तुटला धागा !

मेघांची सांवळी जांभळी दुलई
विस्कटून त्याच्या पायाशीं लोळे
मधुनीच अंग
घेई लपेटून
अस्वस्थ मनानें पुन्हा दूर सारी
पापण्यांवरती रेंगाळे नीज स्वप्नार्त डोळे !

विशीर्ण किरणपुष्पांच्या पाकळ्या
दिसती विलग मंचकावर
बाहुपाशांतून
गेली जी निघून
तिच्या स्मरणानें पुरूरव्यापरी
काय हा व्याकुल उदास पुन्हा कामनातुर !

कुसुमाग्रज

कोई दिन

उच्छ्‌वास भरता, अंगड़ाइयाँ लेता
आज का दिन जगा
उदय गिरि के
नीले तकिये पर
विषण्ण मस्तक से झुका हुआ
किसी सुन्दर स्वप्न का उसका टूटा धागा।

मेघों की साँवली जामुनी रजाई
पैरों के पास फैली सलवटों भरी
बीच में ही बदन से
इसे लिपटाये
बेचैन मन से दूर उसे फेंकता
पलकों पर अब भी नींद है ठिठकी स्वप्नार्त आँखें।

विशीर्ण किरण-पुष्पों की पंखुरियाँ
दिखती अलग मंचक पर
बाहु-पाश में से
जो गई छूटकर
उस के स्मरण में पुरूरवा-जैसा
क्या है व्याकुल उदास पुनः कामनातुर ?

कुसुमाग्रज

कधीं व्हायचें मीलन ?

कुठवरी पाहूं आतां वरी चांदण्याचें जाळें
अवकाश काळें काळें ?

काय पाहूं आतां खालीं भूमि प्रस्तर पापाणीं
सागराचें पाणी पाणी ?

आसमंत हांसे खेळे भासे निरर्थ पसारा
जीव झाला वारा वारा.

सांपडेना वाट कोठें : हारवलें देहभान :
उदासलें माळरान.

भावनेच्या परागांनीं लिहियेलीं गूढ गाणीं
अंतराच्या पानोपानीं.

आतां भागले हे डोळे : भंवताली काळी रात :
कुठें पाहूं अंधारांत ?

काय नाहीं दया माया ? माझें जाळिसी जीवन
कधीं व्हायचें मीलन ?

ना. घ. देशपांडे

कब होगा मिलन ?

कब तक देखूँ अब मैं ऊपर जाता शशि-किरणों का पाश
काला-काला यह अवकाश ?

नीचे देखूँ ? केवल धरती प्रस्तर-मय ओ पाषाणी
सागर का पानी-पानी ?

आस-पास हँसता है खेल रहा है निरर्थ सारा वन
प्राण हुए ज्यों पवन पवन

कहीं राह सूझती नहीं है काया की चेतना गई
उदास खेती बनी हुई

पराग से भावना-पुष्प के लिखे गूढ़ गाने ऊपर
अंतर के हर पन्ने पर

अब तो आँखें थकीं, घिर चली रात, गहन काली हरसूँ
कहाँ अंधेरे में खोजूँ ?

नहीं दया माया क्या ? मेरा जला रहे क्यों रे जीवन ?
कब होगा अपना मिलन ?

ना. घ. देशपांडे

आला आषाढ श्रावण

आला आषाढ श्रावण
आल्या पावसाच्या सरी.
किति चातक-चोंचीनें
प्यावा वर्षा-ऋतु तरी!

काळ्या ढेकळांच्या गेला
गंध भरून कळ्यांत.
काळ्या डांबरी रस्त्याचा
झाला निर्मळ निवांत.

चाळीचाळींतून चिंब
ओलीं चिरगुटें झालीं.
ओल्या कौलार-कौलारीं
मेघ हुंगतात लाली.

ओल्या पानांतल्या रेषा
वाचतात ओले पक्षी
आणि पोपटी रंगाची
रान दाखवितें नक्षी.

ओशाळला येथें यम
वीज ओशाळली थोडी.
धांवणाऱ्या क्षणालाहि
आली ओलसर गोडी.

मनीं तापलेल्या तारा
जरा निवतात संथ.
येतां आषाढ श्रावण
निवतात दिशा पंथ.

आया आषाढ़ सावन

आया आषाढ़ सावन
आई पावस की झड़ी
कितनी चातक-चोंचों से
पिऊँ वर्षा ऋतु बड़ी !

काली मिट्टी के ढेलों का
गंध कलियों में आया;
काली कोलतार सड़कों पर
निर्मल निभृत समाया

चालों में भी भीजी हुई
चिन्दियाँ भी हुई गीली
गीले कवेलुओं पर से
मेघ सूँघते हैं लाली

गीले पत्रों पर रेखाएँ
पढ़ते हैं गीले पाखी
और तोतई रंगों की
जंगलों ने की नक्काशी

यहाँ शरमा गया यम
थोड़ी शरमाई बिजली
भागते हुए क्षणों को भी
मिली मधुरिमा गीली

मन के तपे हुए तार
जरा ठंडे हुए शान्त
आया आषाढ़ सावन
शीत हुए दिशा-पंथ

आला आषाढ श्रावण
आल्या पावसाच्या सरी.
किति चातक-चोंचीनें
प्यावा वर्षा-ऋतु तरी !

बा. सी. मर्ढेकर

आया आषाढ़ सावन
आई पावस की झड़ी
कितनी चातक-चोंचों से
पिऊँ वर्षा ऋतु बड़ी !

वा. सी. मर्ढेकर

प्रतीक्षा

कुंद रितेपण.
मान टाकुनी त्यावर झुरती
केविलवाणे शब्द !
चमचमती क्षण
आणि ठिबकुनी तमांत बुडती.
पुन्हा थंड''''निःस्तब्ध !

जाणिव आंतुन
पंखांपरि चिमणीच्या भिजल्या
फडफडते''''थरथरते !
आणिक बिचकुन
भिजलीं घेउनि पिसें हळुच
वळचणींत अंधुक शिरते !

अधिकच खुपते
स्थिरावलेले शब्द जिच्यावर
ती चिरपरिचित कक्षा !
मनांत उरते
काळोखांतच झुरझुरणारी
धूसर आर्त प्रतीक्षा !

मंगेश पाडगांवकर

प्रतीक्षा

कुंद रिक्तता
उस पर गर्दन लटकाए शोक करें,
दयनीय शब्द !
चम-चम क्षण
और शब्द झरकर अँधियारे में खो जाते
पुनः शीत···निस्तब्ध !

चेतना भीतरसे
चिड़िया के भीगे हुए परों-सी
फड़फड़ाती····थरथराती !
और चमक कर
भीगे हुए पंख ले धीमे से
धुँधली छत से गिरती जल-धारा में घुस जाती है !

और भी सालती है
स्थिर प्राय शब्द हैं जिस पर
वह चिर-परिचिता कक्षा !
मन में बची रहती है
अँधेरे में ही अकुलाती हुई
धूसर आर्त प्रतीक्षा !

मंगेश पाडगाँवकर

जरी कालचें स्वप्न तडकलें

जरी कालचें स्वप्न तडकलें
मुकाट हसते सुंदर आशा
यांत काय तें समजा एकच
कळी जन्मतः हरवी नाशा

दांत विचकते अजस्र जंगी
मंत्र उद्याच्या संहाराचे
तरी उद्यांचे तज्ज्ञ आंखती
नव्या जगाचे नवे नकाशे !

बुद्धि-भ्रंश बुद्धीचा झाला
सरळ भावना रडे पोरकी
हेंहि खरें कीं गहरी आस्था
शिरत तळाशीं मूळच हुडकी

कोसळणारे कोसळतीलच
डगडग हलते जीर्ण मनोरे
आणि उताणे होणारच ते
गगनीं भिडले ताबुत सारे

त्या सर्वांचें रक्षण करण्या
मुडदे उलतिल झाडांवरती
पोलादांचे राजे येउन
खिळे ठोकतिल ओठांवरती

—यांत काय तें समजा तरिही
डहाळ खचते लाल कळ्यांनीं
चैतन्याच्या याच विजेचे
झटके बसती जगीं आंतुनी

यद्यपि कल का सपना टूटा

यद्यपि कल का सपना टूटा
चुपके हँसती सुन्दर आश
इसमें क्या है समझो एकहि
कली जन्मतः हरती नाश !

दाँत पीसता अजस्र जंगी
यंत्र भविष्यत् संहारों का
फिर भी कल के विशेषज्ञ यों
आँक रहे नव जग का नक्शा !

बुद्धि-भ्रंश बुद्धि को हो गया
सरल भावना रोय अनाथिन !
यह भी सच है गहरी आस्था
तल में घुसकर मूल खोजती

जो गिरने वाली हैं, गिरेंगी
जीर्ण हिल रही डगमग मीनारें
और गगन तक भिड़े हुए
ताज़िये ज़मीन पर चित होंगे

उन सबका रक्षण करने को
वृक्षों पर मुर्दे झूलेंगे
इस्पातों के राजा आकर
ओठों पर कीले ठोकेंगे

इसमें क्या है समझो फिर भी
डाल लाल कलियों से लदती
इसी एक चैतन्य-विद्युत् के
जग को लगाते अन्दर से धक्के

'नको! नको!!' च्या सर्व भावना
त्यास कळेना नवा इशारा
प्रश्नाच्या चिन्हांत अडकुनी—
मान, उपटतो केस बिचारा!

नैराश्याचा नाजुक नखरा
श्रीमंतीची विरक्त वाणी
माणुसकीचें मर्म विसरतां
बुळींच ठरतिल चढेल गाणीं

जरी कालचें स्वप्न तडकलें
मुकाट हसते सुंदर आशा
यांत काय तें समजा एकच
कळी जन्मतः हरवी नाशा.

शरच्चंद्र मुक्तिबोध

'नहीं' 'नहीं' के भाव ये सभी ?
उन्हें न समझे नये इशारे
प्रश्न-चिह्न में गर्दन अटका
बाल नोंचते हैं बेचारे !

नाजुक नखरा नैराश्यों का
श्रीमंतों की विरक्त वाणी
मानवता का मरम भूलकर
पंगु बनेंगे बुलन्द गाने

यद्यपि कल का सपना टूटा
चुपके हँसती सुन्दर आशा
इस में क्या है समझो एकहि
कली जन्मतः हरती नाश !

शरच्चंद्र मुक्तिबोध

येइं पुन्हा

जपून जा, जपून जा.
चाहूल तुझी लागूं देउंस नको कुणा....
अन् वृक्षालतांवर दिसूं लागतां
जरा कुठें
कोवळिकेच्या नव्या खुणा
विसरून आधिंचे
बोल सोयिचे,
शब्द दिला कधिं उणा-दुणा
सोनसांवळी गंध-मंथरा
होउन येईं घरा पुन्हा....
येइं पुन्हा.

जपून जा, जपून जा.
जोंवर माझी हार-जीत ना ठावि कुणा....
अन मळ्यामळ्यांतुन
नवीन फुटतां कापुसबोंडें
उपजुन सारे
नवल आधिंचे
साज-साजिरा नवा-जुना.
लाज-हांसरी शुभ्र-मोगरी
होउन येईं घरा पुन्हा....
येइं पुन्हा....

पुरुषोत्तम शिवराम रेगे

आओ पुनः

सँभलकर जाओ, सँभलकर जाओ.
तुम्हारी पद-चाप कोई भाँप न ले····
और वृक्ष और लताओं पर जब दिखाई दे
ज़रा कहीं
नये अंकुरों की निशानियाँ
पुराने सब भूलकर
सुविधा के बोल
शब्द दिया हुआ कम-ज़्यादह.
सुनहली-साँवली गंध-मंथरा
बन करके घर आना....
आओ पुनः

सँभलकर जाओ, सँभलकर जाओ.
जब तक मेरी हार या जीत का किसी को पता न लगे....
और खेत-खेत में
नई-नई कपास की फुट्टी जब फूटे
फिर से चमकाकर सब
पहले का अचरज
साज-सुहावना नया-पुराना
लाज भरी हँसमुख शुभ्र मोगरे की कली
बन करके घर आना····
आओ पुनः····

पुरुषोत्तम शिवराम रेगे

बाभुळझाड

अस्सल लांकुड भक्कम गांठ
ताठर कणा टणक पाठ
वारा खात गारा खात बाभुळझाड उभेंच आहे

अस्थी-पंजर झाले फांटे
अंगावरचे पिकले कांटे
आभाळांत खुपसुन बोटें बाभुळझाड उभेंच आहे

छाताडाची ढलपी फुटली
अंगावरची लवलव मिटली
माथ्यावरची हळद विटली बाभुळझाड उभेंच आहे

जगलें आहे, जगतें आहे
काकुळतीनें बघतें आहे
खांद्यावरतीं सुताराचें घरटें घेऊन उभेंच आहे

टऽक् टऽक् टऽक् टऽक्
चिटर-फटक चिटर-फटक
सुतार-पक्षी म्हाताऱ्याला सोलत आहे, शोषत आहे

उरांत माझ्या सलतें आहे
आठवतें तें भलतें आहे
तसे वडील, असे आम्ही, आज मला कळतें आहे

वसंत बापट

बबूल का पेड़

असली लकड़ी है मजबूत गाँठों वाली
बिना झुकी रीढ़ की, पीठ बहुत सुदृढ़ है
हवा पीकर और ओले खाकर बबूल का पेड़ खड़ा ही है।

शाखें बनी हुई कंकाल
काँटे पके, बढ़ा जंजाल
आसमान में उरझाकर उँगलियाँ, बबूल का पेड़ खड़ा ही है।

छाती का फूटा बाँकपन
और बदन का मिटा लचीलपन
सिर पर की हल्दी भी फ़ीकी पड़ी, बबूल का पेड़ खड़ा ही है।

अब तक जिया, जी रहा है,
करुणा से देख रहा है
कंधे पर कठफोड़वे का घोंसला लिये, बबूल का पेड़ खड़ा ही है।

टऽक्-टऽक्-टऽक्-टऽक्
चिटर-फटक, चिटर-फटक,
कठफोड़ा सुनार पाँखी इस बूढ़े को छील रहा, शोषण करता है।

मेरे मन में साल रही
कुछ बात कहाँ की याद उठी
वैसे बुजुर्ग, ऐसे हैं हम, आज मुझे सब समझता है।

वसन्त बापट

तसेंच घुमतें शुभ्र कबूतर

मनांत माझ्या उंच मनोरे
उंच तयावर कबुतरखाना
शुभ्र कबूतर घुमतें तेथें
स्वप्नांचा खाउनिया दाणा.

शुभ्र कबूतर युगायुगांचें
कधीं जन्मलें ? आणि कशास्तव ?
किती दिवस हें घुमावयाचें ?
अर्थाविंचुन व्यर्थ न का रव ?

प्रश्न विचारी असे कुणी तरि.
कुणी देतसे अगम्य उत्तर !
गिरकी घेउन अपणाभंवतीं
तसेंच घुमतें शुभ्र कबूतर.

विंदा करंदीकर

कूजन करता शुभ्र कबूतर

मन में मेरे ऊँची मीनारें
ऊँचा उन पर कबूतरखाना
शुभ्र कबूतर करता कूजन
सपनों का खा करके दाना

युगों-युगों का शुभ्र कबूतर
कब जनमा है? और किसलिये?
कितने दिन तक होगा कूजन?
अर्थहीन रव व्यर्थ न क्या यह?

प्रश्न पूछता ऐसा कोई,
कोई देता अगम्य उत्तर,
चक्कर खाकर फिर वैसा ही
कूजन करता शुभ्र कबूतर

विंदा करंदीकर

मलयालम

चयन : का. माधव पणिक्कर

अनुवाद : श्रीमती रत्नमयीदेवी दीक्षित

कवि-नाम	कविता
अक्कित्तं अच्युतन् नंपूतिरी	*भूमि*
पी. कुंञ्जिरामन् नायर	*पुल्लुववाला*
का. मा. पणिक्कर	*छोटा पक्षी बड़े पक्षी के प्रति*
गोपाल पिळ्ळै	*केरल-मनोरथ*
गोपाल कुरुप्पु, वेण्णिक्कुळम्	*कन्हैया की मुसकान*
जी. शंकर कुरुप्पु	*गिरजे की घंटियाँ*
नालांकल्	*इंद्रजाल*
पाला नारायणन् नायर	*भेरी*
बालामणियम्मा नालपाट्टु	*क्या करें ?*
वळ्ळत्तोळ्	*मरुभूमि नहीं*

भूमि

देवमार्गवुं पारावारवुं धरणि नि-
र्जीव मेन्नाक्षेपिच्चा लायतलपत्वं तन्ने ।

अवर् तन् पोरल्लेरे कण्टताणल्लो भूवे !
तव जीवनिल् निन्नु कत्तिय तिरियां जान् ।

अंबरं तपस्सालेन्नादरं वरिच्चप्पोळ्
अंबुधि विक्षोभत्तालार्जिच्चितेन् वात्सल्यं ।

एंकिलुं कण्टील ज्ञानम्म तन् वदनत्तिल्
तंकुमीयुत्तेजक सौभाग्यमेङ्ङुं वेरे ।

कोटानकोटिप्पिञ्चु मक्कळेच्चोल्लि स्नेह-
च्चूटिनाल् निर्निद्रमां निन्टे कण्कुपिकळिल्

आद्यत्तेयमीवये पेट्टन्नु तोट्टे निलपु-
ण्टादर्शतपःक्षोभ पूर्णं मीयपक्वोचत्वे ।

निस्तन्द्र सर्गोन्मेषनिर्भरिक्षमे ! निन्ना-
लस्तित्वं पूण्टोरिन्नु चिरिच्चाल् चिरिच्चोट्टे ॥

अक्कित्तं अच्युतन् नंपूतिरी

भूमि

यदि आकाश और पारावार 'धरणी निर्जीव है' कहकर उपहास
करें तो यह उनके ही अल्पत्व का द्योतक होगा।

माँ पृथ्वी! मैं जो तुम्हारे प्राण-प्रकाश से सुलगी हुई वर्तिका हूँ,
उन दोनों के मूल्य को भली भाँति आँक चुका हूँ।

जब कि अंबर अपनी तपस्या के कारण मेरे आदर के योग्य बना है
तब अंबुधि अपने क्षोभ के कारण मेरे वात्सल्य का पात्र हुआ है।

परन्तु माँ, तुम्हारे मुख मंडल पर विराजित यह उत्तेजक सौन्दर्य
और कहीं नहीं दिखलाई दिया।

कोटि-कोटि सन्तानों की चिन्ता से व्याकुल, उनके प्रति स्नेह के
कारण निर्निद्र हुए तुम्हारे नयनों में,

उस प्राचीनतम दिन से, जबकि तुमने प्रथम 'अमीबा' को
जन्म दिया था, तप तथा क्षोभ से परिपूर्ण यह सारा आदर्श
सौन्दर्य तुममें विद्यमान है।

निस्तन्द्र वर्णन की शक्ति, उत्साह और उन्मेष रखने वाली
हे क्षमादेवी! जिन्होंने तुमसे अस्तित्व प्राप्त किया वे ही
आज तुमको देखकर हँसें, तो हँसने दो।

अक्कित्तं अच्युतन् नंपूतिरि

पुळ्ळुव पेण्कोटि

अन्तितन् पुपयुककर निन्निङ्ङु
वन्निरुङ्ङुं शशिकल पोले नी

आनन्दचारितापोळमेकुकेन्
गानकाव्य मधुगृहनायिके !

जीवरक्तासिरयिल् मुलप्पालिन्-
तूवमृतत्तिनोप्पं कलरुवान्,

पेट्ट नाट्टु पठिप्पिच्च पाट्टुकळ्,
एट्टु पाडुकेन् ग्रामीणकन्यके !

एत्रयोशताब्दङ्ङळ् तन् मामल-
क्कातुपिन्निट्टणञ्ञोरीप्पाट्टुकळ्

पञ्चमञ्ञिरकुकळ् कूट्टियि-
क्कोच्चुमण्कुटक्कूडणञ्ञीडुगू !

निन् कणवन्टे वीणये चुंबिच्चु
मण्कुटं तन्टे तुंबुरु मीट्टुंपोळ्,

मन्मथमणिप्पन्तुकळ् पोन्तुं निन्
हृत्तटं मधुमत्तिल् मयङ्ङुंपोळ्,

पार्श्ववर्तियां कान्तनोटोत्तुनी
पाट्टिलुळ् पुकलिञ्ञुचेर्न्निड्डुंपोळ्,

ग्राममध्याह्न निःशब्द निस्वनं
प्रेमगीत श्रुतियाय् चमयुंपोळ्,

पुल्लुव[1]-बाला

संध्यारूपी तटिनी के उस पार से इधर
आकर उतरने वाली, शशिकला-जैसी तुम,

जितना हो सके उतना आनंद-रस मुझे दो,
मेरे गानकाव्य-मधुगृह की हे नायिके !

माँ के दुग्धामृत के साथ जीवन-रक्त की
नाड़ियों में समा जाने के लिए

जन्मभूमि ने तुमको जो जो गीत सिखाये
उनको बारम्बार गाओ, मेरी ग्रामबालिके !

कितनी शताब्दियों के पूर्व अपनी पहाड़ियों की
पंक्ति को पार कर निकले हुए ये गान

हरी और पीली पंखुड़ियाँ लगाकर
इस छोटे-से मिट्टी के घट[2] में समाये जा रहे हैं।

जब तुम्हारे प्रिय की वीणा का चुंबन करके
यह छोटा-सा मिट्टी का घट अपना तँबूरा बजाता है,

जब मन्मथ के केलि-कन्दुकों (कुचों) को नृत्य कराता हुआ
तुम्हारा हृदय मत्त होकर झूमता है,

जब पार्श्वस्थ प्रियतम के साथ तुम
गान-माधुरी में विलीन हो जाती हो,

जब ग्राम-अंतराल का निःशब्द निःस्वन
प्रेमगीत की श्रुति बन जाता है,

---

१. पुल्लुव : सर्पदेवता को प्रसन्न करने के लिए घर घर घूम कर सर्प-गीत गानेवाली एक जाति-विशेष।

२. मिट्टी का घट : तंत्रवाद्य-विशेष में तुम्बे के स्थान पर लगा हुआ मिट्टी का छोटा-सा घड़ा।

निन्मिषिकळिलोळं तुळुम्पिप्पू
मण् मऱञ्ञ मलनाडप़्कुकळ् ।

कोय्तुकालक्कऱ़ु कप़ियवे
विट्ट पूवालिप्पैय्याय पाडवुं,

मेरमांपलक्कर वेञ्च पायल् को-
ण्टीऱ़ुं चुटि़ट़् निल्कुं कुळङ्ङळुं

पूमातिन् माणिमालयाय् सुट़्ट़त्ते
पूवणियिच्च नेल्क्कतिरकट़्ट़ुं,

गोक्कळोड्डोट्ट्यतुंगलसाणि-
योच्च पोङ्ङिप्पडर्न्न गोशालयुं,

सान्ध्यदीप्तियक्कु पोन्तिरिनित्यवुं
काप़्च वैय्कुं तुलसित्तरक्केट्टुम् ,

पोन् वेयिल् नल्कुमोणप्पुड चुटि़ट-
त्तेन्मलर चार्ति निल्कुमिग्रामवुं

काम्यसंकल्प वेषमेडुक्कुन्नू
ग्राम्यगाकुमी संगीतरंगत्तिल् ।

उळ्प्पोरुलिन् नरुंपाल् चुरत्तुम
सर्पगीतिकळा णिव योक्कयुं

इन्नुमज्ञातनीकृति पाटियोन्
तुञ्चनुं मुम्पुदिच्चु मरञ्ञवन्.

वेल्क नीरवमायोरु धर्ममे !
वेल्क नी मण् मऱञ्ञ सौन्दर्यमे ! ।

तब तुम्हारी आँखों में लहराता है—
मलइनाडु (पहाडी देश) केरल का वह सौंदर्य जो तिरोहित हो गया है।

फसल कटने का समय बीत जाने के कारण दूध सूख जाने से छुट्टा
छोड़ दी गई गाय के समान खेत,

कुमुदपुष्पों द्वारा मन्दहास फैलाकर और तट-देश की काई
के गीले वस्त्र पहन कर शोभायमान पुष्करिणियाँ,

आँगन को उत्फुल्ल बनाये हुए ऐश्वर्यलक्ष्मी की मणिमाला
के समान कटे हुए धान की राशि,

सिर थोड़ा-थोड़ा हिलाने के कारण गायों के कंठदेश से
निकलने वाले घंटिका-रव से मुखरित गोशाला,

प्रदोषसन्ध्या के प्रकाश को नित्य वर्तिका भेंट करने वाली तुलसी
की वेदी, सुवर्ण सूर्य-प्रकाश के दिये हुए नये वस्त्र पहनकर
मधुमय पुष्पों से सुसज्जित यह ग्राम

आदि बहुत कुछ इस ग्राम-संगीत के रंगमंच पर इच्छानुकूल
कल्पना में मूर्तिमान होता है।

ये सब ऐसे सर्पगीत हैं, जिन से हृदय के अन्तर्भाग में
भावना रूपी दुग्धामृत की धारा उमड़ने लगती है।

इन गीतों को जिसने सर्वप्रथम गाया वह आज भी अज्ञात है।
वह तुंचत्ताचार्य (कवि एषुत्तच्छन्) के भी पहले उदित हुआ और
अन्तर्हित भी हो गया।

हे नीरव धर्म! तुम्हारी जय हो! पृथ्वी के अन्दर तिरोहित
हुए सौन्दर्य! तुम्हारी जय हो!

उळ्वकुरुन्नोलि, सर्पगाथाकृति
नोक्कुमेटत्तिलोक्कयुं निर्मिप्पू,

पूतसंस्कार निक्षेपक्कोप्पुकळ्
भूतकालत्तिन् पाम्पणिक्कावुकळ्।

नाडितिन् निधि कात्तु संरक्षिच्च-
नागवीर्यत्तिन्नार्य प्रभावङ्ङळ्।

तेल्लिट पाट्टु पाडिय वण्णात्ति-
प्पुळ्ळु पोलवळेङ्ङो परक्किलुं,

पोङ्ङिवन्न नल् संकल्प सौरभं
तङ्ङि निन्नोरु मन्मनोरंगत्तिल्

पाट्टुकारितन् मण्कुटत्तिन् मट
विट्टिपड्ङिप्पशेत्तिय सत्कृति

पावनसिद्धि मौलियिल् चूडिच्च
भावना रत्न दीप्तियिल् स्नातयाय्,

नादताललयमोत्तु सुन्दर-
नागकन्ययाय् नर्तनमाडुन्नू।

चिङ्ङत्तिन् नेल्कतिराकुमग्गानं
मंगलमलयाळप्पूप्पन्तलिल्

पादमून्नुन्न पोन्नोणनाळुतन्
स्वागत गाथयायिच्चमयुन्नू।

पी. कुञ्जिरामन् नायर

सर्प-गाथाएँ सर्वत्र हृदय में आनन्द-प्रकाश फैलाती हैं।

अतीत के ये सर्पवन पवित्र संस्कृति के निक्षेप-भंडार हैं,

इस देश की निधियों का संरक्षण करने वाले
नाग-वीर्य के आर्य प्रभाव हैं।

थोडी देर गाने के बाद छोटी-सी पुळ्ळु[3] जैसी वह
कहीं उडकर चली गई, तो भी

मेरे मन रूपी रंगमंच पर, जिसमें कल्पना-सौरभ का
अंकुर धीरे-धीरे फूट उठा है,

उस गायिका के मृत्तिका-घट[4] से रेंग-रेंगकर निकली हुई वह सत्कृति,

पावन सिद्धि द्वारा मौलि में जड़े हुए भावना-रत्न की शोभा में
निमज्जित होकर,

सुन्दर नागकन्या-जैसी नाद, ताल, और लय के साथ
नृत्य कर रही है।

सिंहमास (श्रावण) की धान की फसल जैसा वह गान मंगल
मलयाल कुसुम-कुंज में प्रथम पदार्पण करने वाले ओणम्[5] दिवस की
स्वागत-गाथा बन जाता है।

पी. कुञ्ञिरामन् नायर

---

३. पुळ्ळु : प्रातःकाल गाने वाला एक छोटा पक्षी।

४. मृत्तिका-घट : देखो नंबर दो।

५. ओणम् : सिंहमास के श्रावण नक्षत्र के दिन मनाया जाने वाला केरल का सबसे बड़ा त्योहार।

चेरिय कुरुवि वलिय पक्षियोड

व्योमात्तिल् परन्नालुं पोङ्ङिन्नी पक्षिश्रेष्ठ !
ई मरक्कोम्बिल् वाप्वतेंतु ते चितमल्ला ।

अङ्ङ्ङळक्कु पेटि नल्कुं निन्टेयीक्कण्णु सूर्य-
भंगिये वीक्षिक्काते कीपोट्टु नोक्कुकयो ?

मौढियिल् चुट्टुं नोक्कि नी वाक्के पाप्पुळिल् ञान्
पेटिच्चु पञ्चपुच्छमटक्कि पतुङ्ङुन्नू ।

काट्टत्तु पायू विटर्त्ती कप्पल् पोल् परन्नु नी
पट्टुक वेगं मेघमंडलं महामते ।।

अप्पोळ् निन् प्राभवत्तोप्पाटि ञान् पुकप्त्तीटाम्
त्वत्प्रतापत्तिल् ञानुं तुंगाभिमानं कोळ्ळाम् ।

भीरुत मरक्कट्टे ञानू एन्टे बलहीना-
धीरमां नोक्कत्तिलुं सन्तोपमुदिक्कट्टे ।

ताप्त्तोळिच्चिवरिक्कुमिक्कोणु विट्टिरुङ्ङि ञान्.
नीनुं निखिळं वेलु कोण्टोट्टु सुखिक्कट्टे ।

नी वानमेत्तियुच्च स्थानत्ते नोक्किप्पोकू
केवलं हीनराय अङ्ङ्ङळे मरन्नेय्कू ।

वाप्त्तुवनप्पोल्-अङ्ङळीप्पक्षि वर्गीत्तिङ्ङ्कु-
ळुत्तमोत्तमन् नी तानेन्नहो गृध्रश्रेष्ठ !

का. मा. पणिक्कर

छोटा पक्षी : बड़े पक्षी के प्रति

हे विहंगमश्रेष्ठ! तुम व्योम-मार्ग में उड़ो, इस तरु शाखा में
बैठना तुम्हारे लिए उचित नहीं है।

अग्नि-गोलों के जैसे तुम्हारे ये नेत्र, जो हमारे-जैसों के लिए
भयावने हैं, सूर्य की सुन्दरता निरखने योग्य हैं। उनसे तुम नीचे की
ओर क्यों निहारते हो?

प्रौढ-गंभीर भाव से जब तुम चारों ओर देखते हो तब मैं भय से
सिमटकर अपने-आपको तुच्छ तृणों के बीच छिपा लेता हूँ।

हे महानुभाव, हवा में पाल फैलाये जाने वाले पोत के समान
तुम उड़कर मेघ-मंडल को अलंकृत करो।

तब तुम्हारे प्रभाव और वैभव के स्तुति गीत गा-गाकर तुम्हारी
उन्नति से मैं भी अभिमान-पुलकित होऊँगा।

अपनी कायरता को मैं भी भूल जाऊँ, अपने अशक्त अधीर
नयनों में भी उल्लास की चन्द्रिका छिटका दूँ!

दुबककर, छिपकर जिस कोने में अब तक बैठा हूँ, उससे मैं भी
बाहर निकल पाऊँ! मैं भी इस हलकी धूप का सुख अनुभव कर सकूं!

तुम आकाश के उच्चतम स्थान का संधान करके वहाँ पहुँच जाओ।
हम दीन-हीनों को भुला दो; तब हे गृध्रश्रेष्ट, हम भी तुम्हारी
प्रशस्ति गायेंगे कि पक्षिवर्ग में सर्वोत्तम तुम हो।

का. मा. पणिक्कर

केरल मनोरथं

वरिक, महात्मावे ! श्री महाबले ! वीण्डुं
अरिय तृच्चेवटि एन नाडु पुल्कीडट्टे ।

ओरुकालवुमोडुङ्ङीडात्त राज्यस्नेहं
तिर तल्लीडुमोरु भावत्क हृदन्तरं ।

उल्लोलमायीडट्टे ई मलनाट्टिल् कान्ति-
कल्लोलङ्ङळिल् नीन्तिकुळमयीन्ति वीण्डुं ।

मंगल हैमकुंभकोमळनारीकेळी-
रंगङ्ङळितेयेङ्ङुमङ्ङये एतिरेल्पू ।

मिलितानन्दमिन्नी नवसंगमत्तिनाल्
पुळकं पेर्तु पूण्ट पश्चिम रत्नाकरं ।

तारगंभीरस्वरं स्वागतमाशंसिच्चु
तारंगहस्तं नीट्टि नमिप्पू वीण्डुं वीण्डुं ।
वरिक महात्मावे ....

मणलुं तेजुमूरुं पूक्कळ् तळिरुकळ्
इणाक्कि मुट्टं तोरुं मपाविल्लुकळ् चार्ति ।

परक्कुं पूंपाट्टकळ्किंडियिलाडिप्पाडुं
निरत्तमञ्ञत्तुकिलणिञ्ञोरिप्पैतङ्ङळ् ।

तन्मञ्जुमुखङ्ङ्ळालपिंक्कयाणङ्ङेयुक्
नन्मुत्तुं पविषवुं कोर्तुळ्ळ वार् मालकळ् ।

केरल-मनोरथ

आइए महात्मन्! श्रीमहाबलि! फिर से
आपके मोहन श्रीचरणों का मेरा देश आलिंगन कर पाये!

कदापि अन्त न होने वाला राज्यस्नेह
आपके जिस हृदयान्तर में लहरें भरता है,

वह इस मलइनाडु (पहाड़ी देश) के कान्ति-कल्लोल में तैरकर
शीतलता अनुभव करके और भी तरंगित हो उठे!

मंगल हेमकुंभों से अलंकृत रमणीय बने नारिकेलि-[1] रंगमंच
सभी स्थानों में आपका स्वागत कर रहे हैं।

इस नव-संगम के आनन्द से
पुलकित पश्चिम सागर

तार-गंभीर स्वर से आपका स्वागत कर रहा है
और तरंग रूपी हाथों से बार-बार नमस्कार करता है।
आइए महात्मन्!

सौरभ्य तथा मधु दोनों से भरे हुए विविध कुसुमों के दलों को
मिलाकर आँगन-आँगन में इन्द्रधनुष का निर्माण करते हुए

उड़ने वाले इन शलभों (तितलियों) के बीच नाचते-गाते उल्लसित
होने वाले पीले वस्त्र पहने हुए ये शिशुगण

अपने मंजुमुखों से हँस-हँसकर (और दंतावलियाँ खिलाकर) सुन्दर मोती
और प्रवाल मिलाकर गूँथी हुई मालाएँ आपको अर्पित कर रहे हैं।

---

१. यहाँ नारिकेलि में श्लेष है—एक अर्थ है स्वर्णवर्ण कुंभों के समान नारियल के फलों से सुशोभित वाटिकाएँ; दूसरा अर्थ है, हेम-कुंभों के समान वक्षोजों वाली सुन्दरियों के क्रीडास्थल।

नरुंपोन् नेल्लिन् कतिर् तूङ्ङि चेञ्चुण्टिल् पच्च-
च्चिरकु वितिर्त्तिङ्ङुपरक्कुं किळिक्कूट्टं ।

अविडेयुक्केपुवल्लात्तिन्नु नल् पट्टुकुडा
अविकलाभोज्वलं किळर्त्तिङ्ङु वानिल् ।
वरिक महात्मावे !.... ....

चारु कल्हारसूनं विरियुं सररसुकळ्
तारकावलि राविल् विरियुं विहायस्सुं ।

केरळावनियिलिङ्ङङ्ङये एतिरेल्कान्
तोरणहारं तीर्कान् तारकळोरुक्कुन्नू ।

अन्नविडुन्नी नाडु वाणरुळिय कालं
उन्नतसौभाग्यङ्ङळ् एङ्ङुमे सम्मेळिच्चू ।

सर्वमानवसमानत्ववुं सुभिक्षवुं
निर्व्याजनीतिन्यायानिष्ठयुं प्रतिष्ठयुं ।

आ मनोहर काल मधुरस्मरणयिल्
आमग्न मिन्नोळवुं केरळमनोरथं ।

अङ्ङळ् तन् प्रतीक्षकळ करिञ्ञ पुकक्कोण्टु
मङ्ङिय शताब्दंङ्ङळेत्रयो कटन्नुपोयू ।

अविडेयुक्कनन्तरसेत्रयो नरेन्द्रन्मार् ।
अवनित्राणोत्सुकुरन्नु कपिन्नोपोयू ।

इरुळं काट्टुं कोळुमन्नु वन्नी वञ्चि,
कर काणात्तकटलपरप्पिलणञ्ञितो ?

इन्निते श्री भारत साम्राज्यं स्वतंत्रमायू
धन्यमां प्रजा स्वाम्यं कैवकोण्टु विजयिप्पू

अपनी लाल-लाल चोंचों में धान की स्वर्णवर्ण बालें लिये हुए,
अपने हरितवर्ण पंख फैलाकर
आकाश में उड़ने वाले ये पक्षिवृन्द

आपकी रथयात्रा (जुलूस) पर मानो अति मनोहर उज्ज्वल रेशमी
छत्ते खोलकर ऊँचे उठाये हुए हैं।
आइए महात्मन् !

ये सरोवर जिनमें कल्हारपुष्प विकसित होते हैं, और
यह विहायस (आकाश) जिसमें रात्रि को तारकावलियाँ विकसित होती हैं—

दोनों ही—केरल भूमि में आपके स्वागतार्थ स्थान-स्थान पर
तोरण बाँधने के लिए सुमनों का संचय कर रहे हैं।

जब आप इस देश का शासन कर रहे थे
तब सर्वत्र सौभाग्य और ऐश्वर्य का विलास था।

मानव-मात्र के समत्व, सुभिक्षता, निर्व्याज
नीति-न्याय-निष्ठा एवं प्रतिष्ठा का बोल-बाला था।

केरल का मनोरूपी रथ आज तक उस
मनोहर काल की मधुर स्मृतियों में ही मग्न है।

हमारी प्रतीक्षाओं को जलाकर उठने वाले धुएँ से
मलिन होकर कितनी शताब्दियाँ निकल गईं !

आपके बाद कितने-कितने नरेन्द्र भूमि का पालन करने को
उत्सुक रहे, और काल-कवलित हो गए !

तब-तब यह नौका अनन्त विस्तृत सागर के बीच
आँधी, अंधकार आदि में फँस ही नहीं गई ?

आज भारतभूमि स्वतंत्र साम्राज्य बन गई है,
श्लाघनीय प्रजातंत्र को अपनाकर विजयी हुई है।

आ महासाम्राज्यत्तिन्नन्यून घटकमाय्
क्षेम सौभाग्यं सर्वलोकवक्कुं वळर्तुवान् ।

आशयुं प्रतीक्षयुमाय् ङङ्ङळ् मुन्नेरन्नु-
ण्टाश्वासमरीचिकळ् मिन्नुन्नुण्टाङ्ङिङ्ङाय् ।

एन्नुमोरोणक्कालमिम्मन्निल् मुन्नेप्पोले
वन्नुचेर्नीडान् ङङ्ङळोशिच्चुपासिच्चीडुं ।

तवकुंजुङ्ङळोशिच्चसमत्वङ्ङळेल्ला,
मकट्टिट्टगृहं तोरुमैश्वर्यं कोळुत्तीडुं ।

प्रेमवुं सौन्दर्यवुं शान्तियुं पुष्पिच्चुळ्ळ-
तूमणं परत्तीडु मीमान्निलिनिमेलिल् ।

इरुळिल् कूडियिते यकले किपक्कायि-
ट्टरुणोदयत्तिण्टे किरणोत्करं काणमू ।

वरिक, महात्मावे ! श्री महाबले ! वीण्टुं
वरिक पूर्वाधिक सौभाग्यपूरं काण्मान् ।

पन. गोपाल पिळ्ळै

उस महा साम्राज्य के अन्यून घटक बनकर
विश्व में क्षेम तथा सौभाग्य की वृद्धि करने के लिए

आशा और प्रतीक्षा लेकर हम लोग आगे बढ़ना चाहते हैं,
और इधर-उधर, कहीं-कहीं, सांत्वना-मरीचि भी चमक रही है।

पहले के समान अर्थात् आपके शासन काल के समान प्रतिदिन
ओणं[२] ही होता रहे इसके लिए हम सब मिलकर प्रयत्न करेंगे।

हम सब मिलकर सब प्रकार के असमत्व को चूर-चूर कर देंगे।
और प्रत्येक गृह में ऐश्वर्य-दीप जलायेंगे।

आगे चलकर प्रेम, सौन्दर्य तथा शान्ति के पुष्प प्रफुल्लित होंगे
और उनसे निकला परिमल सारे विश्व में फैलेगा।

अंधकार को चीरकर वह दूर, बहुत दूर, पूर्व दिशा में,
अरुणोदय का किरणोत्कर दिखाई दे रहा है।

आइए हे महात्मन्, श्रीमहाबलि, फिर से आइये!
पूर्वाधिक सौभाग्य देखकर आनंदित होने के लिए आइए!

एन. गोपाल पिळ्ळै

---

२. महाबलि के राज्य में प्रजा हर प्रकार से सुखी थी, और सब में समत्व की भावना थी। पुरानी केरलीय मान्यता के अनुसार श्रावण मास के श्रावण नक्षत्र के दिन महाबलि अपने राज्य में आते हैं और प्रत्येक घर को देखते हैं (इसी दिन—'श्रावण'—का अपभ्रंश है 'श्री ओणं' उससे 'तिरु ओणं'। 'ओणं' इसका संक्षिप्त रूप है)। इस दिन महाबलि के स्वागत के लिए केरलीय जनता उत्सव मनाती है। अच्छा भोजन, अच्छे नये वस्त्र और समत्व का व्यवहार आदि इस उत्सव की विशेषताएँ हैं। प्रत्येक दिन 'ओणं' हो का अर्थ है, प्रत्येक दिन ऐसे ही उत्सव का हो, त्योहार का हो। प्राचीन काल से अब तक 'ओणं' केरल का सब से बड़ा त्योहार बना हुआ है।

कण्णन्टे चिरि

मुप्पता जन्मनाळ् वन्नुचेरुं
सुप्रभातत्तिलस्सुन्दरांगी
नीरलर्प्पोयूकयिल् पोयिमुङ्ङि
नीडुट्ट भक्तियोडोत्तिणङ्ङि
कारोळि कप्पं कोडुत्तिडुन्नो-
रीरन् चुरुळ्मुडि तुम्पुकेट्टि
कण्णन्टे कोमळ चित्र मोंचिल्
कणुरप्पिच्चु कोण्टुच्चरिच्चाळ्....

एन्मनं नीरुन्न नीट्टलेल्ला-
मेङ्ङने चोल्लुमेन् तंपुराने ।
अल्ललालंग पिटञ्ञु केपान्
शल्यमोन्नुळ्ळिलुण्टाकुमेन्नुं
अन्तरंगत्तिल् तरङ्गिरिप्पू
वन्ध्यतारूपत्तिलायतेन्निल् ।
नेञ्चिले वेदन गारुमो हा-
पुञ्चिरिच्चातिर्ल् पोतिञ्ञु वेच्चाल् ?

वित्तवुं विद्ययुं प्राभववुं
नृत्तमाटुन्निडमेन् कुडुंवं

सूरीन्द्रपुत्रतन् शीलवान्मा
पूरुषनेन्टे करं पिटिच्चू.

उळ्क्कळमानन्द पूर्णमेन्ना
योक्कयुं भाग्यगेन्नोतुपोयी ।

केळि पेट्टुळ्ळोरम्मोहनमां
वेळि कोण्टाडिय नाळ्कुशेषम्

कन्हैया की मुसकान

तीसवाँ जन्मदिन पूर्ण होने के
सुप्रभात में, वह सुन्दरी
शीतल जल भरी पुष्करिणी में निमज्जन करके
अत्यन्त भक्ति के साथ
काले बादलों को भी मात करने वाले
अपने गीले, घुँघराले बालों का सिरा बाँध और उन्हें पीठ पर लटकाकर,
कन्हैया के चित्र पर
आँखें जमा कर बोलने लगी—

"मेरा हृदय जो जल रहा है,
उसका मैं कैसे वर्णन करूँ भगवन् !
पीड़ा से तड़प कर रोने के लिए
एक काँटा प्रत्येक के अन्तर में सदा चुभा रहता है।
वह मेरे हृदय में चुभा हुआ है
वन्ध्यता के रूप में।
क्या हृदय की वह वेदना मिट जायेगी,
मुसकान में उसे छिपा लें तो?

मेरा परिवार वित्त, विद्या, प्रभुत्व—सबकी नृत्यस्थली है।

एक महाविद्वान् और सुशील पुरुषश्रेष्ठ ने मेरा पाणिग्रहण किया।

हृदय आनन्द से भर गया और समझ लिया कि मुझे सभी सौभाग्य प्राप्त हैं।

मोडियुकोरीरेषु पोन्नणिकळ
मेडत्तळिकयिल् कण्टुगङ्ङळ् ।

कण्णिन्नु विण्णिन् विभुकाणिया-
मुण्णित्तिरुमुखं कण्टतिल्ला ।

पोन् किटाविल्लेन्नु वन्नुपोयाल्
मङ्कमार्केन्तिनुं यौवनश्री ?

पावमयल्कारियाय ' गौरि '
जीवनत्तिन् वपि कण्टडाते.

खिन्नतासूचियां नोट्टमोडे
तन्निळं पैतले नोक्किलेन्ति

नीट्टिय कैय्युगायेन्टे गुंपिल्
धीट्टिन्टे गुट्टत्तु निन्निङ्ङुम्पोळ्

अम्महादारिद्र्यमन्नपोलु-
मम्मयाणेन्नु ञानोर्त्तुपोकुं

कुन्निवकुमैश्वर्यं मेन्तिनाके
कुञ्ञिक्काल् काणात्त मंदिरत्तिल्

भाग्यं विपय्क्कयाणेन्तुकोण्टो
पूक्किलुं कायकात्त वल्लियाय् ञान् ।

तीविन ताङ्ङुवान् मात्रमावा-
मीवयर् तन्नतु दैवमय्यो ।।

चेणेपुं मारेन्टे मारिडत्तिल्
पूणारमायित्तिळङ्ङुवानुं

पंचवर्णक्किळिपोले कोञ्चि
येन् चेवियकुत्सवं नल्कुवानुं

वह प्रख्यात, सुन्दर सम्मिलन सम्पन्न होने के उपरान्त,
हमने चैत्र की थाली में[1] दो-चार-सात (चौदह) सुवर्ण प्रभातों का
दर्शन किया।
किन्तु आँखों के लिए स्वर्ग की 'विपुकणि[2]'—शिशु—के श्रीमुख का
दर्शन अब तक नहीं हो पाया!
यदि प्यारा-सा लाल न हुआ तो स्त्रियों के लिए यौवनश्री किस
काम की?
बेचारी पड़ोस की गौरी, जीविका का दूसरा मार्ग न देख कर
खिन्नता-द्योतक दृष्टि के साथ, अपने नन्हे से बच्चे को गोद में लेकर
जब हाथ पसारती हुई, घर के आँगन में मेरे सामने आकर
खड़ी होती है
तब वह महादारिद्र्य-मग्न स्त्री भी एक माँ है, ऐसा मुझे स्मरण
हो आता है।
बढ़ती हुई सम्पत्-समृद्धि किस लिए, यदि एक नन्हा-सा पग घर में
न दिखलाई देता हो?
पता नहीं क्यों विधि इस प्रकार विमुख हो गया! मैं ऐसी लता बनी,
जिसमें फूल होने पर भी फल नहीं निकलते!
भीषण दुःख-ज्वाला धारण करने के लिए ही ईश्वर ने
मुझे यह उदर दिया है क्या?
अति मनोहर रूप में, मेरे वक्षस्थल के हार के समान चमकने के लिए,
पंचरंगे शुक-शिशु के समान मधुमय वाणी से
कल-कूजन करके मेरे श्रवणों को आनन्द देने के लिए,

---

१. केरल में चैत्र मास की प्रथम तिथि मंगलमय मानी जाती है। उस दिन अष्ट-मंगल सज्जित थाल में प्रभात-दर्शन किया जाता है। जिसे 'कणि' कहते हैं। 'चैत्र की थाली में चौदह प्रभात देखे' का अर्थ है, चौदह वर्ष पूर्ण हो गये।

२. चैत्र की पहली तिथि को सूर्य ठीक पूर्व में उदित होता है। उस दिन को 'विषु' कहते हैं। अतएव 'स्वर्ग की विपुकणि' का अर्थ होता है, चैत्र की पहली तिथि को मंगलथाल में स्वर्गसुलभ अथवा दिव्य प्रभात दर्शन।

चेंकपल्लवियेन् शैय्ययाके
पंकमुदांकित माक्कुवानुम्

काणुन्नतोक्कयुं कैक्कलाक्कि
काल्मान्न कोण्टु तकर्कुवानुम्

इल्लोरु पैतलीवीट्टिलेन्नेन्
वल्लवीवल्लभ ! काण्मतिल्ले ?

कण्णुनीर् तूकियात्तन्वि निल्के
कण्णन् चिरियूकुकयायिरुन्नू ।

गोपाल कुरुप्पु, वेण्णिक्कुळम्

छोटी-छोटी लाल लाल-पैयाँ रखकर मेरी सेज को
पंक-मुद्रा से अलंकृत करने के लिए,

जो कुछ सामने आये सबको क्षणार्ध में छिन्न-भिन्न कर देने के लिए,

इस घर में एक नन्हा-सा शिशु नहीं है—
हे गोपीवल्लभ! तुम देखते नहीं ?"

जब वह युवती आँखों से आँसू ढालती हुई खड़ी थी,
कन्हैया मुसकरा रहा था।

गोपाल कुरुप्पु, वेण्णिक्कुळम्

पळ्ळि मणिकळ्

अपकेषुं पापं पट्टुत्तुयर्त्तिय
पषय पारिनेयषिच्चु कूट्टानुं,
कणक्कु तेट्टिय मुपक्कोल् कोण्टळ-
न्निणाक्कियतेन्नु वेळिप्पेट्टुत्तानुं
पिरन्नु पोल् बत्लं, नगरियिल् दया,
निरयुमात्मावोटोरु कोच्चाशारि !
मिषियिडयुमारटित्तर कुन्नुं
कुषियुमाय् कण्टिट्टतु निरप्पाक्कान्
मिकुमिरुळिल् निन्निळिच्चुकाट्टुन्न
चेकुत्तानेयटिच्चुटन् पुरत्ताक्कान्
प्रतिनवरवर्य प्रकाशवुं काट्टम्
अतिल् कटक्कुवान् जनालकळ् वैकान्,
चिरकुकळान्नोरनुग्रहङ्ङळ्कुं
पिरक्कुवानुषि सुकृतवत्ताक्कान्,
उषरिपोल्;---मर्त्यकृतघ्नत चेत्ता---,
मुपक्कोलुं वाङ्ङियोटिच्चु रण्टाक्कि,
कुरिशोन्नुण्टाक्कियतिल् जगत्पुण्य-
चरित शिल्पिये स्वयं तरच्चु पोल्।
मधुरवेदनं विलपनं पळ्ळि-
मणिकळे ! निङ्ङल् वृथा मुषक्कुन्नु !
चरित्रभित्ति मेलवन्टे कंकाळ,
मरिमयिल वेच्चू मनुष्यसंस्कारं !
करञ्ञुपोकुन्नु मणिकळे ! पक्षे,
कवितन् मानसं करयुंपोळ् निङ्ङळ् ॥

जी. शंकर कुरुप्पु

गिरजे की घंटियाँ

सुना जाता है

सौन्दर्यमय पाप की नींव पर जमा कर ऊँचे खड़े किये गये
इस संसार-प्रासाद को तोड़-फेंकने के लिए

और उस के निर्माण में उपयोग किये गये
गलत मापदंड को प्रकट करने के लिए

बैतलहम नगरी में करुणा से परिपूर्ण हृदय वाला
एक छोटा-सा बढ़ई पैदा हुआ था।

भूमि को आँखों में खटकने-जैसी ऊँची-नीची
देखकर समान बनाने के लिए,

अंधेरे कोनों से दाँत निकाल कर उपहास करने वाले शैतान को मार भगाने के लिए, उन अँधेरी कोठरियों में स्वर्गीय प्रकाश और शान्त पवन का प्रवेश कराने के हेतु खिड़कियाँ लगाने के लिए,

भूमि को पक्षयुक्त अनुग्रह उत्पन्न करने योग्य सुकृतमय बनाने के लिए

वह व्याकुल हो उठा। और मानव की कृतघ्नता ने जाकर उसके मापदंड को छीन लिया और दो टुकड़े कर दिया।

और उन टुकड़ों से शूली बनाई और जगत् का पावन इतिहास निर्मित करने वाले उस शिल्पी को ही उस पर चढ़ा दिया!

हे गिरजाघर की घंटियो, तुम मधुर वेदनायुक्त गूँज से विलाप क्यों करती हो? यह वृथा है।

मनुष्य की संस्कृति ने उसके कंकाल को इतिहास की दीवारों पर टाँग दिया है, परंतु घंटियो, कवि का हृदय जब रोता है, तुम भी साथ रो पड़ती हो।

जी. शंकर कुरुप्पु

जाल विद्या

वीणतन् पोन् तंत्रि मीट्टि मदालसं
येणार्न नीलारविन्द मिषिकळाल्
काणिकळ्कायूकोण्डु पारिजातत्तणल्
भागिञ्चु नलकिटुं लावण्यपूरमे ! ।
पारिल् नीयेन्तिनु वन्नु सुखत्तिन्टे,
नेरिय सौरभोन्मादं पकरुवान् ?
अल् तेट्टिप्पोय् निराशत तन्नुटे
वल्लात्त कूरिरुळ्ळली चोरिवू नी !!

अल्पेनेरत्तयक्कु मद्यं कणक्कु
निश्चल्पेतरमाय पीयूप वीचिकळ्
स्वप्नलोकत्तिलेक्केत्तिप्पु चित्तङ्ङळ्
मत्ताडिप्पिक्कान् तमरिसन् कुपिकलिल् ।
वेणूचन्द्रिकपोल् तिळक्कमालुन्न निन्
पुञ्चिरि पोलुं विपलिप्तमलयो ?
माणिक्यरत्नं शिरस्सिलणिञ्ञिडुं
नागमे ! निन्ने भयप्पेटुन्नेकिलुं
एतो विकारङ्ङळ् निन्नरिकत्तेतु
चेतस्सिनयुं नयिप्पू दिवानिशं

कोञ्चि कुपयुमोरु ओडि पिन्नीडु
नेत्रं पिळार्न्निडुं क्रूरनोट्टङ्ङळाल्
मोदवुं शोकवुं मारि मारित्तरु
मायिक माकुं मतीक्षे ! जयिप्पु नी
पोन्निन् कुपलुं विळिच्चिन्द्रजालङ्ङळ्
मन्निने काट्टि मयक्कान् वरुन्नु नी ।

नालांकल्

इंद्रजाल

वीणा की सुवर्ण तंत्रियों पर अँगुली चलाती हुई, मदालस गति से चलती-चलती, सुन्दर नील अरविन्द नयनों से

दर्शकों को पारिजात-वृक्ष की छाया बाँटने वाली, हे लावण्यमूर्ति! संसार में तुम क्यों आईं? सुख का हलका सा सुगन्धोन्माद प्रदान करने के लिए?

नहीं, भूल हो गई! तुम तो निराशा का भयानक अंधकार ही बरसाने वाली हो!

मद्य की जैसी तुम्हारी अमृत-लहरी, क्षणमात्र के लिए, मानव-मानसों को स्वप्नलोक में पहुँचा देती है, जो दूसरे ही क्षण अंधकार के गर्तों में डूब जाते हैं।

दुग्धमय चन्द्रिका जैसा प्रकाशमय तुम्हारा मन्दहास भी विषलिप्त है न? शिर के ऊपर माणिक्य-रत्न सजाये हुए, हे नागिनी! तुम से हम डरते हैं। तब भी कुछ भावनाएँ प्रत्येक हृदय को सदा तुम्हारी ओर आकर्षित करती रहती हैं।

तुम एक क्षण मटकती हुई मोहिनी बनी दीखती हो, दूसरे ही क्षण क्रूर वीक्षणों से हृदय को वेध देती हो!

हर्ष और शोक बारी बारी से देने वाली, हे मायामयी प्रतीक्षा! तुम्हारी जय हो!

कांचन-काहल (सोने की भेरी) बजाती हुई, इन्द्रजाल दिखाकर विश्व को मोहित करने के लिए ही तुम आती हो!

नालांकल्

काहळं

कण्णु तुरक्कुविन् केरळमक्कळे ।
विण्णु विट्टेत्तुन्नु पूंकुलकळ्
सर्वसहयिलो स्वातन्त्र्य कान्तियिल्
सर्वोदय-त्तिन्टे पूंकुलकळ् ।

हन्त ! पतितरे ! निङ्ङळ्कुं कैवन्नु
गन्धवुं पून्तेनुं पूंपोटियुं
गर्वुकिळ् विट्टुळ्ळ वित्तेशर निङ्ङळ्कु
निर्वृतिचेप्पुमाय् कात्तुनिल्पू
पावङ्ङळ् निङ्ङळेपोट्टुवान् वात्सल्य-
भावङ्ङळेङ्ङुमुणर्न्नु निल्पू ।

तेट्टुकळोट्टेरे चैतुपोय् संपन्नर
कोट्टकुडक्कीपिल् निल्कुकयाल्,
तेट्टेन्नव तिरुत्तिडुकयल्लाते,
मट्टोन्नुमिल्लवर्कातमशान्ति ।

पट्टिणिप्पातयिल् वीणोर्कु भूदान-
प्पट्टयं नल्कुं धनाढ्यर् मेलिल्
विप्लवत्तीयिल् करियोला विश्रान्तिन
विस्फुरसौभाग्य कन्दळङ्ङळ्
वायुवुं वेळ्ळवुं पोलवे भूमियुं
वायुं वरुत्तुळ्ळोर्कु वेणम् ।

मोडिक्कु जीविक्कान् गान्धि जी नाल्पतु,
कोटिकुं स्वातन्त्र्य मेकियेकिल्
भूमिवकुटमकळाकान् विनायक-
स्वामिक्कु तोन्नी गुरुप्रसादाल्
सिद्धिकळेन्नुमुण्टावां गायत्रि
नित्यंजपिकुन्न भारतत्तिल्

भेरी

आँखें खोलो ! केरल की संतानो !
आकाश छोड़कर कुसुम-मंजरियाँ आ रही हैं !
सर्वंसहा के इस स्वातंत्र्य-प्रकाश में
सर्वोदय की कुसुम-मंजरियाँ !

दलित लोगो ! हरिजनो ! तुमको भी मिला
सुगन्ध, मधुर मधु और पुष्प-पराग !
पूँजीपति गर्व छोड़कर तुम्हारे लिए
निर्वृतिपात्र लिये तुम्हारी राह देख रहे हैं।
तुम गरीबों को सँभालने के लिए
वात्सल्य-भाव सर्वत्र जाग्रत होकर खड़ा है।

छत्रछाया में रहने के कारण धनी लोग
अनेक ग़लतियाँ कर गये,
उनको सुधारने के सिवाय उनकी आत्म-
शान्ति का कोई उपाय नहीं है।

आगे धनिक लोग क्षुधा के मार्ग में पड़े लोगों को भूदान-पत्र देंगे, जिससे विश्व का प्रकाशमय सौभाग्य-अंकुर विप्लव-रूपी अग्नि में जल न जाये ! पवन और जल के समान भूमि भी उनके लिए आवश्यक है, जिन के मुँह और पेट हैं। यदि गांधीजी ने चालीस कोटि जनता को शान से जीने के लिए स्वातंत्र्य दिलाया, तो भूमि के अधीश बनाने की इच्छा गुरु के प्रसाद से विनायकस्वामी (विनोबा) को हुई। नित्य गायत्रीमंत्र का जाप जहां होता है उस भारतभूमि में चाहे जितनी सिद्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं।

चैनयिल् रष्यायिलोक्केयुं वन्नेत्ति
चैतन्यधारकल् माधुरिकल्
चोरत्तुट्टप्पतिलुण्टतु काणुंपोल्
कोरित्तरिच्चुपों धर्मनीति

पारमीहिंसावषि़यिल् नां काल्वेच्चाल्
भारत शिल्पि सहिक्कयिल्ला
भूतानुकंपयिलूडचे नम्मळ्क्की
भूदान यज्ञं तुटन्नुं पोकाम् ।
(आरि़लोन्निप्पोळ् कोडुप्पतु नाकत्तिलेरु़न्नानणि पणिकयाकाम् ।,
कण्णु तुऱक्कुविन् केरलमक्कळे !
विण्णु विट्टेत्तुम्नु पूंकुलकल् ।

पाला नारायणन् नायर

चीन में, रूस में और अन्य देशों में चैतन्य-धारा का प्रवाह और माधुर्य पहुँचा, परंतु उसमें भरी रक्त की लालिमा जब देखते हैं तब नीति-धर्म काँप जाता है। यदि उस हिंसा-मार्ग पर पैर रखें तो भारत-शिल्पी को सहन नहीं होगा।

भूतदया के द्वारा हम इस भूदान यज्ञ को चालू रखें।

(अभी जो षष्ठांश हम देंगे वह स्वर्ग के लिए सोपान-निर्माण करना होगा।) आँखें खोलो, केरल की सन्तानो!

आकाश छोड़कर कुसुम-मंजरियाँ आ रही हैं।

पाला नारायणन् नायर

चैर्ययेण्टतेन्तुळ्ळू

शान्तियेत्तेटिप्परमस्वास्थ्यं कैक्कोळ्ळुन्न
शाश्वततत्वांशङ्ङळ् तन सदस्से ! नमस्कारं ।

इङ्ङोरो सुखत्तिलु मनुभूतितन् वर्ण-
भंगिकळ् वीशुं प्रेम महस्से ! नमस्कारं !

धन्यमायात्मैक्यनिर्लीनमाय् सदस्सिनु
मुन्निल् निल्कवे कविहृदयं गानं चेवू !

मधुरोदारङ्ङळां वाक्कुकळ् चिरमैत्री
मृदुलङ्ङळाय् तम्मिलिणङ्ङिञ्चेरुं कैकळ्
प्रियवस्त्वन्वेषियां हृदयं चिरकुवे-
चुयरुं पोले तोन्नुमत्तेळिनोट्टङ्ङळुम्

एन्तिनु विण्णुं विट्टुपोन्नोरुमर्त्यातिगावि-
नेन्नयुं विलप्पेट्टतोरोन्नु मिङ्ङुण्टल्लो

अन्नयलवय्क्केळां पिन्निलाय् काण्म् कवि
अत्भुततमङ्ङळां सौन्दर्यविकासङ्ङळ्
पारिनेप्पुतुताक्कानुयर्तान् वेम्पुं कर्मो-
दारतयुटे लोलभावना वितानङ्ङळ्

लोकर तन् पषियेट्टु तकरुमाभिमान-
भूकमानसङ्ङळ् तन्नारक्त प्रकाशङ्ङळ्

तपय्क्कानावां पापिल् करियानावां स्वैरं
तलिर्तुवरुं मुग्धतारुण्य प्रतीक्षकळ्

आशतन् चितयिल् निव्विकारतयिले-
य्काञ्जलञ्जुयरु मीयर्चना धूपङ्ङळुं ।

क्या करें ?

शान्ति की खोज में अति अशान्ति अनुभव कराने वाले, शाश्वतावस्था के अंशों के समूह! तुमको नमस्कार।

प्रत्येक मुख में अनुभूति की वर्ण-प्रचुरिमा फैलाने वाले प्रेम-प्रकाश! तुमको नमस्कार।

आत्मैक्य में विलीन होकर धन्यता अनुभव करता हुआ कवि जब सभा के सामने खड़ा होता है तब कवि-हृदय गाने लगता है।

मधुर, उदार वाणी, चिरमैत्री से परस्पर मिल जाने वाले हाथ, और प्रिय वस्तु को खोजकर पंख लगाये उड़ने वाले हृदय की प्रतीति देते हुए वे सूक्ष्म दृष्टि-निक्षेप!

क्या-क्या कहें? स्वर्ग छोड़कर आये मर्त्यात्मा के लिए जो-जो अति मूल्यवान है, वह सब यहाँ प्रस्तुत है।

इतना ही नहीं, इन सभों में निगूढ़ और भी अनेक अद्भुततम सौन्दर्य-विकास कवि को दिखलाई पड़ते हैं।

इस विश्व को नया बनाने के लिए, समुन्नत करने के लिए व्याकुल कर्मोदारता (उदार प्रवृत्ति-पथ) की मृदुल भाव-पंक्तियों,

लोगों के अपवाद-प्रहारों से छिन्न-भिन्न, अभिमान से मूक हृदयों के आरक्त प्रकाश,

प्रफुल्लित होने के लिए हो अथवा वृथा सूख जाने के लिए, स्वैर भाव से अंकुरित होकर बढ़ने वाली मुग्ध-तारुण्य प्रतीक्षाओं,

आशा की चिता से उत्पन्न होकर निर्विकार अवस्था की ओर चंचल गति से उड़ने वाले अर्चना-धूम्र,

अंतियुं पुलरियुं कान्तियिलाराडिक्कु-
मायिरं महाप्रपंचङ्ङळ् तन्नपकेल्लां
कालत्तालुरक्काटिच्चोर्नु तान् मनुष्यन्टे
चेलोत्त हृदयमाय् कण्टारियुन्नू कवि ।

कोटुतां नोवालानन्दावेशत्तालुं विङ्ङि....
विटिरुमतिन् तेनिलमृतुण्णुन्नु कवि ।

निर्भरमोरौलकण्ठ्यमविटेप्परक्कुन्नू
नित्यमंगलावासिय्केन्तु चैय्येण्टू नम्मळ् ?

ओन्नुमे चैतील नामोन्नुमे चैतीलना-
मेन्नलयक्कुन्नु कोडुंकाट्टु पोलोरुतेङ्ङल्

वेण्मुकिल् बृथा चिरिच्चाटुन्न वानिन् कीपि़ल्
वन्मुळ किनावु कण्टुपरित्तेङ्ङुंभूविल्

मौनियाय् मेवुं कवि केल्क्केया चिरन्तन
गानमोन्नप्पोषुं नां चैय्येण्टंतेन्तायुळ्ळ् ?

कूडिय कषिविनुमावतेन्तनाधन्त
पीडये प्पुरत्तु निन्नकत्ते य्कुन्तानेन्ये ?

नम्मळालेन्तोन्नावुं शमत्तिप्पुलर्तुवान्
तम्मिलुळ्ळापिञ्ञेन्नुं स्नेहिच्चुकोळ्वानेन्ये ?

इप्रपञ्चात्माविन्टे हृद्रक्तमल्लो स्नेहं,
तत्परिवाहत्तिनु तक्कतां सिरकळ् नाम् ।

पावनमतु नम्मिल् पाञ्ञोपुकुम्पोलुण्टो ?
जीवितमालिन्यङ्ङळूपिियिल् तङ्ङीडुन्नू

बालामणियम्मा नालप्पाट्टु

प्रदोष और प्रभात जिनको मोहन-कान्ति में निमज्जन कराते हैं उन सहस्र-सहस्र विश्वों के सौन्दर्य-सार-संकलन से निर्मित अद्भुत वस्तुओं को ही कवि मानव-हृदय के रूप में जानता है।

और जब वह भीषण उद्वेग तथा अनन्त आनन्द आवेश से भरकर अन्तरावेग से फूट-फूट कर विकसित होता है तब कवि उसके मधुरूपी अमृत का आस्वादन करता है।

उस महान् सभा में उत्कंठा फैल जाती है—"नित्य मंगल प्राप्त होने के लिए हम क्या करें?"

चंडवात-जैसी आह वहाँ हिलोरे लेने लगती है—"हमने कुछ नहीं किया, हमने कुछ नहीं किया!"

उस आकाश के नीचे, जिसमें श्वेत मेघवृंद हँस हँस कर नर्तन करते हैं और उस भूमि के ऊपर, जिसमें बाँस स्वप्न देख, विह्वल होकर हाय भरते हैं, मौन रहने वाला कवि एक चिरंतन गान सुनता है—"हम क्या करें!"

सबसे बड़ी शक्ति भी आखिर क्या कर सकती है—

इसके सिवा कि, अनादि अनन्त पीड़ा को बाहर से अन्दर की ओर ठेल दे? सुख बढ़ाने के लिए आपस में हृदय खोलकर प्रेम करने के अतिरिक्त हम क्या कर सकते हैं?

प्रेम विश्वात्मा परमेश्वर का हृद्रक्त है। उसके प्रवाहित होने के लिए बनाई गई शिराएँ हैं हम मानव।

जब वह पावन रक्त हम में बहता है, तब जीवन की मलिनता कहीं जम सकती है!

बालामणियम्मा नालप्पाट्ट

मरुप्परम्पल्ला

नटचु सर्वत्र तिरक्कियिट्टं
किटन्नलिल्लरेयु मेन्न मूलं ।
इटं पेट्टुन्नारुटे वारभूविल्
मुटङ्ङियो पार्थनु नित्यदानं ॥

वरिष्ठनामान्नलि दीर्घकालं
भरिच्च मन्निन्टे मणिक्किटाङ्ङल् ।
परिक्षयो वामनवृत्तिये ? का-
त्तिरिक्कयो मूलयिलेच्चिल् वारान् ॥

कनिञ्ञु कैकालुकल् नल्किपिट्टु-
ण्टेनिय्कु विश्वांबिक वेल चेय्वान् ।
धनि प्रभुक्कळ्कु चविट्टुवानाय्
कुनिञ्ञु निल्कुं सुतुकेल्लितल्ला ॥

अनर्थमे ! पुल्क्कोटियल्ल ञान् निनु-
कनत्त काट्टत्तुमुलञ्ञु चायान् ।
मनस्विमार् तन् करुणाश्रु वर्षाल्
ननञ्ञु चीयिल्ल नृजीवितं मे ॥

अरक्षितस्नेहिकळ् पिञ्च तेण्टुं
नरकुं तीर्प्पिच्च पोरुप्पिटङ्ङल् ।
ओरार्थिये किट्टुवतिन्नु पापमे
इरक्कु माराक तोपिल परप्पाल् ॥

करुत्तु नम्मल् कोरुमप्पयट्टु,
मरुत्तुमत्यौचितमां शुचित्वं ।
परुत्तितन् पूवितुट्टुप्पु पेट्टि
वरुत्तुमो नां वरुतिक्कु तक्कं ? ॥

मरुभूमि नहीं

घूम-घूमकर खोजने पर भी लेने वाला कोई न मिलने के कारण युधिष्ठिर का दान-नियम[1] जिसके राज्य में न चल सका,

उस महाबलि के शासन में सुदीर्घ काल तक रही भूमि[2] की सन्तान आज क्या वामन की वृत्ति—याचक-वृत्ति—स्वीकार करे? जूठन बटोरने की ताक में जगह जगह बैठी रहे?

प्रकृतिदेवी ने अपनी असीम कृपा से मुझे परिश्रम करने के लिए, काम करने के लिए, हाथ और पैर दिये हैं। और मेरी यह रीढ़ की हड्डी धनिकों के पैर रख कर चलने के लिए झुक कर सोपान बनने वाली भी नहीं है।

हे विपत्ति, तुम्हारे तेज झोंके से हिल कर झुक जाने वाला तिनका मैं नहीं हूँ। मैं अपने मानव-जीवन को मनस्वी लोगों के दयनीय अश्रु-प्रवाह से गीला होकर जीर्ण भी होने न दूँगा।

मेरी कामना है, काम ऐसा बढ़ जाये, ऐसा फैल जाये, कि ये बड़ी-बड़ी इमारतें जो अरक्षित स्नेही लोगों ने याचकों के लिए बनवाई हैं, स्वयं एक याचक के लिए भी याचक बन जायँ!

हमारी शक्ति है एक साथ मिलकर प्रयत्न करना। हमारी दवा है मानवोचित शुचित्व। और ये कपास के फूल (बोंडियाँ) हैं हमारे वस्त्रागार। हम गरीबी को आने के लिए प्रवेश-द्वार ही कहाँ देंगे?

---

१. कथा है कि धर्मराज युधिष्ठिर प्रतिदिन किसी ब्राह्मण को दान दिये बिना भोजन नहीं करते थे। एक बार वे महाबलि के अतिथि बन कर केरल में रहे थे, उस समय केरल इतना समृद्ध और ऐश्वर्यपूर्ण था कि एक भी व्यक्ति उनसे दान लेने के लिए तैयार नहीं हुआ।

२. माना जाता है कि महाबलि की राजधानी केरल में थी।

निरुद्ध चैतन्य मपौरुषत्तिल्
चुरुण्टु कूटोल्ल सगर्भ्यर् वीण्टुं ।
गुरु प्रदत्ताक्षर विघ्नेटि
त्तिरुत्तणं नां विधि दुर्विलेखं ॥

तेरुक्कने कर्मठराकुमारो-
च्चोरुङ्ङियाल् पोन्विळ कोय्तेडुक्कां ।
मरुप्परम्पल्ल मपुप्रकाशा-
ल्लिरुट्टिल् निच्चुद्धृतमाय राज्यं ॥

वळ्ळत्तोळ्

मेरे भाइयो, फिर से हम निरुद्ध-चैतन्य न बनें, अपने अपौरुष में न डूब जायें। गुरुजनों द्वारा दी जाने वाली विद्या को सीखकर दुर्विधि के लिखे हुए लेख को सुधारें।

कर्म-दीक्षा लेकर तैयार हो जायँ तो हम सोने की फसल काट सकते हैं। क्योंकि परशु के प्रकाश द्वारा (समुद्र के) अन्धकार से उद्धृत किया हुआ[१] यह भार्गव क्षेत्र कोई मरुभूमि नहीं है।

वळ्ळत्तोळ्

१. केरल की उत्पत्ति के बारे में कथा है कि जब भार्गवराम परशुराम ने अपनी सारी संपत्ति ब्राह्मणों को दान कर दी तो उन के पास अपने रहने के लिए भी स्थान न रहा। अतएव उन्होंने वरुण से भूमि माँगी और उनके निर्देशानुसार गोकर्ण में खड़े होकर दक्षिण की ओर अपना परशु फेंका, जो कन्याकुमारी में जाकर गिरा। उतने स्थान से समुद्र हट गया और जो भूमि निकली वह केरल कहलाई। इसीसे केरल को भार्गवक्षेत्र भी कहा जाता है।

संस्कृत

चयन : सर्वपल्ली राधाकृष्णन्
के. ए. एस. ऐयर

अनुवाद : शान्तिकुमार नानूराम व्यास

कवि-नाम	कविता
गणेश शर्मा	*देववाणी की वन्दना*
चन्द्रधर शर्मा	*श्रद्धा का सम्बल*
ज्वालापतिलिंग शास्त्री	*कालिदास*
दशरथ शास्त्री	*महात्मा तुलसीदास*
मथुराप्रसाद दीक्षित	*शंकरविजय नाटक*
महालिंग शास्त्री	*कुछ व्यंग्योक्तियाँ*
माधवप्रसाद देवकोटा	*गणेश-गौरव : भारती-वैभव*
माधवचैतन्य ब्रह्मचारी	*संस्कृत वाणी का आर्तनाद*
व्यासराय शास्त्री, के. एल.	*कृष्ण-स्तुति*
(स्व.) क्षमा राव	*रामदासचरित*

वन्दे सुरभारतीम्

वन्दे वर्णशब्दवाक्यछन्दोबद्धसत्प्रबन्धगद्यगीतिकाव्यामृतश्रृङ्गारप्रभावतीम्,
शैलीगुणगुम्फितामलङ्कृतिचमत्कृतिकां गम्भीरार्थगौरवस्फुरन्तीं प्रतिभावतीम्।
कल्याणीमनल्पकल्पनातरङ्गकल्लोलिनीं कविकुलकीर्तिलतां ललितकलावतीम्,
भव्यभद्रभावरसानन्दघनकादम्बिनीं वन्दे विश्ववन्द्याभिष्टदेवीं सुरभारतीम्॥

सानन्दं सतालल्लयं वीणामुपवीणयन्तीं स्वैरं श्रुतिमण्डलेषु गायन्तीं विभावतीम्,
ज्ञानसविज्ञानकलाकौशलपटीयसीं च यन्त्रमन्त्रतन्त्रप्रक्रियां च सभ्यसंस्कृतिम्।
विदुषां मनस्सु शास्त्रसिद्धिं परमात्मतत्त्वसाक्षात्कारविद्यां सतामाध्यात्मिकतारतिम्,
स्फारं स्फुरयन्तीं दिक्षु जयवैजयन्तीध्वजं भावरङ्गमञ्चे नटीं वन्दे सुरभारतीम्॥

नन्दननिकुञ्जलतापुष्पपुञ्जवीथीपथे निर्जरवधूटीवृन्दमध्ये मञ्जु भास्वतीम्,
सिद्धा मुनिगन्धर्वाश्च विद्याधराश्चाप्सरसो वाञ्छन्ति च देवा यत्पदाब्जशरणागतिम्।
यच्छन्तीं कृपाकटाक्षकोणैर्भवविभूतीः सतां हृद्यां तत्त्वविद्यां भुक्तिमुक्ती मुदं शाश्वतीम्,
विद्वत्कविमानसे लसन्तीं राजहंसीं शिवां वागीश्वरीं वन्दे सर्वशुक्लां सुरभारतीम्॥

गणेश शर्मा

देववाणी की वन्दना

मैं विश्व-वन्दनीय इष्टदेवी देववाणी (संस्कृत) की वन्दना करता हूँ, जो अक्षर, शब्द, वाक्य और छन्दों से युक्त सुन्दर प्रबन्ध, गद्य तथा गीति-काव्य-रूपी अमृत के शृंगार से कान्तिमान् है; जो (गौडी, वैदर्भी, पांचाली, लाटी आदि) शैलियों और (माधुर्य, प्रसाद, ओज आदि) गुणों से गुँथी हुई है; जो अलंकारों से चमत्कृत, गम्भीर अर्थ की गरिमा से जगमगाती एवं प्रतिभाशालिनी है; जो कल्याणप्रदा, प्रचुर कल्पना की तरंगों से अठखेलियाँ करने वाली, कवि-समूह की कीर्ति-रूपी लता और ललित कलाओं से समृद्ध है; तथा जो सुन्दर एवं शिष्ट भावों और रसों के आनन्द की घनी मेघमाला है।

मैं उस देववाणी की वन्दना करता हूँ, जो ताल और लय के साथ आनन्दपूर्वक वीणा बजा रही है; जो स्वच्छन्द होकर सप्त स्वरों में गा रही है; जो प्रकाशमान, ज्ञान-विज्ञान एवं कला-कौशल में कुशल, यन्त्र, मन्त्र और तन्त्र के प्रयोगों में साधनभूत एवं सभ्य जनों की संस्कृति है; जो विद्वानों के मनों में स्थित शास्त्र की सफलता, परमात्मा-रूपी तत्त्व का साक्षात्कार कराने वाली विद्या और सन्तों का आध्यात्मिक प्रेम है; जो जय-विजय की ध्वजा को दिशाओं में दूर-दूर तक फहराती है; तथा जो भावों के रंगमंच की नर्तकी है।

मैं विद्वानों और कवियों के मानस में विहार करने वाली राजहंसी, कल्याणमयी, वाणी की अधीश्वरी, अतीव शुभ्ररूपा देववाणी की वन्दना करता हूँ, जो इन्द्र-उद्यान के लता-मंडप के पुष्प-पंक्ति वाले मार्ग पर देवांगनाओं के झुंड के बीच सुन्दरता से शोभायमान है; सिद्ध, मुनि, गन्धर्व, विद्याधर, अप्सराएँ और देवता जिसके चरण-कमलों की शरण चाहते हैं; तथा जो अपने कृपा-रूपी कटाक्ष-प्रान्तों से संसार की समृद्धियाँ, सज्जनों के हृदय में स्थित आत्म-विद्या, भुक्ति-मुक्ति (ऐहिक भोग एवं पारलौकिक मोक्ष) और शाश्वत आनन्द प्रदान करने वाली है।

गणेश शर्मा

श्रद्धाभरणम्

कश्चित् क्लान्तो विगतमहिमा मानवः सुप्तशक्तिः
सर्गारम्भे प्रकृतिततिभिः पाशरूपैर्निबद्धः ।
और्वं वह्निं जलनिधिरिव ज्योतिरन्तर्दधानः
प्रातर्नीलं नभसि चकितो ज्योतिरालोकते स्म ॥

विद्युद्गर्भः शरदि जलमुग्भ्रष्टशोभः शुचाऽऽर्तः
पाण्डुश्चन्द्रः कृशतनुरिव प्रातरन्तर्धृताऽऽभः ।
दुःखस्याब्धिं तरितुमबलो विस्मृतेः स्वात्मशक्तेः
स्मारं स्मारं प्रकृतिविभवं दीनदीनः स्थितः सः ॥

उत्पातास्तं क्षितिजलनभोवातवह्निप्रजन्या
नक्राद्यास्ते जलचरमुखा जन्तवोऽन्ये विपाकाः ।
क्रूरा हिंस्रा विपिनपशवो लोलुपा आमिषस्य
प्राणाऽऽवासस्वजनविकलं पुष्कलं पीडयन्ति ॥

अन्ने प्राणे मनसि तदिदं ब्रह्मरूपं स्वकीयं
मायाशक्त्या प्रथयति तदा तद्विवर्तस्तथाऽऽस्ते ।
विज्ञानस्य प्रथमकिरणो ब्रह्मणोन्मीलितो यः
पुण्ये काले प्रगतिपिशुने लब्धवान् मानवस्तम् ॥

श्रद्धे नूनं तदिदमखिलं तर्कलौल्यं वृथा स्यान्-
न स्याच्चेदं तव विमलदृक्पातसंभाषितञ्चेत् ।
तर्कप्रोतः स जडजगतस्त्वां विना नो विकासः
का वार्ता स्यात् परमपुरुषज्योतिरालिङ्गनस्य ॥

उत्तिष्ठस्व त्वयि न विपुलं शोभि कार्पण्यमेतत्
क्लैब्यं मा गा मनसि निहितं दैन्यभावं त्यजैनम् ।
नित्यं धर्मे श्रितसहचरो मा शुचः श्रद्दधानो
धैर्यं पाहि प्रणयवशगा त्वत्समीपे सदाऽस्मि ॥

श्रद्धा का सम्बल

सृष्टि के आरम्भ में कोई हारा-थका मानव, जिसकी महत्ता अस्त हो गई थी और शक्ति सोई पड़ी थी, प्राकृतिक परम्पराओं के बन्धनों से जकड़ा हुआ था। जैसे समुद्र वडवाग्नि को धारण करता है, वैसे वह भी अन्तराल में एक ज्योति धारण किये हुए था। प्रातःकाल के समय वह चकित होकर आकाश में एक बाह्य ज्योति देख रहा था।

बिजली धारण करने वाले बादल की शोभा जिस प्रकार शरत्काल में विनष्ट हो जाती है, उसी प्रकार वह मानव शोक से व्याकुल था। प्रातःकालीन पीले क्षीणकाय चन्द्रमा के समान उसका तेज अन्दर छिपा था। अपनी शक्ति को भूल जाने के कारण वह दुःख के सागर को पार करने में असमर्थ था। प्रकृति के वैभव को बार-बार याद करते हुए वह अत्यन्त दीन होकर खड़ा था।

पृथ्वी, जल, आकाश, वायु और अग्नि से उत्पन्न होने वाले उत्पात; मगर आदि प्रमुख जलचर तथा दूसरे विषैले जन्तु; क्रूर, मांस के लोभी, खूँख्वार बनैले पशु—ये सब उस मानव को, जो सुरक्षा, घर-बार और सगे-सम्बन्धियों के बिना व्याकुल था, अत्यन्त पीड़ा पहुँचा रहे थे।

ब्रह्म माया-शक्ति से अपना स्वरूप पहले अन्नमय रूप में, फिर प्राणमय रूप में और फिर विज्ञानमय रूप में प्रकट करता है। ये उसके रूप-रूपान्तर मात्र हैं (तात्त्विक परिणाम नहीं)। ब्रह्म द्वारा प्रकटित विज्ञान की जो प्रथम किरण थी, उसे मानव ने प्रगति की सूचक पावन वेला में प्राप्त किया।

हे श्रद्धे, यदि तुम्हारे निर्मल दृष्टिपात से यह जगत् प्राणवान् न होता तो निश्चय ही यह सारा तर्क-प्रपंच व्यर्थ ही हो जाता। तुम्हारे बिना तर्कों में उलझे हुए इस जड़ जगत् का विकास ही न हो पाता, उस परम पुरुष (परमात्मा) की ज्योति को प्राप्त करने की बात तो दूर रही।

उठो, इतनी अधिक कायरता तुम्हें शोभा नहीं देती। पौरुषहीनता को मत प्राप्त होओ। अपने हृदय में स्थित इस दीन भाव का परित्याग करो। अपने मित्रों के साथ सदा धर्म में स्थिर रहो। शोक मत करो। श्रद्धापूर्वक धैर्य धारण करो। मैं तुम्हारे प्रेम के वशीभूत होकर सदैव तुम्हारे पास हूँ।

कान्तावाचो मधुररसझरी माधुरीभाग्यभाजः
श्रुत्वोत्तिष्ठन् सपदि मनुजः सुष्ठु सम्भाराधैर्यैः ।
धन्यः स्नेहाद् रतिवशगया श्रद्धया दत्तहस्तः
प्रातः पुण्ये पथि सह तया लब्धबोधः प्रतस्थे ॥

पौष्पे पात्रे मधु सुमधुरं माधवीमाधुरीणां
प्रीत्या प्रीतप्रथितमधुना दत्तमास्वादयन्तम् ।
तत्राऽऽयातं भुवनजयिनं मन्मथं सार्वभौमं
दृष्ट्वा सद्यः कुशलमनुजः सोऽपि धैर्याच्चचाल ॥

यत्राऽद्वैतं मिथुनमनसोः सर्वदा सर्वथा स्यात्
सौख्ये दुःखे वपुषि हृदि वा यत्र तुल्या स्थितिः स्यात्
यत्र प्रीत्या निखिलहृदयाऽऽवेदनं शुद्धभावात्
स्नेहानन्दाः सपदि सततं तत्र राशीभवन्ति ॥

संघर्षेद्धे जगति सुगतिर्निन्धविश्वासलभ्या
श्रेष्ठोऽसि त्वं यदिह पशुतस्तन्ममैव प्रसादः ।
उत्तिष्ठस्व विलशितजगतो नव्यनिर्माणकार्ये
यद् दुःसाध्यं तदपि सुशकं विद्धि मद्दृष्टिपाते ॥

चन्द्रधर शर्मा

अत्यन्त मधुर माधुर्य-रस से युक्त कान्ता के वचनों को सुनकर उस मानव को भली भाँति धैर्य बँधा और वह तुरन्त उठ खड़ा हुआ। जब प्रीतिपरायण श्रद्धा ने स्नेहवश उसका हाथ पकड़ा तब वह कृतकृत्य हो गया और ज्ञान प्राप्त करके प्रातःकाल उस पवित्र मार्ग पर उसके साथ चल पड़ा।

जब उस प्रवीण मानव ने देखा कि विश्व-विजयी सम्राट् कामदेव, प्रेम-परिपूरित वसन्त द्वारा स्नेहपूर्वक पुष्पमय पात्र में दिये गए माधवी लताओं के माधुर्य के अत्यन्त मीठे मधु का आस्वादन करते हुए, आ रहे हैं, तब वह भी धैर्य से तुरन्त डिग गया।

जहाँ स्त्री-पुरुष के मन का सदा पूर्णतया ऐक्य बना रहता हो, जहाँ सुख, दुःख, शरीर और हृदय में एक-सी स्थिति रहती हो, जहाँ प्रेम के कारण शुद्ध भाव से समस्त हृदय का समर्पण किया गया हो, वहाँ तुरन्त ही स्नेह और आनन्द सदैव के लिए एकत्र हो जाते हैं।

संघर्ष से धू-धू करते इस जगत् में अन्ध विश्वासों से कल्याण नहीं मिल सकता। यह तो मेरी ही कृपा है कि तुम संसार में पशुओं से श्रेष्ठ हो। इस क्लेशयुक्त संसार के नवीन निर्माण-कार्य के लिए उठो। जो दुस्साध्य है उसे भी मेरे दृष्टिपात से सुसाध्य हुआ जानो।

चन्द्रधर शर्मा

श्रीकालिदासः

श्रीकालिदासः कविताविलासः गीर्वाणविद्वन्मुखचारुविलासः ।
भाषावधूटीधृतपुंविलासः नित्यं मनोराधितकृत्तिवासाः ॥

कलत्रपुत्रीरहितोऽपि सूक्तिभिः कलत्रपुत्रीसहितानरञ्जयत् ।
हृदा मुदा संस्मृतिमज्जितेन शकुन्तलायास्स्वककथा कथा कृता ॥

वंशे रघूणां प्रतिभा यथा यथा काव्ये कवीन्द्रप्रतिभा तथा तथा ।
रामस्य कीर्तेः कियदायुरुच्यते तस्योपमा सार्थवती भवेत्समा ॥

शिवस्य भक्त्या स्वकुमारसम्भवे प्रमोदमेवं जनयन् समन्तात् ।
कथासुधापूर्णलसत्तरङ्गिणी जटानिबद्धस्वकवित्वभामिनी ॥

रामस्य सीतां प्रति वायुसूनोः सन्देशमेवात्मनि चिन्तयन् सदा ।
यक्षस्य भार्यां प्रति तुल्यमेघसन्देशमेवं स चकार हीत्यलम् ॥

नवप्रियानित्यनवाभिसारिका कृतात्मसन्देशमतीव चिन्तयन् ।
स मेघसन्देशकृतिं चकार तन्मनोभिवाञ्छानुगताऽमृतोक्तिभिः ॥

धाराल्धारादलिताभ्रधारा रसार्द्रगीर्वाणवचः परागः ।
विद्वद्द्विरेफप्रियतोपयोगे कृत्यब्जपीयूषमधुप्रमत्तः ॥

कालिदास

सदा भगवान् शंकर की मन से आराधना करने वाले श्री कालिदास कविता के हाव-भाव हैं, देवों और विद्वानों द्वारा वन्दित वाणी के विलास हैं तथा भाषा-रूपी नवयुवती के साथ रमण करने वाले पुरुष हैं।

स्त्री और पुत्री से रहित होने पर भी उन्होंने स्त्री-पुत्री वालों को अपनी सुन्दर उक्तियों से सन्तुष्ट किया। हार्दिक प्रसन्नता से संसार में निमग्न होकर उन्होंने शकुन्तला की कथा को अपनी ही कथा बना डाला।

जैसे रघु के वंश में उत्तरोत्तर प्रतिभा बढ़ती गई, वैसे ही कवि-शिरोमणि कालिदास की प्रतिभा उनके 'रघुवंश' काव्य में बढ़ती गई। राम की कीर्ति की कितनी आयु है, यह कौन कह सकता है! यही उपमा कालिदास की कीर्ति पर भी सार्थक है।

'कुमार सम्भव' में अपनी शिव-भक्ति द्वारा चारों ओर आनन्द उत्पन्न करते हुए उन्होंने कथा-रूपी अमृत से भरी सुन्दर तरंगों वाली अपनी कविता-रूपी स्त्री को जटाओं में बाँध लिया।

हनुमान् द्वारा ले जाये गए सीता के प्रति राम के सन्देश का हृदय में निरन्तर ध्यान करते हुए ही उन्होंने यक्ष-भार्या के प्रति मेघ द्वारा ले जाये गए वैसे ही सन्देश की रचना की।

नित्य नवीन अभिसार करने वाली नवयौवना प्रियतमा द्वारा दिये गए सन्देश का अत्यन्त स्मरण करते हुए उन्होंने अमृतमयी उक्तियों से मेघ-सन्देश की रचना की। ये उक्तियाँ उसी प्रियतमा में संलग्न मन की अभिलाषाओं का अनुगमन करने वाली थीं।

(अपने काव्यों की) तीव्र धाराओं से उन्होंने आकाश की वर्षा-धारा को भी पराजित कर दिया। रसीली देववाणी के शब्दों के वह पुष्पराग हैं। विद्वान्-रूपी भौंरों के प्रेम का सम्पादन करने में वह अपनी कृतियों के कमल-रस के मधु से मतवाले हैं।

पूर्वाधुनातनकवीन्द्रकरारविन्दसन्दोहपूजार्पितात्मबिम्बः ।
नित्योपमाकल्पितचन्द्रबिम्बः तनोति शान्तिं कवितानिदाघे ॥

सर्वावनीनृपतिशीर्षकिरीटरत्नच्छायासमुज्ज्वलितपादपद्मः ।
सर्वावनीकविवरस्तवनीयमानकाव्यामृतप्रतिफलीकृतपादपद्मः ॥

ज्वालापतिलिंग शास्त्री

प्राचीन और अर्वाचीन महाकवियों के कर-कमलों की राशि से पूजित उनकी कविता में उनकी जो अपनी छाया है, तथा जिस चन्द्र-मंडल को उन्होंने अपनी शाश्वत उपमाओं द्वारा कल्पित किया है, वे कविता के ग्रीष्म-काल में शान्ति प्रदान करते हैं।

उनके चरण-कमल समस्त राजाओं के शीर्ष-किरीटों के रत्नों की कान्ति से प्रकाशित हैं और पृथ्वी के सारे श्रेष्ठ कवियों द्वारा स्तुति किये जाने वाले काव्य-रूपी अमृत में प्रतिबिम्बित हुए हैं।

ज्वालापतिलिंग शास्त्री

श्रीमहात्मा तुलसीदासः

श्रुतिस्मृतिपुराणाक्षाः कलौ देवगिरां हरः ।
जनतासुखबोधाय तुलसी गिरिजापतिः ॥

सूक्तिपादोदकोत्तुङ्गतरङ्गैः क्षालितान्तरः ।
कलिजानां नृणामासीत्तुलसी तुलसीप्रियः ॥

कलावल्पवयोधीभ्यो निगमागमशिक्षकः ।
स्वभाषयाभवच्छ्रीमांस्तुलसी कमलासनः ॥

नानासुमरसास्वादलुब्धविन्मक्षिकागणे ।
धन्यो रामपदाम्भोजरसिकः श्रीतुलस्यलिः ॥

प्रसादमधुरव्यंग्यरससरीतिनिनादिते ।
भाषार्षिपक्षिरंगे श्रीतुलसी कोकिलः कविः ॥

शब्दानुमितिमानादिदृढयुक्तिनखायुधैः ।
वादीभकुम्भविध्वंसी तुलसी केशरी बली ॥

अहर्निशमतिप्रीत्या प्रसन्नमुखपङ्कजः ।
जिज्ञासुशासने शान्तचेताः श्रीतुलसी गुरुः ॥

सम्भक्तावुद्धवो योगे दत्तो ज्ञाने शुकोऽभवत् ।
विधौ कात्यायनः कान्तौ ग्लौरन्यस्तुलसी लसी ॥

पद्याष्टकमिदं प्रोक्तं तुलसीवर्णनात्मकम् ।
सुधा दशरथाख्येन पापघ्नं कामदं नृणाम् ॥

दशरथ शास्त्री

महात्मा तुलसीदास

श्रुति-स्मृति-पुराण ही जिनके चक्षु हैं और कलियुग में जनता को सुख देने के लिए जिन्होंने देववाणी का अपहरण किया है, वह तुलसी गिरिजापति (शंकर) ही थे।

सूक्ति-रूपी तरंगों की ऊँची लहरों से जिन्होंने अपने अन्तर को धो लिया है, वह तुलसी कलि-काल में जन्म लेने वालों के लिए तुलसी के प्रेमी विष्णु ही थे।

कलि-युग में अल्प अवस्था और बुद्धि वाले लोगों को वेद-शास्त्र की शिक्षा देनेवाले श्री-सम्पन्न तुलसी ब्रह्मा ही थे।

नाना प्रकार के पुष्पों के रसास्वाद के लिए आकृष्ट होने वाली मक्खियों के समूह में राम के चरण-कमलों के रसिक तुलसी भौरे हैं, इसलिए वह धन्य हैं।

भाषा के ऋषि-रूपी पक्षियों के रंगमंच पर, जो प्रसाद, माधुर्य, व्यंग्य रस और रीति से शब्दायमान है, कवि तुलसी कोकिल हैं।

शब्द, अनुमान आदि प्रमाणों तथा प्रबल तर्कों के नख-रूपी हथियारों से प्रतिपक्षी-रूपी हाथी के गंडस्थल को विदीर्ण करने वाले तुलसी बलवान् सिंह हैं।

अतिशय प्रेम के कारण जिनका मुख-कमल रात-दिन खिला रहता है, ज्ञान-पिपासुओं को शिक्षा देने में जिनका चित्त शान्त रहता है, वह तुलसी गुरु हैं।

भक्ति में दूसरे उद्धव, योग में दूसरे दत्तात्रेय, ज्ञान में दूसरे शुकदेव, आचार-व्यवहार में दूसरे कात्यायन और कान्ति में दूसरी चन्द्र-ज्योत्स्ना—इस प्रकार तुलसी सर्वत्र सुशोभित हैं।

दशरथ नाम के विद्वान् ने तुलसी का वर्णन करने वाले इस पद्याष्टक की रचना की, जो पाप का नाश और लोगों की कामना पूर्ण करता है।

दशरथ शास्त्री

शंकरविजयनाटकम्

भास्वत्सूर्यसहस्रतोऽधिकतरा सर्वत्र तुल्यानुगा
स्वात्मानन्दसमुद्रलोललहरी संजायते सर्वदा ।
ब्रह्माद्वैतवहा परं सुखगता सच्चिन्मया व्यापिनी
स्वान्ते ब्रह्मणि लीयते मम हृदः काचित्प्रभा भासिनी ॥

आश्चर्यं परितः प्रभाविकसितं सर्वं समुद्योतितं
कैयं चेतसि मे चमत्कृतिरहो स्वानन्दसच्चिद्गता ।
लोकालोकगतः पदार्थनिवहः सर्वः स्फुटं भासते
संसारादवतारितोऽस्मि भगवन् ! ज्ञानाम्बुधे पाहि माम् ॥

अन्योन्यं भेदभावादिह हि बहुतराः प्रत्यहं जायमानाः
सिद्धान्तास्तेन लोकाः कलहमपरतः संचरन्तश्चरन्ति ।
तस्माद्वैरप्रभावाद्विगलितपृतना नष्टसौहार्दभावाः
सर्वे सिद्धान्तसिद्ध्यै स्वपरगतभिदश्चैकमत्ये भजेयुः ॥

न स्वर्गो नापि मोक्षो न भवति निरयो नापि पुण्यं न पापं
नो जीवास्तद्गुणा वा कथमिव गुणिनो भिन्नभावाद् भवेयुः ।
प्रत्यक्षाच्चातिरिक्तं न किमपि भवतां जायतेऽभीष्टसिद्ध्यै
यस्माद्बाधादिदोषाकलितमनुगतं ज्ञायते स्पष्टमेतत् ॥

द्रष्टारो निगमस्य तेऽपि तपसा याता वसिष्ठादयः
पूर्वेषां व्यवहारतो गतमिदं नैतत्कथं मन्यते ।
आम्रोऽयं कलशोऽयमेव च पटोऽन्नांशे प्रमाणं त्वया
किं वाच्यं व्यवहार इत्यविमतौ त्वनापि तन्मन्यताम् ॥

शंकरविजय नाटक

मेरे हृदय की कोई प्रकाशमान ज्योति अपने अन्तःकरण में स्थित ब्रह्म में लीन हो रही है—चमकते हुए हजार सूर्यों से भी अधिक उसका प्रकाश है, सर्वत्र समान रूप से वह परिव्याप्त है, आत्मानन्द के समुद्र की चंचल लहरों के समान वह सदा प्रकट होती है, अद्वैत ब्रह्म की वह वाहिका है तथा परम सुखदात्री एवं सत्-चित्-स्वरूपा सर्वव्यापिनी है।

अहो, मेरे चित्त में सच्चिदानन्दमयी यह कौन-सी चमत्कृति है, जिसने अद्‌भुत रूप से अपना प्रकाश चारों ओर फैलाकर सब-कुछ प्रकाशित कर दिया है। उस प्रकाश में लोकालोक (सातों समुद्रों को परिवेष्टित करनेवाली पौराणिक पर्वत-श्रेणी) के अन्तर्गत पदार्थों का सारा समुदाय स्पष्ट उद्भासित हो रहा है। हे भगवन्, संसार से निकाले जाने पर अब मैं ज्ञान-समुद्र में डुबकी लगा रहा हूँ, मेरी रक्षा कीजिए।

पारस्परिक मत-भेद के कारण संसार में प्रतिदिन अनेक सिद्धान्त पैदा होते रहते हैं, जिससे लोग औरों के साथ कलह करते हुए घूमते-फिरते हैं। इस वैर के प्रभाव से उनके अनुयायी पृथक् हो जाते हैं, उनका सौहार्द-भाव मिट जाता है। जो लोग अपने सिद्धान्त की सिद्धि के लिए अपने-पराये का विचार छोड़ देते हैं, वे सब एकमत हो जायँ।

न स्वर्ग है, न मोक्ष है, न नरक है, न पुण्य है, न पाप है और न जीव तथा उसके गुण ही हैं। तब गुणी ही कैसे भिन्न भाव वाला हो सकता है? आप लोगों की इष्ट-सिद्धि के लिए प्रत्यक्ष के अतिरिक्त और कोई प्रमाण ही नहीं है, क्योंकि यह स्पष्ट है कि अनुमान-प्रमाण बाधादि दोषों से युक्त है।

वसिष्ठ आदि मन्त्रद्रष्टा ऋषि तपस्या करते-करते चले गए, यह हमें पूर्वजों के व्यवहार से ही ज्ञात होता है, ऐसा क्यों नहीं मानते? यह आम है, यह कलश है, यह वस्त्र है, इसे सिद्ध करने में तुम क्या प्रमाण दोगे? यही कहोगे न कि इसमें व्यवहार ही प्रमाण है। तब यहाँ भी तुम व्यवहार को ही प्रमाण मानो।

यूयं बुद्धगुरोर्वचस्स्वपि धियैवान्योन्यभेदं गताः
सर्वास्तित्वमुपागता अथ परे विज्ञानसत्त्वं श्रिताः ।
अन्ये सर्वपदार्थसार्थनिवहे शून्यत्ववादं धृताः
किन्त्वेतत्सकलं विचारनिकषायातं स्वयं शीर्यते ॥

भूदेवाः सरहस्यवेदनिपुणाः शस्त्रास्त्रनिर्मापिकाः
राजानोऽपि नयान्विताः सुकृतिनो नीत्या प्रजापालकाः ।
विद्वांसोऽपि विमत्सराश्च वणिजो दक्षाश्च गोरक्षकाः
भूयासुः सुखिनः कलासु कुशलाः शूद्राः पुनर्भारते ॥

मथुराप्रसाद दीक्षित

बौद्ध गुरु के वचनों में भी तुम लोग बुद्धि के कारण परस्पर मत-भेद रखने लगे—कुछ तो सर्वास्तिवाद को मानने लगे, दूसरों ने विज्ञान के सार-तत्त्व का आश्रय लिया, औरों ने सब पदार्थों के समूह में शून्यवाद का सहारा लिया, किन्तु विचार की कसौटी पर कसे जाने पर ये सब अपने-आप छिन्न-भिन्न हो जाते हैं।

भारत में पुनः ब्राह्मण रहस्य-सहित वेदों में निपुण हों तथा शास्त्रों के निर्माता बनें, राजा गण भी नीतिमान् एवं पुण्यशील बनकर नीति के अनुसार प्रजा का पालन करें, विद्वान् द्वेष-रहित हों, बनिये चतुर और गो-रक्षक बनें तथा शूद्र सुखी और शिल्पकलाओं में कुशल हों।

मथुराप्रसाद दीक्षित

व्याजोक्तिरत्नावली

याञ्चादैन्यमपैतु चातक सखे मिथ्याकृताडम्बरः
पाथोदः सुखमेष यातु कृपणः कः पोषयेदर्थिनः ।
काले प्रावृषि सम्भृताः शतमुखं स्वेनैव धाराधरा
वृष्टिं तुष्टिकरीं पयोभरपरिश्रान्ता विधास्यन्ति ते ॥

अद्रोहेण वने वने तृणभुजो हन्यामहे द्वीपिभि-
र्हेलाखेलपरिप्लुतान् मृगयवो गृह्णन्ति नः प्रत्यहम् ।
गुल्मस्वभ्रदवासिभिः सविपदः शश्वद्भया हा वयं
राजन्नेणशिशुं त्वयैकमवता संघः कथं विस्मृतः ॥

त्वत्कण्ठस्वरमाधुरी दिशि दिशि प्राज्ञैरभिष्टूयते
त्वामाहुर्मधुमण्डनं त्वयि सुखी लोकः सुहृद्दर्शनः ।
त्वं हि श्लाघ्यतमः पिक द्विजकुले मोदस्व कस्ते निजा-
पत्यत्यागगतां मलीमसकथां धृष्टः पुरो वक्ष्यति ॥

भूभृन्मूर्ध्नि समादृताऽपि चपला नीचैः प्रवृत्ता झरी
सेयं गंडशिलाभिघातशिथिला भुक्तोज्झिता गह्वरैः ।
आकृष्टा शतधा कृषीवलकुलैः स्वैरं विगाढा जनैः
क्षामा कर्दमशेषिता परिभवात् क्षाराम्बुधिं गाहते ॥

अस्त्यद्रीन्द्रसमः स मन्दरगिरिर्मन्थायदेवैर्धृतो
मज्जन्तं च तमुद्दधार कमठीभूतः स्वयं माधवः ।
किन्तु प्राप्तसुधाफला दिविषदः कुत्राऽपि वेगोज्झितं
गुर्वायासपरिश्लथं तमवदन्नाश्वासगर्भं वचः ॥

कुछ व्यंग्योक्तियाँ

हे मित्र चातक, याचना की यह दीनता दूर हो, व्यर्थ का आडम्बर करने वाला यह बादल सुखपूर्वक चला जाय। कौन कंजूस याचकों को पोसेगा? वर्षा-काल में पानी के भार से थके हुए बादल एकत्र होकर स्वयं ही तुम्हारे लिए सैकड़ों धाराओं में तृप्त करने वाली वृष्टि कर देंगे।

तिनके खाने वाले हम हरिणों को व्याघ्र शत्रुता के बिना ही वनों में मार डालते हैं। स्वच्छन्द खेलते और दौड़ते हुए हमें शिकारी प्रतिदिन पकड़ लेते हैं। झाड़ियों के गड्ढों में होने वाली दावाग्नि से हमें सदा ही भय बना रहता है। राजन्, एक हरिण-शिशु की रक्षा करते हुए हमारे झुंड को आप कैसे भूल गए?

प्रत्येक दिशा में विद्वान् तुम्हारे कंठ-स्वर की माधुरी की प्रशंसा करते हैं। तुम्हें वसन्त का आभूषण कहते हैं। सुखी लोग तुममें निःस्वार्थ मित्र के दर्शन करते हैं। हे कोकिल, तुम निश्चय ही सबसे अधिक प्रशंसनीय हो! पक्षियों के समूह में तुम विहार करो। ऐसा धृष्ट कौन होगा जो अपने बच्चों को त्याग देने की तुम्हारी मलिन कथा को औरों के सामने कहेगा?

पर्वत-शिखरों पर समादृत होने पर भी चंचल झरना नीचे की ओर ही जाता है। पर्वतों के पार्श्व-भागों में स्थित चट्टानों से टकराकर वह शिथिल हो जाता है। गुफाओं द्वारा उपभुक्त किये जाने पर वह छोड़ दिया जाता है। फिर वह किसानों के समूह द्वारा सौ तरह से उपयोग में लाया जाता है; लोगों द्वारा स्वच्छन्दतापूर्वक उसमें अवगाहन किया जाता है। इस प्रकार क्षीणकाय होकर उसमें कीचड़ ही शेष रह जाता है और हार खाकर वह खारे समुद्र में चला जाता है।

मन्दर-पर्वत पहाड़ों में इन्द्र के समान था। मन्थन के लिए वह देवताओं द्वारा घेरा गया। स्वयं विष्णु ने कछुआ बनकर उस डूबते हुए का उद्धार किया। किन्तु देवताओं के अमृत प्राप्त कर लेने पर वह कहीं पर वेग से छोड़ दिया गया। कठिन परिश्रम से थके-माँदे उस पर्वत को उन्होंने आश्वासन की भी कोई बात नहीं कही।

अस्तं यावदुपैति वासरमणिः प्राणाधिको नायकः
सन्तापप्रसरादियं गुणवती पाथोजिनी मुञ्चति ।
तावत्येव जनैः कियानवगुणस्तस्यां समुद्भाव्यते
चन्द्रे वैरमदावृता मधुलिहामीर्ष्येति वा कैरवे ॥

भृङ्गी चेत्स शिवोपवाह्यवृषभस्सर्वैः पुरो नम्यते
पक्षी चेत्स मुरारिवाहविहगः आद्यस्तथा पूज्यताम् ।
दंष्ट्री किं न भवस्यहीनविभया विघ्नेशितुर्वाहनं
कस्मान्मूषक भोस्तवैव फलितंभत्यालयं मर्दनम् ॥

आखूनेष निहन्तु तण्डुलहरानित्याशया पोषितो
गेहिन्या वृषदंशकोऽन्नकवलैर्दध्युक्षितैरन्वहम् ।
कालेनाथ सुखोषितो दधिपयश्चासौ मुषित्वा गिरन्
नाखून् हन्ति न च प्रयाति सदनात् संमार्जनीतर्जितः ॥

आसृष्टेरपि च प्रवर्तनधुरां लोकस्य निर्वर्तय-
न्नुद्यन्नस्तमयन् पुनः पुनरपि क्रान्त्वाऽयने द्वे पृथक् ।
भास्वन्निर्भरमुच्छ्वसिष्यति कदा शान्ते किरोवोष्माणि
प्रायः कष्टमविश्रमः परहिते व्यूढोऽधिकारः सताम् ॥

तारामण्डलनाभिभूतमचलं देवं नमामो ध्रुवं
वन्द्यः सोऽपि जलप्रसादनपटुः कुम्भोद्भवो विश्रुतः ।
तत्ताहक्प्रथितानुभाववसतौ व्योम्नि त्रिशंको मुनि-
प्रागल्भ्यस्मृतिविस्मिताय विगलद्व्रीडाय तुभ्यं नमः ॥

ग्रीवायां ग्रसतो मिथो विलुठतः क्षोण्यां निपत्योत्थिता-
वन्योऽन्यस्य विकर्षतः श्रुतिपुटीं संदश्य दंष्ट्राङ्कुरैः ।
धावं धावमुपेत्य च प्रहरतो बाढं श्वपोताविमौ
नैतन्नाम नियुद्धमेष तु तयोः प्रेमावतारक्रमः ॥

प्राणों से भी प्रिय नायक दिनमणि सूर्य जब अस्ताचल को जाता है तब संताप के आधिक्य से यह गुणवती कमलिनी मूर्छित हो जाती है। उस समय लोग इसमें बहुत-से दोष देखने लगते हैं, जैसे, इसका चन्द्रमा से वैर है, भौंरों को यह मधु नहीं देती और कुमुदिनी से यह डाह रखती है।

बैल होने पर भी शृंगी शिव का वाहन है, अतः सभी उसके सामने झुकते हैं। पक्षी होने पर भी विष्णु का वाहन गरुड़ आदर प्राप्त करता है। हे चूहे, तुम सम्यक् रूप से दाँत वाले क्यों न हुए, क्योंकि गणेश के वाहन होने पर भी प्रत्येक घर में तुम्हारा ही मर्दन होता है।

इस बिडाल को गृहिणी ने प्रतिदिन दही-मिले अन्न के कौरों से इस आशा में पाला-पोसा कि वह चावल चुराने वाले चूहों को मारेगा। किन्तु कुछ समय बीतने पर वह दूध-दही चोरी से खाकर सुख पूर्वक रहने लगा, और अब वह न चूहों को मारता है और न झाड से मारे जाने पर घर से ही जाता है।

सृष्टि के आदि से संसार की धुरा को चलाते हुए तुम उदय-अस्त होते और बार-बार (दक्षिणायन और उत्तरायण) दो अयनों को पार करते हो। हे सूर्य, इस गरमी के शान्त होने पर तुम विश्वस्त होकर कब विश्राम करोगे? सज्जनों का यह प्रायः निश्चित अधिकार होता है कि वे परोपकार में कष्टपूर्वक लगे रहकर कभी विश्राम नहीं लेते।

तारागणों से भी जो अभिभूत नहीं हुआ, उस अचल ध्रुव तारे को हम नमस्कार करते हैं; विख्यात अगस्त्य तारा भी वन्दनीय है, जो जल को स्वच्छ करने में निपुण है; और हे त्रिशंकु, प्रसिद्ध अनुभवों के घर आकाश में रहने वाले तुम्हें भी नमस्कार है, जो (विश्वामित्र) मुनि की प्रगल्भता से विस्मित होने पर भी लज्जा को छोड़ चुके हो।

कुत्ते के ये दोनों बच्चे परस्पर गला पकड़ते हैं, लुढ़कते हैं, जमीन पर गिरकर उठते हैं, पकड़कर खींचते हैं, छोटे-छोटे दाँतों से कानों को काटते हैं, और दौड़-दौड़कर खूब प्रहार करते हैं, किन्तु यह उनका युद्ध नहीं है, बल्कि प्रेम-प्रदर्शन का क्रम है।

अर्धं यद्वपुरङ्गनामयमभूद्गङ्गा यदूढा शिर-
स्याकृष्टा मुनिसुभ्रुवो यदवशं यद्धर्पिता मोहिनी ।
तत्सर्वं विनिपात्य मन्मथजयी लोकैस्त्वमुद्घुष्यसे
सोऽनङ्गस्त्वमधीश्वरो जडधियश्चामी किमत्राद्भुतम् ॥

महालिंग शास्त्री

तुम्हारा आधा अंग तो नारीमय है, सिर पर तुमने गंगा धारण कर रखी है, मुनि-पत्नियों को तुमने आकर्षित किया और बेबस होकर मोहिनी के साथ जबरदस्ती की। इन सब बातों की उपेक्षा करके तुम्हें कामदेव का विजेता कहा जाता है। इसमें आश्चर्य क्या है? वह कामदेव तो अंगहीन ठहरा और तुम हो अधीश्वर, जब कि लोग तो जड़बुद्धि हैं ही।

महालिंग शास्त्री

गणेशगौरवम्

द्विरदाननोऽपि रदनं केवलमेकं दधद्भवान्वक्ति ।
प्राकृतिकेऽपि द्वैते वस्तु पुनः सत्यमद्वैतम् ॥

शिक्षयति शूर्पतुल्यौ कर्णाविस्फोटयन्भवान्भूयः ।
अपनीय तुच्छमखिलं श्रुतितो वस्तूररीकुरुष्वमिति ॥

भारतीवैभवम्

मातः पुरतः स्फुरतान्मुकुररत्वत्पदनखच्छलः स्वच्छः ।
यत्र बहूनां विगतं परिचिनुयामात्मनो मुखं भणतः ॥

अर्थनटानिव रङ्गे भवान्तरङ्गे प्रनर्तयितुकामा ।
वीणामनुरणयन्ती जयति गिरामीश्वरी देवी ॥

भवती करेऽक्षमालां दधती शान्ताऽनुशास्ति किं न जगत् ।
जन्तोर्जितेन्द्रियततेः शान्तिरवश्यं भवित्रीति ॥

जलजमहमिति सलज्जं कमलं स्वयमेव तेऽध आसीनम् ।
पिदधति विधुमलज्जं कलङ्किनं तव मुखे स्मृते जलमुक् ॥

भुवनत्रयैकभाष्या देशाद्भिन्नाऽपि वर्णतोऽभिन्ना ।
भाषाऽसि सा त्वमेषा व्यवहरति यथाऽखिलो लोकः ॥

मूकत्वं प्रति वाचामीश्वरि वाच्यः कियांस्तव द्वेषः ।
जलरूपेण वहन्त्यपि न क्षमसे स्थाऽम्बुवीचौ तत् ॥

गणेश-गौरव

हाथी का मुख होने पर भी आप केवल एक दाँत धारण करके बोलते हैं। स्वभाव से दो (द्वैत) होते हुए भी वस्तु वास्तव में एक (अद्वैत) ही है।

सूप-जैसे अपने कानों को फटकारकर आप पुनः-पुनः यह शिक्षा देते हैं कि सब तुच्छ बातों को कानों से दूर करके वस्तु-तत्त्व को स्वीकार करो।

भारती-वैभव

हे माता, तुम्हारे चरणों का यह नख-रूपी स्वच्छ दर्पण सदा हमारे सामने रहे, जिससे हम आपको प्रणाम करते हुए, बहुतों से मतभेद रहने पर भी, अपना मुख दिखला सकें (अपने मत का प्रचार कर सकें)।

वीणा-वादन करती हुई वाणी की अधीश्वरी देवी की जय हो! तुम रंगमंच पर नटों की तरह नाना अर्थों को हमारे हृदय में नचाने वाली बनो।

हाथ में रुद्राक्ष माला लिये क्या आप शान्त भाव से जगत् को यह शिक्षा नहीं देतीं कि इन्द्रिय-समूह को जीत लेने वाले प्राणी को शान्ति अवश्य मिलेगी?

मैं जल से पैदा होने वाला हूँ, यह सोचकर कमल लज्जा के मारे स्वयं तुम्हारे नीचे स्थित है। तुम्हारे मुख का स्मरण होने पर बादल उस कलंकयुक्त निर्लज्ज चन्द्रमा को ढक लेता है।

तीनों लोकों में एक-मात्र बोली जाने वाली तुम, देश-विदेश में भिन्न होने पर भी, वर्ण की दृष्टि से अभिन्न हो। तुम एक ऐसी भाषा हो जिसका सारा संसार व्यवहार करता है।

हे वाणी की अधीश्वरी, मूकता के प्रति तुम्हारा कितना द्वेष है! जल-रूप से बहती हुई तुम उसे जल की तरंगों में भी क्षमा नहीं करतीं (अर्थात् तुम्हारा आराधन कर कोई मूक नहीं रह सकता)।

स कदर्थितत्रितापो नानार्थकृतार्थितार्थिजनसार्थः ।
अन्यैरशक्यमोषस्तव कोपे मेऽस्तु कृततोषः ॥

सत्यां तव करुणायां खलता खलतैव जायते निखिला ।
हन्ताऽन्यथा तु खरता नृतनुसितावहनमात्रदुःखरता ॥

माधवप्रसाद देवकोटा

(आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक) तीन तापों से पीड़ित याचकों के समूह को तुमने नाना इच्छित वस्तु देकर कृतार्थ कर दिया। तुम्हारे कोष को दूसरे चुरा नहीं सकते। वह कोष मुझ पर अनुग्रह करे।

तुम्हारी करुणा होने पर सारी खलता (नीचता) खलता (स्खलित) ही हो जाती है, अन्यथा वह खरता (गधापन) बन जाती है, जो मनुष्य के शरीर में रहकर ढोने का ही कष्ट उठाती रहती है।

माधवप्रसाद देवकोटा

श्रीसंस्कृतवाण्या आर्तनादसहितविज्ञापना

प्राचीनभारतविराट्सचिवादिवर्गैः केन्द्रीयशासनसभासु सुपूजिताऽऽसम् ।
किन्त्वद्य मन्त्रिनिचयैरनपेक्षिताऽहं दोषोऽत्र कः कथय मे भगवन् कृपालो ॥

विद्या हि नाम जगतीतलमानवानामेकैव संस्कृतमहाऽमरगीः पुराऽऽसीत् ।
किन्त्वद्य भौतिकमताभिरुचीन् प्रतीयं निन्द्येव भाति जनधीरधिका किमासीत् ॥

स्त्रीबालसेवकजनैः स्वगृहे सुखेन व्याहर्तुकामिरुचिहेतुकदेशभाषाः ।
निष्पादिता विगतसारतया तथापि तास्वेव मामकसुतासु रता इमेऽद्य ॥

आंग्लेयादिविदेशशिष्टिसमये देशीयराजादिभिः
पुण्योपार्जनबुद्धिभिः स्वभवने सामान्यतो रक्षिता ।
किन्त्वेतेऽद्य पदच्युता भुवि महाराजेन्द्र एकोऽधिपः
यद्यस्माच्च भवेत्समुन्नतिरितः किं वा शरण्यं मम ॥

त्यक्त्वा मां रुदतीं निराश्रयतया लोकाः प्रशंसापराः
प्रत्यब्दं बहुवित्तनाशकसभाः कुर्वन्ति किं तेन मे ।
गेहे पीडितमातरं प्रति सुताः सेवां विहायादरम्
तच्छ्लाघास्तुतिकालयापनपरा मान्ये तु कुर्वन्ति किम् ॥

श्रीविश्वसंस्कृतमहापरिषत्प्रमुख्याः कुर्वन्ति किं मम सभासु कृतासु यत्नैः ।
नैतावताऽपि मुखतो मम राष्ट्रवाक्त्वमुच्चारयन्ति नगरीगतवीथिकासु ॥

(तर्हि किमिच्छसि भवतीत्युक्तौ तत्राह)

तैलङ्गादिविभिन्ननामसु महाप्रान्तेषु तत्रामिकाः
भाषास्सन्तु समस्तभारतभुवि श्रीभारतीनाम्न्यहम् ।
भूयासं जनतन्त्रभूषणतया राष्ट्रीयभाषापदे
गैर्वाणी सकलार्थसाधकमहावाणी मनोहारिणी ॥

संस्कृत वाणी का आर्तनाद

प्राचीन भारत के महान् मंत्री आदि वर्गों द्वारा मेरी केन्द्रीय शासन की सभाओं में भली भाँति पूजा की जाती थी, किन्तु आज मंत्रिगणों द्वारा मैं उपेक्षित हूँ। हे कृपालु भगवन्, बताइए, इसमें मेरा क्या दोष है?

पहले इस जगती-तल के मानवों की एक-मात्र विद्या महादेववाणी संस्कृत ही थी। किन्तु आज भौतिक मतों में रुचि रखने वाले लोगों के लिए वह निन्दनीय बन गई है। क्या तब लोगों की बुद्धि अधिक थी?

प्रादेशिक भाषाएँ इसलिए बनाई गई थीं कि स्त्री, बालक, सेवक आदि लोग उसका अपने घरों में सरलता से व्यवहार कर सकें। यद्यपि वे सारहीन हो गई हैं तथापि आज मेरे ये पुत्र उन्हींमें मग्न हैं।

अँगरेज आदि विदेशियों के शासन-काल में पुण्योपार्जन के अभिलाषी देशी राजाओं ने अपने भवन में मेरी साधारण रूप से रक्षा की, किन्तु वे राजा आज पदच्युत हो गए हैं और पृथ्वी पर महाराजेन्द्र ही एकच्छत्र शासक हैं। यदि अब भी मेरी उन्नति न हो तो फिर मैं किसकी शरण लूँ?

लोग मुझे निराश्रित रोती हुई छोड़कर मेरी प्रशंसा करते हैं और प्रतिवर्ष सभाएँ करके बहुत धन का नाश करते हैं। उनसे मेरा क्या लाभ! यदि पुत्र घर में दुखी माता की सेवा और उसका आदर करना छोड़कर उसकी प्रशंसा एवं स्तुति करके समय बिताते रहें तो वे माता का क्या भला करते हैं?

विश्व-संस्कृत-महापरिषद् के प्रमुख नेता यत्नपूर्वक की जाने वाली सभाओं में मेरा क्या उपकार करते हैं? उनसे इतना भी नहीं होता कि नगरों की सड़कों पर मुँह से मुझ राष्ट्रवाणी का उच्चारण तो करें।

[तब फिर आप चाहती क्या हैं? यह पूछे जाने पर उन्होंने कहा—]

तैलंग आदि विभिन्न नाम वाले प्रान्तों में उस-उस नाम की भाषाएँ भले ही हों, पर जनतंत्र का भूषण होने के कारण मैं ही समस्त भारत-भूमि में राष्ट्रीय भाषा के पद पर स्थित भारती नाम की भाषा बनूँ, जो कि समस्त इच्छाओं को पूरा करने वाली सुन्दर महावाणी देववाणी ही है।

प्रान्तीयभेदविनिवारणकामना चेद्भाषाऽपि देशगतभेदविवर्जितैव ।
केन्द्रीयसद्मसु भवेदपरा न काऽपि तस्माद्भवेयमिह भारतराष्ट्रभाषा ॥

(भवतीं न कोऽप्यत्र जानाति कथं भवेः राष्ट्रभाषेत्युक्तौ तत्राह)

मामद्य यद्यपि न सर्वजना विदन्ति राष्ट्रीयतां समधिगत्य तथापि विद्युः ।
आंग्लादिवाचमपि भारतवासिनश्च नैवान्यथा कथमपीह पृथाऽपठिष्यन् ॥

केचिन्मां विधवासुतामिव गृहे वाञ्छन्तु नामादृताम्
रुन्धन्त्वन्यजनाः स्वसिद्धिकृतयः प्रान्तीयभाषाप्रियाः ।
श्रीमद्भारतमातुरार्तिनिनदस्वातन्त्र्यकांक्षा यथा
वाञ्छा मेऽप्यचिरात्तुसेत्स्यति महाकान्त्यैव संदृश्यताम् ॥

माधवचैतन्य ब्रह्मचारी

यदि प्रान्तीय भेद-भाव मिटाने की कामना है और ऐसी भाषा चाहते हो जो केन्द्रीय सदनों में प्रादेशिक वैभिन्य से मुक्त हो तो मेरे सिवाय कोई दूसरी भारत की राष्ट्रभाषा नहीं बन सकती।

[आपको तो यहाँ कोई नहीं जानता, फिर आप राष्ट्रभाषा कैसे बन सकती हैं? इस पर वह बोलीं—]

यद्यपि आज मुझे सब लोग नहीं जानते, फिर भी राष्ट्रीयता प्राप्त करके वे जान लेंगे। ऐसा न होता तो भारतवासी अँगरेजों की बोली को भी व्यर्थ ही क्यों पढ़ते?

चाहे कुछ लोग मुझे विधवा की लड़की की तरह नाम-मात्र के रूप में घर में रखें तथा प्रान्तीय भाषाओं के प्रेमी दूसरे लोग स्वार्थ-सिद्धि के लिए (मेरे मार्ग में) रुकावट डालें, पर जैसे भारत माता की स्वतंत्र होने की आर्तनादयुक्त इच्छा महाक्रान्ति से ही पूरी हुई वैसे ही मेरी अभिलाषा भी महाक्रान्ति से ही पूर्ण होती हुई देखोगे।

माधवचैतन्य ब्रह्मचारी

अपरोक्षामृतशतकम्

नृत्यन्मुहुर्घटपटादिकटूक्तिजालै-
र्गर्घांश्च ङङ्करिङ्कसादिवचःप्रपंचैः ।
उच्चैस्तरां करटवद्विरटन् कठोरं
व्यस्मार्षमच्युत तवाङ्घ्रिसरोजयुग्मम् ॥

मन्थाश्च गोपभवनेषु धृतात्मलाभः
स्तुत्यो भवत्यतितरां जडविग्रहोऽपि ।
यस्मादयं भगवता दधिदुग्धभाण्ड-
भङ्गाय हस्तकलितः स्वयमुज्झितोऽभूत् ॥

आख्यातं नैव जानामि नैव जानामि कर्म च ।
कथं जानामि कर्तारं विभक्तिज्ञानवर्जितः ॥

शौरे स्वयं मे पुरतः समेत्य
तव प्रसादं मयि दर्शयस्व ।
जाने विनाऽप्यर्थिजनप्रयासं
स्वच्छन्दतो वर्षति कृष्णमेघः ॥

गाढान्धकारपिहितं हृदयं ममेद-
मित्याकलय्य भगवंस्त्वमुपेक्षसे चेत् ।
हानिर्न काऽपि भविता मम तेन शौरे
हीयेत ते जगति सर्वगतत्वकीर्तिः ॥

त्वदीयः पुत्रोऽसाविति मनसि धृत्वा सविनयं
मया कामः शौरे हृदयमुपतिष्ठन् बहुमतः ।
बलान्निर्वास्याऽसौ मम गुणगणानात्मजनुषः
स्वयं राज्यं कुर्वन् स्ववचनकरं मामकुरुत ॥

कृष्ण-स्तुति

घट-पट आदि कटु वचनों के जाल में बार-बार नाचते हुए, 'डेङसिङस्' (व्याकरण की विभक्तियाँ) आदि वचनों के झमेले से उन्मत्त होते हुए तथा कौए की तरह जोर-जोर से कर्कश ध्वनि में रटते हुए मैं, हे अच्युत, आपके दोनों चरण-कमलों को भूल गया।

ग्वालों के घरों में मथनी, जड़ शरीर होने पर भी, अपना लाभ सम्पादित करके प्रशंसनीय बनती है, क्योंकि उसे भगवान् ने दूध-दही के बरतनों को तोड़ने के लिए स्वयं अपने हाथ से उठाया था।

विभक्ति-ज्ञान से रहित मैं न क्रिया जानता हूँ और न कर्म ही जानता हूँ, फिर कर्ता को कैसे जान सकता हूँ?

हे कृष्ण, तुम स्वयं मेरे सामने आकर अपनी कृपा मुझ पर दिखाओ। काला बादल याचक के प्रयास को जाने बिना भी स्वयमेव वर्षा करता है।

गाढ़े अँधेरे से ढके मेरे हृदय को देखकर, हे भगवन्, यदि तुम मेरी उपेक्षा कर रहे हो तो उससे मेरी कोई हानि नहीं होगी, किन्तु हे कृष्ण, तुम्हारी संसार में जो सर्वव्यापिनी कीर्ति है, वह क्षीण हो जायगी।

यह कामदेव आपका पुत्र है, ऐसा मन में सोचकर मैंने विनयपूर्वक उसे हृदय में स्थापित किया और उसका बड़ा सम्मान किया, किन्तु वह मेरे सारे गुण-समूह को बलपूर्वक बाहर निकालकर स्वयं राज्य करने लगा और उसने मुझे अपना आज्ञाकारी सेवक बना लिया।

पयोधिमध्ये शयितं भवन्तं
पुराणजातानि समामनन्ति ।
क्वासौ पयोधिः क्व भवान् दयाब्धि-
र्न वेद्मि किञ्चित् पतितो भवाब्धौ ॥

जाने भवानच्युतशब्दवाच्यो
जातोऽधुनाऽन्वर्थकनामधेयः ।
मयोपहूतोऽपि महारवनेन
स्वस्थानतो नैपदपि च्युतस्त्वम् ॥

कौमोदकी तव गदा गदकारिणी स्या-
दित्याकलय्य हृदयं मम भीतमासीत् ।
सैषा गदं भुवि विधूय मुदं ददाना
कौमोदकीति निजनाम करोति सार्थम् ॥

लक्ष्मीपतेः पदयुगे पतनं विधेयं
लक्ष्मीपतश्चरणयोर्विहितः प्रणामः ।
एवंविधं स्खलितमाचरितं नटेन
स्वामिन् कृपाजलनिधे सदयं क्षमस्व ॥

व्यासराय शास्त्री, के. एल.

पुराण-समुदाय कहते हैं कि आप क्षीरसागर के बीच शयन करते हैं, किन्तु कहाँ है वह क्षीरसमुद्र और कहाँ हैं दया के समुद्र आप ? संसार-समुद्र में डूबा मैं कुछ नहीं जानता ।

अच्युत नाम से पुकारे जाने वाले आपको मैं जान गया हूँ । आपका यह नाम सार्थक हो गया है, क्योंकि मेरे जोर-जोर से पुकारने पर भी आप अपने स्थान से जरा भी च्युत नहीं हुए ।

आपकी कौमोदकी गदा रोगकारिणी है, यह समझकर मेरा हृदय भयभीत था, किन्तु वही संसार की पीड़ा को दूर करके आनन्द देती हुई 'कौमोदकी' (पृथ्वी को आनन्दित करनेवाली) नाम सार्थक कर रही है ।

लक्ष्मीपति (विष्णु) के चरणों में प्रणाम करना चाहिए, इसलिए मैं लक्ष्मी-सम्पन्नों (धनिकों) के चरणों में प्रणाम कर बैठा। इस तरह मुझ नचैये से यह भूल हो गई । हे कृपासिन्धु, हे नाथ, उसे आप दया करके क्षमा कर दें ।

व्यासराय शास्त्री, के. एल.

श्रीरामदासचरितम्

दिनमणिरथ यावद् द्योतते व्योममध्ये
विकिरति च स भक्तः पुष्पपत्राणि विष्णौ ।
समजनि सुतरत्नं तावदस्य प्रियायाम्
दशरथदयितायां यत्क्षणे रामचन्द्रः ॥

मृदुलमृदुलवाचा भाष्यमाणोऽपि पित्रा
पुनरपि पुनरासैः क्ष्वेलितो नर्मवाक्यैः ।
निमिषरहितनेत्रो निश्चलः स्तब्धगात्रः
स्वजनमनभिजानन् बद्धमौनः स तस्थौ ॥

स्थिरं त्वेतदुपासनामयमहो ज्येष्ठोऽतिलोभात्पितुः
कर्तुं कृत्स्नश आत्मसाद्गमिलषन्मङ्गामप्याहरत् ।
तन्निर्गत्य गृहादुपासनमिदं सम्पादितं स्वेच्छया
श्रीरामस्य च दास्यमप्यधिगतं धन्योऽस्मदीयोऽन्वयः ॥

अलक्षितस्तावदशेषबान्धवैर्विवाहपीठाक्षिभृतं वरोऽसरत् ।
अदृश्य आसीज्जनसङ्कुले स्थले क्षणात्तमिस्रे स्वपुरं पलायितः ॥

अथ स विहितादेशो मातुर्वटुः पटुवाङ्मतिः
समजनि सुखव्यावृत्तात्मा पुरश्चरणोन्मुखः ।
निखिलवसुधां मन्वानः स्वं कुटुम्बकमित्यहो
जगति महतामेषा रीतिश्चिरादपि विश्रुता ॥

कुहचिदपि मे नैष्फल्यं चाक् शुभाऽपि भजेद्यदि
कथमिह तदा श्रद्धां चायं जनो जनयेज्जने ।
न किमपि तवासाध्यं पृथ्व्यामकिञ्चनवत्सलः
द्रुतमिह वचस्त्वद्भक्तस्य प्रभो कुरु सूनृतम् ॥

रामदासचरित

जब तक सूर्य का रथ आकाश में चमकता रहता तब तक वह भक्त विष्णु पर पत्र-पुष्पों की वर्षा करता रहता। जिस क्षण में दशरथ की प्रिय रानी से रामचन्द्र का जन्म हुआ, उसीमें उसकी प्रियतमा ने भी पुत्र-रत्न उत्पन्न किया।

पिता द्वारा अत्यन्त कोमल वाणी में सम्बोधित किये जाने पर भी और गुरुजनों द्वारा विनोदपूर्ण वाक्यों से बार-बार खेलाये जाने पर भी वह अपलक नेत्रों से स्थिर और स्तब्ध-शरीर होकर अपने परिवार वालों को न पहचानते हुए चुपचाप खड़े रहे।

पिता के उपासना-रूपी धन को पूर्ण रूप से अपना बनाने के लिए बड़े भाई ने अत्यन्त लोभवश मेरा हिस्सा भी छीन लिया। तब मैंने घर से निकलकर स्वेच्छा से यह उपासना की तथा श्री राम का दास्य प्राप्त किया। इस प्रकार हमारा वंश धन्य हो गया।

किसी भी सम्बन्धी के ताड़े बिना वर महोदय विवाह की वेदिका से चुपचाप खिसक गए और भीड़-भाड़ वाले स्थान में दृष्टि से ओझल हो गए; क्षण भर में वह अँधेरे में अपने नगर से भाग निकले।

माता की आज्ञा प्राप्त करने पर उस तीव्र बुद्धि और वाक्चतुर ब्रह्मचारी ने समस्त पृथ्वी को अपना कुटुम्ब समझते हुए पुरश्चरण (जप-यज्ञ) में संलग्न होकर अपनी आत्मा को सुखी किया। संसार में महापुरुषों की यह रीति चिरकाल से प्रसिद्ध है।

यदि मेरी वाणी शुभ होने पर भी कहीं निष्फल हो जाय तो यह व्यक्ति किस प्रकार जन-जन में श्रद्धा उत्पन्न कर सकेगा? हे दीनों के स्नेही, तुम्हारे लिए पृथ्वी पर कुछ भी असाध्य नहीं है। इसलिए हे प्रभु, तुम शीघ्र ही अपने भक्त के वचन सत्य कर दो।

सुमनसः कपिसंश्रितभूरुहे किमभवन् धवला उत लोहिताः ।
इति वदन्तममुं न हि लोहिता मुनिवरोऽभ्यदधाद्धवला इति ॥

नहि सिता अभवन् खलु ताः परं रुचिरबालरविच्छविपिञ्जराः ।
इति वदन् स च माणवकोऽकरोत् सततवाक्कलहं मुनिना सह ॥

अजानता हन्त तवानुभावं कृतः प्रमादोऽद्य महाञ्जनेन ।
अतोऽपराधं भगवन् क्षमस्व प्रविश्यतां मन्दिरमिन्दुमौलेः ॥

प्रविष्टमात्रेऽथ तपस्विवर्ये तदालयं श्रीवृषभध्वजस्य ।
देदीप्यमानं पुनरेव लिङ्गं जनस्य दृग्गोचरतां जगाम ॥

प्रोक्तमात्र इह सा यथोचितास्फालितात्ममृदुपक्षयुग्मका ।
डिड्य आशु गगने सकूजितं स्वेच्छयैव च वियद्विहारिणी ॥

इत्थमाशु समुदीर्य तापसो यावदात्मकरपल्लवेन सः ।
मातुरक्षियुगलं समस्पृशद् द्विः समार्दवमलं जपन्मनुम् ॥

तावदेव सहसा तपस्विनी प्राप्य दृष्टिमियमात्मनः पुनः ।
हर्षतो विकसिताननाम्बुजा पर्यवेष्टत भुजद्वयेन तम् ॥

एकाकिनो निवसतो गिरिकन्दरेऽपि
कीर्तिप्रकाशविसरः प्रससार तस्य ।
क्वापि स्थितस्य हरिणस्य चतुर्दिशासु
कस्तूरिकापरिमलः प्रसरत्यभीक्ष्णम् ॥

मधुव्रतां गिरमसौ च निशम्य हृष्टः
सोत्कम्पमत्र सलिलेष्ववगाह्य गाढम् ।
तत्रोपलभ्य च शिलामयमूर्तियुग्मं
प्रोच्चैः स्तुवन् रघुपतिं तटमाससाद ॥

जिस वृक्ष पर बन्दर बैठे थे उस पर पुष्प सफेद हुए या लाल? इस प्रकार कहने वाले उसको मुनिवर ने बताया कि वे लाल नहीं, सफेद हुए हैं।

वे सफेद नहीं हुए हैं, बल्कि सुन्दर बालसूर्य के रंग के समान लाल-लाल हैं। इस प्रकार कहते हुए वह बालक मुनि के साथ निरन्तर वाक्कलह करता रहा।

आपके अधिकार को न जानते हुए इस व्यक्ति ने यह बड़ा प्रमाद कर डाला। अतः हे भगवन्, आप मेरे अपराध को क्षमा कर दीजिए और इस शिव-मन्दिर में प्रवेश कीजिए।

भगवान् शिव के मन्दिर में तपस्विश्रेष्ठ के प्रवेश करते ही वह लिंग पुनः प्रकाश से जगमगाता हुआ लोगों को दृष्टिगोचर हो गया।

इतना कहे जाते ही उस आकाश-विहारी पक्षी ने अपने दोनों नरम पंख अच्छी तरह फैला लिये और वह स्वच्छन्द होकर चहचहाते हुए तुरंत आकाश में उड़ गया।

इस प्रकार जल्दी कहकर तपस्वी ने मनु को जपते हुए ज्यों ही अपने मृदु हाथ से माता की आँखों को कोमलता से दो बार छूआ, त्यों ही उस तपस्विनी को अपनी दृष्टि प्राप्त हो गई, उसका मुख-कमल हर्ष से खिल उठा और उसने अपनी दोनों भुजाओं से उसे लपेट लिया।

पहाड़ की कन्दरा में अकेले रहने पर भी उनके यश का प्रकाश उसी प्रकार फैल गया जिस प्रकार कहीं भी खड़े हरिण की कस्तूरी की सुगन्ध चारों दिशाओं में निरन्तर फैलती रहती है।

नदी से निकली आवाज को सुनकर वह प्रसन्न हुए और उन्होंने कूदकर पानी में गहरी डुबकी लगाई। वहाँ उन्हें शिला की बनी दो मूर्तियाँ मिलीं और फिर वह तट पर बैठकर ऊँचे स्वर में रघुपति की स्तुति करने लगे।

निष्णातो व्यवहारकर्मसु चरेद्राजन्य आदौ स्वयं
विश्वास्यान् विनियोजयेच्च कुशलान् दुष्टानपास्य द्विषः ।
श्रीमद्दीनजनान् सदा समदृशा सन्तोषयेत्सङ्कटे
शान्तिस्थैर्यजुषात्मना व्यवहरेद्रक्षेद्विवेकं हृदि ॥

तदनु कृशशरीराऽप्याशु बद्धांजलिः सा
विचलितुमपि तल्पे न क्षमा स्तोकमात्रम् ।
भगवति निहितात्मा रामचन्द्रेऽथ साध्वी
जिगमिषुरिव पत्युर्धाम नेत्रे निमील ॥

तदनु जनसमूहः सुप्रतीतो महर्षे-
श्चिरतमतपसात्तापूर्वसामर्थ्यसारे ।
अनमदनुशयार्तो ह्रेपितस्तत्पुरस्तात्
सकरपुटविनम्रस्तं मुनिं चान्वनैषीत् ॥

(स्व.) क्षमा राव

क्षत्रिय पहले स्वयं निपुण बनकर व्यवहार-कर्म का आचरण करे, दुष्ट शत्रुओं को हटाकर कुशल एवं विश्वसनीय लोगों को नियुक्त करे, संकट-काल में धनी-गरीब सबको सम दृष्टि से सन्तुष्ट करे, शान्त और स्थिर आत्मा से व्यवहार करे और हृदय में विवेक बनाये रखे।

तत्पश्चात् उसने, शरीर दुर्बल होने पर भी, हाथ जोड़ लिये। शय्या में वह जरा भी हिलने-डुलने में समर्थ नहीं थी। इसलिए उस साध्वी ने भगवान् रामचन्द्र में ध्यान लगाकर, मानो पति के धाम जाने की इच्छा से, आँखें मूँद लीं।

तदनन्तर उस जन-समूह ने महर्षि की चिरकालीन तपस्या से प्राप्त पहले की महाशक्ति पर भली भाँति विश्वास कर लिया। उन्हें नमस्कार न करने के कारण वह लज्जित एवं पश्चात्ताप से दुखी हो गया, और हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक मुनि के पीछे-पीछे गया।

(स्व.) क्षमा राव

हिन्दी

चयन : रामधारीसिंह 'दिनकर'

कवि-नाम	कविता
'अंचल', रामेश्वर शुक्ल	ओ नभ में मँडराते बादल
'अज्ञेय'	यह दीप अकेला
जगन्नाथप्रसाद 'मिलिंद'	कवि और मानव
'बच्चन'	गीत
बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	विनोबा-स्तवन
जानकीवल्लभ शास्त्री	अन्विति
महादेवी वर्मा	गीत
रामदयाल पांडेय	नया हिमालय
रामधारीसिंह 'दिनकर'	किसको नमन करूँ मैं ?
सुमित्रानन्दन पंत	ध्वंस-शेष

ओ नभ में मँडराते बादल बे-बरसे मत जा !

ओ नभ में मँडराते बादल बे-बरसे मत जा !

मन के होठों पर रस की बिसरी पहचान जगा !
पुरवा की लहरों में सुख की आतुरता उमगा,
सूखे सुमनों को हरियाली का आभास दिखा,
खींच क्षितिज पर शीतलता की कज्जल धूम-शिखा,
आज वर्ष की पहली वर्षा का पहला झोंका,
इतने दिन धरती ने प्रखर पिपासा को रोका ।

ओ वर्षा के पहले बादल बे-बरसे मत जा !

कब से जल-बूँदों को विह्वल शैल निहार रहे,
कब से आतप-दग्ध वनों के प्राण पुकार रहे,
मन जलता है जैसे तृष्णा का क्षण जलता है,
सूखे कूल कगारों का वीरान मचलता है,
आज मधुर स्वप्नों से पावस का आकाश भरा,
गीतों की गूँजों से मर्मर का उल्लास हरा,

ओ मादक उन्मादक बादल बे-बरसे मत जा !

जाग उठी मरु-मरु में सुख की बाष्पाकुल आशा,
इस निदाघ से जला प्रकृति का रोम-रोम प्यासा,
थकी अनमनी धूप माँगती है मीठी बाँहें,
डूब गईं तम में नीडाकुल विहगों की छाँहें,
खेतों-खलिहानों, मुण्डेरों पर, छत पर, घर-घर,
हेर रहे अगणित दृग तुमको जल वाले जलधर,

उमड़ बरसने वाले बादल बे-बरसे मत जा !

हे अनदेखी बान तुम्हारी तरसाते जग को,
पुरवा की थपकी दे-देकर भरमाते जग को,
मन की बूँदों से कब तक जीवन को तृप्ति मिले,
कब तक जलती बालू पर यौवन का फूल खिले,
तुम बरसो जलती धरती का तन शीतल हो ले,
तुम बरसो उतरी थकान का मन मिसरी घोले,

ओ वर्षा के पहले बादल बे-बरसे मत जा।

अंचल

यह दीप अकेला

यह दीप अकेला स्नेह-भरा
है गर्व भरा मदमाता, पर,
इसको भी पंक्ति को दे दो !

यह जन है : गाता गीत जिन्हें फिर और कौन गायेगा ?
पनडुब्बा : ये मोती सच्चे फिर कौन कृती लायेगा ?
यह समिधा : ऐसी आग हठीला बिरला सुलगायेगा ।

यह अद्वितीय : यह मेरा : यह मैं स्वयं विसर्जित :
यह दीप, अकेला, स्नेह भरा,
है गर्व भरा मदमाता, पर,
इसको भी पंक्ति को दे दो !

यह मधु है : स्वयं काल की मौना का युग-संचय,
यह गोरस : जीवन कामधेनु का अमृत पूत पय,
यह अंकुर : फोड़ धरा को रवि को तकता निर्भय,
यह प्रकृत, स्वयम्भू, ब्रह्म, अयुत :
इसको भी शक्ति को दे दो !

यह दीप अकेला स्नेह भरा
है गर्व भरा मदमाता, पर,
इसको भी पंक्ति को दे दो !

यह वह विश्वास, नहीं जो अपनी लघुता में भी काँपा,
वह पीड़ा, जिसकी गहराई को स्वयं उसीने नापा ।
कुत्सा, अपमान, अवज्ञा के धुँधुआते कड़ुवे तम में,
यह सदा द्रवित, चिर-जागरूक, अनुरक्त-नेत्र,
उल्लम्ब बाहु यह चिर-अखंड अपनापा
जिज्ञासु प्रबुद्ध सदा श्रद्धामय,
इसको भक्ति को दे दो !

यह दीप अकेला स्नेह भरा,
है गर्व भरा मदमाता, पर,
इसको भी पंक्ति को दे दो !

'अज्ञेय'

कवि और मानव

दंभ न कर जग के सुधार का, कवि मानव को प्यार किए जा !

१

प्यार कि जो निर्झर-सा उर की, दृढ़ता चीर बहा करता है
मर्म कथा अन्तर की अंतर से जो सहज कहा करता है,
प्रतिदानों की आकांक्षाओं से जो दूर रहा करता है।
तू उत्सर्ग स्नेह से जीवन मरु में रस संचार किए जा !
दम्भ न कर जग के सुधार का, कवि मानव को प्यार किए जा !

२

तम प्रकाश की भाँति मनुज में बल भी है दुर्बलता भी है
प्रगति पन्थ पर आदिकाल से यह रुकता भी चलता भी है,
धूप छाँह का सतरंगीपन उगता भी है, ढलता भी है।
रुके कदम से घृणा न कर तू चलते को उत्साह दिए जा !
दंभ न कर जग के सुधार का कवि मानव को प्यार किए जा !

३

अपने जीवन के छिद्रों से प्राण स्वास ऐसा निस्सृत कर
मानव के जीवन के छिद्रों को जो स्नेह स्वरों से दे भर
मानव की अपूर्णता बंशी बन गुंजित कर दे भू, अम्बर।
अपने मधु से मधुर मनुज के अन्तर का तू अमृत पिए जा !
दम्भ न कर जग के सुधार का, कवि मानव को प्यार किए जा !

४

स्वाभिमान का शिखर विनय का लघु रज कण हो जिसका अन्तर
हास-रुदन, सुख-दुख की लहरों का जिसका उर हो रत्नाकर
कंपित पद दृढ़ निश्चय दोनों ले जो चढ़े साधनागिरि पर।
ऐसा मानव जिए युगों तक तू भी उसके साथ जिए जा !
दंभ न कर जग के सुधार का, कवि मानव को प्यार किए जा !

जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द'

गीत

याद तुम्हारी लेकर सोया, याद तुम्हारी लेकर जागा।

सच है, दिन की रंगरँगीली
दुनिया ने मुझको बहकाया,
सच, मैंने हर फूल-कली के
ऊपर अपने को डहकाया,
किन्तु अँधेरा छा जाने पर,
अपनी कंथा से तन-मन ढक,
याद तुम्हारी लेकर सोया, याद तुम्हारी लेकर जागा।

वन-खंडों की गंध पवन के
कंधों पर चढ़कर आती है,
चाल पदों की ऐसे पल में
पंथ पूछने कब जाती है,
शिथिल भँवर की शरण जलज की
सलज पँखुरिया ही होती हैं,
प्राण तुम्हारी सुधि में मैंने अपना रैन-बसेरा माँगा,
याद तुम्हारी लेकर सोया, याद तुम्हारी लेकर जागा।

सत्य कल्पना में वसुधा पर
बहुत दिनों से बहस हुई है,
मगर तुम्हारी अधर-सुधा से
मेरी भीगी पलक छुई है,
तुमने कंठ लगाया तब तो,
कंठस्थल से राग उमड़ता,
इतने सबको सपना समझूँ तो है मुझ-सा कौन अभागा,
याद तुम्हारी लेकर सोया, याद तुम्हारी लेकर जागा।

बीच खड़ी हैं हम दोनों के
अभी न जाने कितनी रातें,
अभी बहुत दिन करनी होंगी
केवल इन गीतों में बातें,
कितने रंजित प्रात, उदासी
में डूबी कितनी संध्याएँ,
सबके बीच पिरोना होगा, प्रिय हमको धीरज का धागा,
याद तुम्हारी लेकर सोया, याद तुम्हारी लेकर जागा।

बच्चन

अहो मंत्र-द्रष्टा, हे ऋषिवर

१

अहो मन्त्र-द्रष्टा, हे ऋषिवर, हे सुशान्त, हे सन्त महान,
हे भूदान-यज्ञ के होता, हे निश्छल वामन भगवान,

अहो ऊर्ध्वरेता, तापस हे, पूर्ण-ब्रह्मचारी द्युतिमान,
तुम विषपायी प्रलयंकर के काम-दहन निष्ठामय प्राण,

तुंग शैल हे, गहन-सिन्धु हे, तुम असीम आकाश प्रमाण,
गुणनिधान, हे नित-अकाम, तुम मानवता की एक उड़ान ।

२

तुम स्थिरकाय, अस्थिपंजर हे, प्राणायाम-सिद्ध ध्रुव-ध्यान,
हे पद्मासनस्थ संन्यासी, नित्य-अनिंगित, नित्य-समान ।

हे शरीरधर अमर उपनिषत्, हे तुम प्रणव-मन्त्र के गान,
हे मेरे यज्ञ के हुताशन, हे तुम मूर्तिमन्त बलिदान,

हे मानवी क्रांति की झंझा, हे तुम मानव के कल्याण,
काल पुरुष हे, भाल-चक्षु हे, व्याल-वशीकर, अमृत-निधान ।

३

मानव, अवलोको यह आया, लो देखो यह फिर आया,
तीव्र पिपासाकुल जग-नभ में, श्याम मेघ यह घिर आया;

घृणा, लोभ, संचय के मरु में अर्पण-रस-फुहियाँ बरसीं;
यह प्यासी वसुमती ऋतुमती, फिर नव-सिहरन से सरसी ।

अविश्वासमय मनोभूमि में सुविश्वास के तृण लहरे,
मृण्मय मर्त्यलोक में फिर से चिर चेतन केतन फहरे ।

४

अन्तस् का दानव जब बोला, यह मेरा, वह भी मेरा,
जब भीतर की लिप्सा बोली, निशि मेरी, अह भी मेरा;

जब संसार श्मशान बन चला, तेरे-मेरे के रण से,
होने लगी क्रीत पृथिवी जब, चाँदी-सोने के पण से।

उस क्षण शान्त, सन्त, द्रष्टा ऋषि, तज एकान्तिक ब्रह्मानन्द,—
स्वयं बँध गया जन कल्याणी, हिय रानी करुणा के फन्द

५

हुलसी है मेदिनी स्वेदिनी, वेपथुमती, रसा सरसा,
पूर्व स्मरण से आज बह रहा, उसके हिय में निर्झर-सा।

अंकित हुए पुनः वे पद तल जो त्रेता में सबल चले,
लोक हितार्थ बने बनवासी जो निज नगरी से निकले;

जो मथुरा से चले द्वारिका, वैसे ही ये चरण भले,
वे ही चरण जो कि वैशाली के गृह-आँगन में मचले।

६

वे ही चरण पोरबन्दर से, निकल भ्रमे भूतल भर में,
जिनकी नख-ज्योति ने जगा दी ज्योति जनों के घर-घर में,

उन्हीं पदों का स्पर्श प्राप्त कर कम्पित है अवनी वृद्धा,
सन्त विनोबा के चरणों में, लिपट रही मनु की श्रद्धा।

भारत की संस्कृति का पुंजीभूत रूप यह डोल रहा,
भारत का पुराण है उसके श्रीमुख से फिर बोल रहा।

७

प्रति युग में पुराण बोला है, नव शैली, नव शब्दों में,
किन्तु, वाक्य-आधार वही जो, संचित शत-शत शब्दों में,

वर्तमान की जननी तो है, अति गत की झुट-पुट सन्ध्या,
कब अतीत घटिकाओं की वह उर्वर कोख हुई वन्ध्या?
वर्तमान शिशु है उसका, है भावी नित्य गर्भ-गत पूत,
भावी, वर्तमान, दोनों ही, भूत काल से हैं संभूत।

८

वर्तमान की किलकारी में यदि न साम्य गत के स्वर का,
तो वह वर्तमान है केवल पुत्र वर्ण के संकर का;
वही प्रगति है जो कि पूर्व गति का सुसामयिक उत्प्लव है,
पूर्वाधारित नवल सृजन ही वर्तमान का विप्लव है;
आर्ष स्वप्न-द्रष्टा, नव स्रष्टा, यह ऋषि विप्लवकारी है,
पहचानो इसको, ओ जग जन, यह तो भय-रव-हारी है।

९

क्यों न सराहें भाग्य आज निज जब हम घर साजन आए?
एक पुरुष में पुरुषोत्तम के हम सबने दर्शन पाए;
मानव प्रगति सतत निःसीमित, इसकी कहाँ इयत्ता है?
नरता से नारायणता तक इसकी निरवधि सत्ता है।
ये ऋषि, सन्त, तपस्वी, जिनके कर्माखिल ब्रह्मार्पण हैं,—
कितनी सम्भावना प्रगति की इसके निर्मल दर्पण हैं।

१०

मानव इनमें अवलोको निज छवि, हग में भर तन्मयता।
इनमें निज स्वरूप पहचानो कहाँ तुम्हारी मृण्मयता?
ओ मृत्तिका प्रसूत, यदपि तव भव में है रज-कण-मयता,
किन्तु तुम्हारा अन्तिम पद है नित्य सनातन चिन्मयता;
तव आवरण पांसु-कण निर्मित धूलि धूसरित हैं तव गात;
पर, तुम तो उनके वंशज हो जिनके अमरता जिनके हाथ।

११

दानवता के कन्धों पर चढ़ कहाँ जायगी मानवता ?
विध्वंसों की प्रवृत्ति में है, दानवता ही दानवता;

घृणा वैर से भरे कुम्भ में नीर-क्षीर-अस्तित्व कहाँ ?
अव्यभिचार भाव किमि प्रकटे व्यभिचारी व्यक्तित्व जहाँ ?

आपा-धापी के प्लावन में सामाजिकता क्यों न बहे ?
मेरे-मेरे के इस रव में तेरे दुख की कौन कहे ?

१२

हिय में नित्य चिता सुलगाओ औ' जीवन की आश करो ?
गान तान सुनने के हित तुम क्रन्दन से आकाश भरो ?

विष को निज घट में भर-भरकर अमिय धार की चाह करो ?
समझो अपने को निर्माता जब तुम निज गृह-दाह करो ?

पारस्परिक विरोधों से यों भर-भर कर जीवन अपना—
देख रहे हो शुभ भविष्य का क्या ही उद्भ्रामक सपना !

१३

सुन लो सन्त वचन अब, जिनसे गूँज चुके हैं मन्वन्तर,
जिनने थर-थर कँपा दिये हैं अयुत युगों के अभ्यन्तर;

वह वाणी जिससे सिहरी है मानवता की शत शतियाँ,
हाँ, जिसने परिवर्तित की हैं मनु-वंशज-गण की गतियाँ

सावधान, सुन लो ओ मानव फिर से गूँजी वह वाणी,
अविच्छिन्न इतिहास लड़ी की कड़ी भारती कल्याणी ।

१४

भारत के उद्बुद्ध भाव ने निज को है अवतीर्ण किया,
सहस्राब्दियों की संस्कृति ने निज को फिर विस्तीर्ण किया,

स्वयं देह धरकर यह अपना गत इतिहास पधारा है,
वर्तमान में बँध, अतीत का यह उल्लास पधारा है;
आओ, यह युग पुरुष निहारो, जन गण निज तन-मन वारो,
अपना शुद्ध रूप तुम निरखो, मुक्ति मन्त्र निज उच्चारो।

१५

इस विराट् से जगड्वाल की जो नित नूतनता-सृति है,
जो नूतन मोहकता है, वह प्रकृति पुराणी की कृति है;
जो अनन्त दिक्कालाधनवच्छिन्न सत्य, वह है प्राचीन,
उसका तात्कालिक हृदयंगम यह है विप्लव नित्य नवीन;
आज सुनो इस ऋषि की वाणी नव विप्लवोद्घोषिणी यह,
नित नूतन औ नित्य पुरातन जन गण हृदय तोषिणी यह।

१६

जीवन की चादर मत फाड़ो, उसको तुम बिनते जाओ,
जागरूक बन तुम अपनी सब घटिकाएँ गिनते जाओ;
यों कह उन्मन, पूर्ण तपोधन मूर्तिमान प्रण घूम रहे,
ये कृश तन ये अति बलिष्ठ मन लिये अनन्त-प्रण घूम रहे;
रोम-रोम में राम रमे, ये निर्धन के धन घूम रहे,
इनके नम्र पुण्य चरणों को शत सहस्र तृण चूम रहे।

१७

नित्य सनातन, नित्य पुरातन, अति कल्याणयन, नित्य नवीन,
'दानं समविभाजनं'—उसका यह अद्भुत सन्देश अदीन।
नित्य अभय, क्षण-क्षण निर्भयता-दायक, समगति-संचालक,
वह उनका सन्देश क्लेश-हर, तिमिर-निकन्दन, जग-पालक;
आज हो रहा मानवता का तात्त्विक पुनर्जन्म देखो,
निज प्रांगण की युग-प्रवर्तिका यह नव क्रीड़ा तो पेखो।

१८

वाद और प्रतिवादों का यह समन्वयक सन्तुलित सुमन्त्र,
श्रेय-प्रेय का अभिनव दाता, साम्य-योग का साधक तंत्र,

आज तुम्हारे ही आँगन में, सिद्ध हो रहा है, देखो,
शंकाओं का ध्वान्त रश्मि-शर विद्ध हो रहा है, देखो ।

भर विश्वास हृदय में अपने, तज शैथिल्य, सवेग बढ़ो,
ओ जन, तुम अपने ही कर से निज भविष्य निर्भीक गढ़ो ।

१९

देखो, आज तुम्हारे नभ में मन्द्र-मन्द्र ध्वनि गूँज रही,
इक तापस के कारण जग को नई दिशा इक सूझ रही;

एक दंष्ट्र संघर्ष क्रूर की अपरिहार्यता दूर हुई,
लोह-असि-सिद्धान्त-ध्वान्त की अनिवार्यता दूर हुई ।

अडिग विनोबा ऋषि का दर्शन दिखा रहा है अभिनव पन्थ
मानो पुनः देह धर आया सत्यलोक-गत गांधी सन्त ।

२०

हिंसक तत्त्वार्थों की कच्ची लघु दीपिका विचूर्ण हुई,
मानव की सुविकास पिपासा बिना रक्त ही पूर्ण हुई;

शान्ति प्रेयसी प्रगति-भावना—नीरव थी, अब तूर्ण हुई,
अपने ही चक्र में फँसी इस, हिंसा की गति घूर्ण हुई ।

बर्बरता के चक्रव्यूह में क्यों मानवता फँसे, अरे ?
क्यों डूबे वह शोणित-नद में सन्त-नाव चढ़ क्यों न तरे ?

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

अन्विति

चंचल चित, नित भाव नए भर!

        मरण एकरसता, जीवन में—
नव अनुभाव, विभाव नए भर!

सागर की अगाधता अपनी, अपना गिरि का तुंग शृंग भी,
कुंजर जहाँ कमल-कुल साथी, मधु का साथी वहाँ भृंग भी।
        भले-बुरे के भाव बँधे जो,
उनमें मुक्त प्रभाव नए भर!
चंचल चित, नित भाव नए भर!!

घिसा-घिसा-सा जो कि पुराना, अनुपयोग से जो निरर्थ-सा,
जिसका नाम-रूप अनजाना, जिसे जानना अभी व्यर्थ-सा,
        उस अतीत-भावी संगम हित—
वर्तमान में चाव नए भर!
चंचल चित, नित भाव नए भर!!

इस विष का रस अमृत सरीखा, और अमृत वह विष-सा तीखा
चंदा की झाँईं झुलसाती, आतप ने तप करना सीखा।
        सम के विषम, विसंवादी स्वर—
सहने शील स्वभाव नए भर!
चंचल चित, नित भाव नए भर!!

अंग संग आध्यात्मिक सुख का भास प्रसंग बाह्य अभिव्यंजन,
कभी काय से मन, मन से आतमा तक द्रवित प्रेम का गोपन,
        निर्गुण सगुण-तर्क-दावानल—
धधक बुझे, सुलगाव नए भर!
चंचल चित, नित भाव नए भर!!

मिलन-विरह से, धूप-छाँह से, सुख-दुख से औ' उषा-निशा से
क्षीर-नीर से, प्रेम-पीर से, हिला-मिला आकाश दिशा से।
रत्न ढूँढ़ते बालू मिलती—
तेज-तिमिर-बिलगाव नए भर!
चंचल चित, नित भाव नए भर!!

काँटे निकलें खिले फूल से, शूल फूल के लिए हिंडोला,
पग-पग पर तलवे सहला, हँस, मग में सुमन, मगन रह बोला!
उपल-उपल चल सिन्धु-समुत्सुक—
गान, उफान, बहाव नए भर!
चंचल चित, नित भाव नए भर!!

सीमातीत बँधा सीमा में, इसीलिए संघर्ष मुक्ति का,
अनासक्त मुक्तादल जिसके, मूल्य बढ़ेगा क्यों न मुक्ति का।
नीड़ बनाकर बसे मुक्त खग में
नव चहक, विराव नए भर!
चंचल चित, नित भाव नए भर!!

जानकीवल्लभ शास्त्री

गीत

नहीं हलाहल शेष, तरल ज्वाला से अब प्याला भरती हूँ ।

विष तो मैंने पिया, सभी को व्यापी नीलकण्ठता मेरी,
घेरे नीला ज्वार गगन को बाँधे भू को छाँह घनेरी,
सपने जमकर आज हो गए चलती-फिरती नील शिलाएँ,
आज अमरता के पथ को मैं जलकर उजियाला करती हूँ ।

हिम से सीझा है यह दीपक, आँसू से बाती है गीली,
दिन के धनु की आज पड़ी है क्षितिज-शिंजिनी उतरी ढीली,
तिमिर-कसौटी पर पैनाकर चढ़ा रही मैं दृष्टि अग्नि शर,
आभा जल में फूट बहे जो हर क्षण को छाला करती हूँ ।

पग में सौ आवर्त बाँधकर नाच रही घर-बाहर आँधी,
सब कहते हैं यह न थमेगी गति इसकी न रहेगी बाँधी,
अंगारों को गूँथ बिजलियों में, पहना दूँ इसको पायल,
दिशि-दिशि को अर्गला, प्रभंजन ही को रखवाला करती हूँ ।

क्या कहते हो अंधकार ही देव बन गया इस मंदिर का?
स्वस्ति, समर्पित इसे करूँगी आज अर्घ्य अंगारक उर का,
पर यह निज को देख सके औ' देखे मेरा उज्ज्वल अर्चन,
इन साँसों को आज जला मैं लपटों की माला करती हूँ ।
नहीं हलाहल शेष, तरल ज्वाला से अब प्याला भरती हूँ ।

महादेवी वर्मा

नया हिमालय

चढ़े हिमालय की चोटी पर, फिर भी ऊपर चढ़ना है।
हमें हिमालय के शिखरों पर नया हिमालय गढ़ना है।

ऊँचा है हौसला हमारा, विन्ध्याचल हिमवानों से।
ऊँची है कल्पना हमारी अम्बर के अभिमानों से।
ऊँचा है बलिदान हमारा जीवन के अरमानों से,
हिम्मत की छाती ऊँची है पर्वत की चट्टानों से।
चट्टानों से टक्कर ले-लेकर नित आगे बढ़ना है।
चढ़े हिमालय की चोटी पर, फिर भी ऊपर चढ़ना है।

अन्त पहाड़ों का है, लेकिन अभियानों का अन्त कहाँ?
संघर्षों का अन्त कहाँ है? सन्धानों का अन्त कहाँ?
अन्त सिद्धियों का है, लेकिन निर्माणों का अन्त कहाँ?
अन्त देह का हो सकता है, पर प्राणों का अन्त कहाँ?
सीमाओं से विश्रामों से हमको हरदम लड़ना है।
चढ़े हिमालय की चोटी पर, फिर भी ऊपर चढ़ना है।

गिर-गिरकर चढ़-चढ़कर हमने नाप लिया ऊँचाई को,
डूब-डूबकर तैर-तैरकर थाह लिया गहराई को।
किन्तु डूबने या गिरने हमने न दिया तरुणाई को।
ज़ंजीरों में बँधा बँधकर बँधने न दिया अँगड़ाई को।
बढ़ने का इतिहास नया गढ़-गढ़कर हमको पढ़ना है।
चढ़े हिमालय की चोटी पर, फिर भी ऊपर चढ़ना है।

और उठे, इन्सानों की इज़्ज़त का झंडा और उठे,
आज़ादी का, हिम्मत का, हिकमत का झंडा और उठे,

अभियानों के, निर्माणों के, व्रत का झंडा और उठे,
मानव पुतलों के अजेय सपनों का झंडा और उठे,
गढ़नी है नित नई उषा, नित नया हिमालय गढ़ना है,
चढ़े हिमालय की चोटी पर, फिर भी ऊपर चढ़ना है!

रामदयाल पांडेय

किसको नमन करूँ मैं ?

तुझको या तेरे नदीश, गिरि, वन को नमन करूँ मैं ?
मेरे प्यारे देश, देह या मन को नमन करूँ मैं ?
किसको नमन करूँ मैं भारत, किसको नमन करूँ मैं ?

भू के मानचित्र पर अंकित त्रिभुज, यही क्या तू है ?
नर के नभश्चरण की दृढ़ कल्पना नहीं क्या तू है ?
भेदों का ज्ञाता, निगूढ़ताओं का चिर-ज्ञानी है,
मेरे प्यारे देश, नहीं तू पत्थर है, पानी है ।
जड़ताओं में छिपे किसी चेतन को नमन करूँ मैं ?
किसको नमन करूँ मैं भारत, किसको नमन करूँ मैं ?

वहाँ नहीं तू जहाँ जनों से ही मनुजों को भय है,
सबको सबसे त्रास सदा सब पर सबका संशय है ।
जहाँ स्नेह के सहज स्रोत से हटे हुए जनगण हैं,
झंडों या नारों के नीचे बँटे हुए जनगण हैं,
कैसे इस कुत्सित, विभक्त जीवन को नमन करूँ मैं ?
किसको नमन करूँ मैं भारत, किसको नमन करूँ मैं ?

तू तो है वह लोक जहाँ उन्मुक्त मनुज का मन है,
समरसता के लिए प्रवाहित शीत स्निग्ध जीवन है,
जहाँ पहुँच मानते नहीं नर-नारी दिग्बन्धन को,
आत्मरूप देखते प्रेम में भरकर निखिल भुवन को ।
कहीं खोज इस रुचिर स्वप्न-पावन को नमन करूँ मैं ?
किसको नमन करूँ मैं भारत, किसको नमन करूँ मैं ?

भारत नहीं स्थान-वाचक, गुण विशेष नर का है,
एक देश का नहीं ? शील यह भूमंडल भर का है ।
जहाँ कहीं एकता अखंडित, जहाँ प्रेम का स्वर है,
देश-देश में वहाँ खड़ा भारत, जीवित भास्वर है ।

निखिल विश्व को जन्मभूमि वन्दन को नमन करूँ मैं।
किसको नमन करूँ मैं भारत, किसको नमन करूँ मैं ?

खंडित है यह यही शैल से, सरिता से, सागर से,
पर, जब भी दो हाथ निकल मिलते आ द्वीपान्तर से,
तब खाई को पाट शून्य में महा मोद मचता है,
दो द्वीपों के बीच सेतु यह भारत ही रचता है।
मंगलमय इस महा सेतुबंधन को नमन करूँ मैं।
किसको नमन करूँ मैं भारत, किसको नमन करूँ मैं ?

दो हृदयों के तार जहाँ भी जो जन जोड़ रहे हैं,
मित्र भाव की ओर विश्व की गति को मोड़ रहे हैं।
घोल रहे हैं जो जीवन-सरिता में प्रेम-रसायन,
खोल रहे हैं देश-देश के बीच मुँदे वातायन।
आत्मबन्धु कहकर ऐसे जन-जन को नमन करूँ मैं।
किसको नमन करूँ मैं भारत, किसको नमन करूँ मैं ?

उठे जहाँ भी घोष शान्ति का, भारत स्वर तेरा है,
धर्मदीप हो जिसके भी कर में वह नर तेरा है।
तेरा है वह वीर, सत्य पर जो अड़ने जाता है,
किसी न्याय के लिए प्राण अर्पित करने जाता है।
मानवता के इस ललाट-चन्दन को नमन करूँ मैं।
किसको नमन करूँ मैं भारत, किसको नमन करूँ मैं ?

रामधारीसिंह 'दिनकर'

गीत

(विप्लव सूचक भीम-करुण वाद्य-संगीत : एक विशाल नगर का खंडहर : नेपथ्य में अणु विस्फोटकों के फूटने की भयानक ध्वनि : पृष्ठभूमि के पट पर महाध्वंस की विकराल छाया पड़ी है : आग की लपटों में लिपटे रंगीन धुएँ के बादल उमड़ रहे हैं : सुदूर से गाहित गीत के समवेत स्वर, धीरे-धीरे स्पष्ट होकर सुनाई देते हैं।)

प्रलयंकर हे
डम-डम-डम डमित डमरु
दुर्दम स्वर हे !

दहक उठी नेत्र-ज्वाल
फुँहुक उठा उरस् व्याल
लहक रहा विष कराल
भव भय हर हे !

उगल रहा अग्नि व्योम
रच रहा विनाश होम
घुमड़ रहा तिमिर तोम
लहर-लहर हे !

ध्वंस शेष भू दिगंत
एक वृत्त हुआ अन्त
भार मुक्त अब अनन्त,
जग जित्वर हे !

भस्म स्वार्थ कलुष शोक
ध्वस्त नगर ग्राम ओक
निखर रहे नव्य लोक
विश्वम्भर हे !

भौतिक मद हुआ चूर
मानस भ्रम हुआ दूर
चेतन में उठा पूर
शिव शिवतर हे !

(अन्तरिक्ष में पुरुष और प्रकृति का प्रवेश : पुरुष ज्योति रश्मियों से आवृत, प्रकृति इन्द्रधनुषी छाया से वेष्टित है।)

प्रकृति : देख रहा दुःस्वप्न हाय, क्या धरती का मन।
महाध्वंस-सा छाया कैसा घोर चतुर्दिक्
घहरा रही प्रलय की छाया जन धरणी पर
अँधियाली के डाल भयानक अन्ध आवरण !
उद्वेलित हो उठा धरा चेतना सिन्धु क्यों
प्लावित करने अन्न प्राण मन के पुलिनों को ?
नील सरोरुह-सी कुम्हला कर म्लान दिशाएँ
महाशून्य की पलकों-सी मुँद नहीं तमस में !
लील रहा घन अंधकार भयभीत ज्योति को,
छिन्न-भिन्न कर किरणों के झीने सतरंग पट :
धुँधली-सी पड़ रही रूप रेखाएँ जग की
ढाँप रहा क्या विश्व ग्लानि से निज विषण्ण मुख ?
ध्वंस भ्रंश हो रह संघटन जड़ भूतों के
समाधिस्थ-सा आज हो रहा स्थूल जग क्यों !

(विप्लव सूचक वाद्य संगीत)

प्रलय वलाहक-सा घिर-घिरकर विश्व क्षितिज में
गरज रहा संहार घोर मंथित कर नभ को,
महाकाल का वक्ष चीर निज अट्टहास्य से
शत-शत दारुण निर्घोषों में प्रतिध्वनित हो !
अगणित भीषण वज्र कड़क उठते अंबर में
लप-लप तड़ित शिखाएँ टूट रहीं धरती पर,

महानाश किटकिटा रहा कटु लोह दंत निज
विकट धूम्र वाष्पों के श्वासोच्छ्वास छोड़कर!
रंग-रंग की लपटों की जिह्वाएँ लपकाकर
हरित, पीत, आरक्त नील ज्वालाओं के घन
घुमड़ रहे विद्युत् घोपों के पंख मारकर
ज्वलित द्रवा के निझर बरसा अशि स्तंभ-से!
धू-धू करता ताम्र व्योम, धू-धू जलती भू,
धू-धू बलतीं दिशा, उबलता धू-धू सागर,
भभक रही भू की रज, दहक रहे गल प्रस्तर,
सुलग रहे वन विटपी, धधक रहा समस्त जग!

(विप्लव गर्जन)

प्रकृति : क्या होगा तब देव, हाय, इस भूत सृष्टि क,
रूप रंग रेखामय मेरी निरुपम कृति का?
मुग्ध प्रेम की पलकों पर सौन्दर्य स्वप्न-सी
मोहित करती रही सदा जो स्वर्ग लोक को।
विश्व प्रभव के सृजन हर्ष से पुलकित होकर
सूक्ष्म स्थूल के छायातप को गुंफित कर नित
जिसमें मैंने अपने रहस कला-कौशल से
सीमा में निःस्सीम, अचिर में बाँधा चिर को,
मृत्यु तमस् में गूँथ अमरता के प्रकाश को
चेतनता को अर्थ ध्वनित है किया शब्द में।
अपने उर के रक्त-दान से जिस निसर्ग को
युग-युग से अविराम स्नेह श्रम से सिंचित कर
विकसित मैंने किया नित्य नव श्री सुषमा में
रूप गुणों के सतरँग ताने-बाने भरकर!

(सृजन आनंद द्योतक वाद्य संगीत)

कैसे महसित हुई नीलिमा मौन गगन की,
धरती को रोमांच हुआ कब हरियाली में,

कैसे नाच उठीं सागर उर में हिल्लोलें,
अवचनीय है मर्म कथा उस रहस् सृजन की !
मुझे याद है, सुधा कलश-सा पूर्ण चंद्र जब
रजत हर्ष से छलक उठा था : प्रथम उषा के
मुख पर सहसा जब लज्जा की लाली दौड़ी
इंद्रधनुष का सेतु टँगा जब फेनिल नभ में !
अभी-अभी तो फूलों के अपलक दृग अंचल
आकांक्षा से रँगे स्वप्न भावनावेश में,
समा सकी प्राणों की आकुल सुरभि न उर में,
कोयल का आवेश स्वरों में फूट पड़ा शत !

(करुण वाद्य संगीत)

कैसे मैं अमरों की इस प्यारी संसृति का
देख सकूँगी करुण ध्वंस आसुरी शक्ति से,
जिसको मैंने मा की मृदु ममता क्षमता से
सतत सँवारा निज अंतर के निभृत कक्ष में !
तडित कोप से विघटित हो भौतिक विधान सब
वाष्प धूम बन तितर-बितर हो रहा शून्य में,
खौल रहा अणु विगलित जड़ द्रव्यों का सागर
सूर्य खंड ज्यों टूट धँस गया हो धरती में !
उमड़ रहे दुर्गंध पूर्ण उच्छ्वास विषैले
धरा गर्भ की अग्नि फूट आई है बाहर,
गूँज रहा अह, महामृत्यु संगीत चतुर्दिक
चकाचौंध में बिखर रहे नक्षत्र पुंज हों !
उमड़ रहे दैत्यों-से भूधर धरा गर्भ से
हिल्लोलों-से उठ गिर, क्षण-भर में विलीन हो !
महा प्रबल अणु के विघात से दीर्ण धरित्री
खंड-खंड हो रही रिक्त मिट्टी के घट-सी !

(विश्व-प्रलय-सूचक वाद्य-संगीत)

पुरुष : कातर मत हो प्रकृति, तुम्हें यह मर्त्यों की-सी

करुण क्षीणता नहीं सुहाती, शांत करो मन !
भूत प्रलय यह नहीं, मात्र यह मनःक्रांति है,
आरोहण कर रही सभ्यता नव शिखरों पर !
अंतर्मन की ही विभीषिका बाह्य जगत् पर
प्रतिबिम्बित हो रही भयावह, भाव प्रताड़ित :
भौतिक अणु यह नहीं, दलित मानव आत्मा का
न्याय कोप ही टूट रहा पावक प्रताप-सा
जीर्ण धरा मन के खंडहर पर, जो युग-युग से
मनुज द्वेष की घृणित भित्तियों में विभक्त है !
आज युगों के रुद्ध मूक मानव अंतर का
विकट नाद ललकार रहा निज मनुष्यत्व को,
संघर्षण चल रहा घोर मानव के उर में
यह विराट विस्फोट उसीका राग दूत है !

(स्वार्थ, लोभ आदि की बौनी कुरूप छायाकृतियाँ कुत्सित चेष्टाओं का अभिनय करती हैं, जिनके ऊपर एक विषाद् घन की छाया झुककर, चोट करती है)

मानव ही है सर्वाधिक मानव का भक्षक,
भौतिक मद से बुद्धि भ्रांत युगजीवी मानव
दानव बनकर आत्मघात कर रहा अंध हो !
शोषक शोषित में विभक्त अब युग मानवता,
जाति-पाँति में, वर्ग-श्रेणि में शतशः खंडित
धनिकों का, श्रमिकों का, धन-बल का जन-बल का
यह अन्तिम दुर्धर्ष समर है विश्व विनाशक
सामूहिक संहार तिक्त विष फल है जिसका
जाग रहे हैं आज युगों के पीड़ित शोषित
दैन्य दुःख के जड़ पंजर नव युग चेतन हो,
कर्म कुशल जग जीवन के श्रम जीवी शिल्पी
लोक साम्य निर्माण हेतु सब एक प्राण हो।
टूट रहीं कटु लौह शृंखलाएँ जनगण की
भू रज जीवी पावक कण हो रहे प्ररोहित

आज रुद्र निज अग्नि चक्षु फिर खोल प्रज्वलित
भस्म कर रहे भू का कल्मष दृष्टि ज्वाल से
अवचेतन के मनोज्ञान से पीड़ित मानव
अवरोहण कर रहा तिमिर के अतल गर्त में
यंत्रों की आसुरी शक्ति से जन का अन्तर
बिखर रहा जीवन प्रमत्त हो बहिर्जगत् में।

(सैनिकों तथा श्रमिकों के वेश में कुछ लोगों का प्रवेश)

कुछ स्वर : जूझ रहे अणु के दानव से भू के जनगण,
जूझ रहे हैं महानाश से अपराजित जन,
अब निसर्ग के तत्त्वों ने अपना अदम्य बल
जन मन में भर दिया, मनुज की मांस पेशियाँ
पर्वत-सी उठ रोक रहीं दुर्धर्ष शत्रु को,
नाच रहा जन के शोणित में जीवन पावक,
दौड़ रही उन्मत्त शिराओं में शत विद्युत्,
बहते हैं उनचास पवन उनकी श्वासों में !
भीत नहीं होगा मानव इस महानाश से,
विश्व ध्वंस से लोक करेंगे नव जग निर्मित,
श्री समत्वमय मनुष्यत्व को नव्य जन्म दे !

कुछ स्वर : फिर से मानव शिशु खेलेंगे भू श्मशान में,
पुनः बहेगी जग के मरु में जीवन धारा,
मरुत् भर रहे प्रबल शक्ति जन के प्राणों में
विस्तृत करता वरुण तरुण वक्षःस्थल उनका :
भस्मसात् कर रही अग्नि जीवन का कर्दम,
मुक्त हो रहा इंद्रासन फिर महाव्याल से,
शेष ऊर्ध्व फन खोल उठाता भू को ऊपर
फहराते दिङ्नाग मनुज की विजय ध्वजा को !

सुमित्रानंदन पंत

कन्नड़

कन्नड़, तेलुगु, तामिल और मलयालम ये दक्षिण की चार भाषाएँ हैं और इसी नाम की उनकी लिपियाँ भी हैं। इनका वर्ण-क्रम नागरी के जैसा ही है, सिर्फ़ स्वरों में ह्रस्व 'ए' और दीर्घ 'ए', ह्रस्व 'ओ' और दीर्घ 'ओ' का भेद है और वह बताना ही पड़ता है। अंग्रेजी get या met में यह ह्रस्व 'ए' पाया जाता है। इसी तरह अंग्रेजी शब्द gate और mate में दीर्घ 'ए' पाया जाता है। दक्षिण की भाषाएँ अगर नागरी में लिखनी हों तो यह ह्रस्व-दीर्घ भेद बताने होंगे।

कन्नड़ की वर्णमाला में 'ए' और 'ओ' स्वरों का लघु रूप भी विद्यमान है। ये वर्ण नागरी लिपि में नहीं हैं, अतः 'ए' और 'ओ' का लघु रूप सूचित करने के लिए इन वर्णों पर ' ॅ ' चिह्न लगाया गया है। जैसे—ऍ, ऑ, कॅ, पॉ।

कन्नड़ में 'अ'कारान्त व्यंजनों का पूरा उच्चारण किया जाता है। हिन्दी में फल, घर, नगर, गड़बड़—शब्दों का उच्चारण फल्, घर्, नगर्, गड़बड़् होता है। कन्नड़ में ऐसा नहीं होता, वहाँ 'फल' आदि का उच्चारण फ्+अ+ल्+अ होता है। अर्थात् जैसा लिखा जाता है वैसा ही पढ़ा जाता है।

कन्नड़ के वाक्यों में बहुधा समास हुआ करता है। जैसे—'रामनु एल्लि इद्दाने' (राम कहाँ है) 'रामनेल्लिद्दाने' लिखा और बोला जाता है।

कन्नड़ में संस्कृत का 'ई'कारान्त शब्द प्रायः इकारान्त लिखा जाता है। जैसे—हिन्दी—हिंदि, राणी—राणि।

कन्नड़ लिपि में शिरोरेखा ही मानो पाई होती है। गुजराती में जिस तरह पाई आख़िर में बाँक लेती है उसी तरह कन्नड़ लिपि में हर अक्षर की शिरोरेखा आख़िर में बाँक लेती है।

संयुक्ताक्षर लिखने में पहला अक्षर जो स्वर-रहित होता है उसको पूरा लिखते हैं और दूसरा अक्षर उसके नीचे लिखते हैं।

'रेफ' अक्षर के ऊपर नहीं बल्कि बाद में लिखते हैं। यह व्यवस्था ध्वनि क्रम के विरुद्ध है, लेकिन रूढ़ि वैसी ही है। कन्नड़ में उतने ही व्यंजन हैं जितने संस्कृत यानी नागरी में होते हैं। केवल एक 'ळ' ही अधिक है।

कश्मीरी

कश्मीरी भाषा के सब स्वरों को भारतवर्ष की किसी भी लिपि में नहीं लिखा जा सकता। यों तो कश्मीरी शारदा अक्षरों में भी लिखी जाती थी और अब नस्तालीक़

और नागरी दोनों लिपियों में लिखी जाती है। परन्तु इन दोनों लिपियों में कई नये प्रकार की मात्राएँ जोड़कर ही काम चलता है। काम भी ऐसा कि स्वयं लिखने वाला ही सुभीते के साथ पढ़ सकता है। फिर यह भी बात है कि कई प्रकार के लोग कई प्रकार की मात्राओं का प्रयोग करते हैं। इस अनुवाद में मैंने अधिकतर उन्हीं मात्राओं को काम में लिया है, जिसका प्रयोग कश्मीरी भाषा लिखने-लिखाने की सबसे बड़ी संस्था आल इंडिया रेडियो ने किया है। किन्तु किसी मात्रा या चिह्न की सहायता के साथ भी यह आशा कदापि नहीं रखी जा सकती कि कश्मीरी भाषा को न जानने वाला लिखी हुई कश्मीरी को ठीक-ठीक पढ़ सकेगा। कई स्वर ऐसे अनोखे हैं कि कश्मीर से बाहर के लोग उन्हें सुन-सुनकर भी ज़बान से नहीं निकाल सकते। लिपि परिपूर्ण और स्पष्ट भी हो, पर वे स्वर, जो कानों ने सुने ही नहीं, और यदि सुने भी हों तो जिन्हें ज़बान से निकाला नहीं जा सकता, उन स्वरों का शुद्ध उच्चारण करना कठिन ही होगा। इसी कारण नई मात्राओं की परिभाषा देते हुए भी नए पाठकों को यही मशविरा देना होगा कि वे पढ़ते समय किसी कश्मीरी की सहायता प्राप्त करें।

नई मात्राओं का प्रयोग

(१) 'च' और 'छ' के नीचे बिन्दी लगाने से 'च' और 'छ' के मध्य का स्वर।

यह स्वर दाँतों के दो जबड़ों को एक-दूसरे के निकट लाकर और जिह्वा के सिरे को जबड़ों के बीच की दरार के साथ मिलाकर 'च' और 'छ' मिलाने का प्रयत्न कीजिए तब 'च़' और 'छ़' बोला जायगा।

(२) 'आॅ' और 'ऐ॑' सीधा-सादा 'आ' पूरा मुँह खोलकर बोला जाता है। 'आ' या 'ऐ' पर '⌒' इसलिए लगाया जाता है कि गले से 'आ' या 'ऐ' निकाला जाय, पर आधा ही मुँह खोला जाय। जैसे कॊर = गर्दन, ल़ॊर = खीर, मेच़ = मिट्टी।

(३) अक्षरों के नीचे एक छोटी-सी रेखा लगाने का अर्थ यह है कि 'उ' का वह स्वर निकले जो गले से ही 'उ' निकाले; पर मुँह बन्द करने का प्रयास न करें बल्कि खुले मुँह से ही 'उ' निकालने की कोशिश करें। जैसे गछ़ = जाउगा। बहुत जगह पर यह मात्रा हलन्त की तरह लगाई है और मैंने रहने दिया है।

(४) अ–ए की मात्रा टेढ़ी होती है। अक्षरों पर वह मात्रा सीधी लगाने का अर्थ यह है कि यह सीधे-सीधे स्वर 'अ' और 'ओ' के कहीं बीच में निकलता है। जैसे लर = मकान, ठ़र = ठीक, च़ॆर = चिड़िया। यदि यह मात्रा च़ पर न लगाएँ तो 'च़र' अर्थात् 'खटमल' बन जायगा।

ऊ की मात्रा को उलटे लिखने का अर्थ यह है की 'ऊ' की मात्रा गले से निकले, पर मुँह खुला रहे। तूर = ठंड।

मात्राएँ तो इसके अतिरिक्त भी हैं, परन्तु इस अनुवाद में उनकी आवश्यकता नहीं समझी गई।

गुजराती

गुजराती लिपि नागरी से कुछ अंश में भिन्न है।

अशोक और ब्राह्मी लिपि परिवर्तित होकर गुजराती और नागरी तक पहुँची। छापने की सुविधा न थी तो लेखक अक्षरों की आकृति में सुविधानुसार परिवर्तन करते थे। एक उदाहरण लीजिए—अशोक लिपि में 'क' की आकृति + चिह्न था। नागरी में खड़ी लकीर वैसी ही रखी और आड़ी लकीर को सोये हुए S(ᔕ) का-सा बना दिया। गुजराती ने खड़ी लकीर को / की आकृति दी और आड़ी लकीर वैसी ही रखकर कुछ तिरछी की।

गुजराती में अ, इ, च, ज, श, फ, म—इतने अक्षरों में विशेष अन्तर है, बाकी अक्षर नागरी-जैसे हैं। आजकल की गुजराती ने शिरोरेखा हटा दी है और 'ए' 'ऐ' को 'ओ' 'औ' की तरह 'अ' पर मात्रा देकर लिखना आरम्भ कर दिया है। उच्चारण में कहीं-कहीं स्वरों के साथ 'य' या 'ह' मिलाया जाता है जो सामान्यतया लिखकर नहीं बताते हैं। चन्द आधुनिकों ने 'य' श्रुति और 'ह' श्रुति लिखकर बताने का आग्रह रखा है।

तमिळ

तमिळ और नागरी लिपियों का उद्गम एक ही है—ब्राह्मी लिपि। एक का विकास ब्राह्मी की दक्षिण शैली से हुआ है, दूसरी का उत्तर शैली से।

तमिळ में स्वर १२ हैं जब कि हिन्दी में (ऌ सहित) केवल ११ स्वर हैं। तमिळ में ह्रस्व 'ए' और 'ओ'—ये दो स्वर ऐसे हैं जो अन्य द्रविड़ भाषाओं में तो पाये जाते हैं पर हिन्दी में नहीं।

तमिळ में व्यंजन कुल १८ हैं। पाँचों वर्गों में से प्रत्येक के मध्य के तीन वर्ण तमिल में नहीं पाये जाते (ख, ग, घ, ठ, ड, ढ आदि)। इसी कारण समय समय पर एक अक्षर के दो या तीन उच्चारण भी होते हैं जिस का निश्चय सन्दर्भ से किया जाता है। उदाहरण के लिए एक ही प्रकार से लिखे गये 'पावम्' शब्द को 'पाप' भी पढ़ा जा सकता है और 'भाव' भी। व्यंजनों में 'र' और 'न' दो प्रकार के होते हैं जिनके भिन्न उच्चारण और सन्दर्भानुसार भिन्न प्रयोग होते हैं।

तमिऴ् की सुन्दरता zh अक्षर पर है, जिसका उच्चारण र, ल, ऌ और ड इन सबसे भिन्न है।

तॅलुगु

तॅलुगु में भी, संस्कृत के सभी अच् (स्वर) और हल् (व्यंजन) विद्यमान हैं। साथ-साथ और भी कुछ ध्वनियाँ हैं, जिनका संक्षेप में वर्णन इस प्रकार है—

(१) जैसे सभी द्रविड़ भाषाओं में, वैसे तॅलुगु में भी ह्रस्व 'ए' और ह्रस्व 'ओ' हैं। इनका अशुद्ध उच्चारण छन्द में ही नहीं, गद्य में भी, आदी कानों को भद्दा लगता है। कहीं-कहीं अनर्थ भी हो जाता है। जैसे नॅल—चाँद, मास, नेल—ज़मीन, कॉडि—कज्जल, कोडि—मुर्ग़ा। दक्षिणी भाषाओं का अध्ययन करने वालों को इस विषय पर ध्यान देना चाहिए।

(२) जैसे फ़ारसी की 'ज़' ध्वनि है, वैसे 'ज़' तॅलुगु में भी है। इसके अलावा 'च़' (च के नीचे बिन्दी लगाने से बनने वाले) दन्त्य 'च' की ध्वनि भी है, जो देश्य शब्दों में पायी जाती है। इस ध्वनि को भी सार्वदेशिक नागरी लिपि में स्थान मिलना चाहिए।

(३) 'र' का दूसरा भेद भी है जो कि शायद पुराने ज़माने में अपना उच्चारण रखता हो, मगर अब दोनों संकेतों का एक ही उच्चारण है। किन्तु कभी-कभी अर्थ-भेद द्योतन करने के लिए तॅलुगु लिपि में उन दोनों संकेतों का विशेष उपयोग होता है। जैसे:—तेरु—रथ, तेरु—साफ़ हो (ना)। मगर नागरी लिपि में इस दूसरे रेफ की ध्वनि को संकेतित करने के लिए अभी तक कोई उपाय नहीं सोचा गया।

(४) ळ-ध्वनि (ड और ल के बीच वाली ध्वनि) जो ऋग्वेद के 'अग्निमीळे पुरोहितम्' इत्यादि कई पदों में मिलती है, द्रविड़ और मराठी भाषाओं में प्रसिद्ध है। तॅलुगु में इसका खूब उपयोग है और तमिऴ् में 'ल' की जगह पर 'ळ' बोलने से अर्थ भी बदल जाता है। जैसे :—पुलि—बाघ, पुऴि—इमली।

बँगला

बंगला में अकार का उच्चारण हिन्दी अकार के समान नहीं होता, बल्कि प्रायः 'अ' और 'ओ' के बीच में होता है, जैसे अंग्रेजी के 'not' में 'o'। 'अ' के बाद में इकार, उकार या यकार हो तो उसका उच्चारण अंग्रेजी के no के 'o' जैसा होता है, जैसे 'अद्य' का 'ओद्द', 'दई' का 'दोई' और 'कवि' का 'कोबी'।

बंगला में क्षकार का उच्चारण पद के आदि में हमेशा खकार होता है, जैसे क्षण—खन। पर अन्यत्र इसका उच्चारण 'क्ख' होगा, जैसे लक्षण—लक्खन।

मकार के साथ जिस वर्ण का योग हो, वह वर्ण सानुनासिक द्वित्व होकर मकार का लोप कर देगा, जैसे पद्म—पद्दँ। किन्तु पद के आदि में ऐसा हो तो द्वित्व नहीं होता, जैसे स्मृति—सँति।

हमने पाठ में तत्सम संस्कृत शब्दों के विन्यास में 'व' को 'व' ही रखा है, लेकिन यह समझने के विचार से ही है। बंगला में बकार और वकार दोनों को ही बकार पढ़ा जाता है। इसी तरह मूर्द्धन्य 'ण' का उच्चारण सदा 'न' ही होता है। 'हाओया' लिखा जाता है, पर 'हावा' पढ़ा जाता है। 'ओया' का उच्चारण 'व' जैसा होता है।

यकार का उच्चारण पद के आदि में जकार हो जाता है, जैसे योग—जोग। किन्तु पद के मध्य में तथा अन्त में यकार ही होता है, जैसे नयन—नयन, समय—समय। लेकिन अगर यकार में रेफ हो तो जकार हो जाता है, जैसे धैर्य—धैज्जो, सूर्य—सुज्जो। व्यंजन के साथ मिलाने पर व्यंजन का द्वित्व होता है और यकार का लोप होता है, जैसे 'पद्य' को 'पोद्दो' पढ़ेंगे।

मागधी प्राकृत की परम्परा के अनुसार बंगला में तीनों ही सकारों का उच्चारण तालव्य 'श' की तरह होता है। किन्तु दन्त्य 'स' के साथ किसी व्यंजन वर्ण का योग होने पर 'स' का उच्चारण 'स' ही रहता है, यथा स्तर—स्तर।

यदि किसी वर्ण का यकार अथवा वकार के साथ योग हो तो उसका द्वित्व होकर यकार-वकार का लोप होता है, जैसे नित्य—नित्त, वाद्य—बाद्द। किन्तु पद के आदि में केवल वकार का लोप होता है, जैसे ज्वाला—जाला, द्वार—द्दार।

पद के आदि में आने वाले दीर्घ ईकार-ऊकार का उच्चारण प्रायः ह्रस्व होता है, जैसे पूजा—पुजा, ईश्वर—इश्वर। वैसे बंगला में ह्रस्व-दीर्घ की माप-तोल हिन्दी के समान पक्की नहीं है, वहाँ लचीलेपन के लिए काफी गुंजाइश है।

पद के अन्त्य वर्ण का उच्चारण प्रायः हलन्त होता है, जैसे संसार—संसार्, तोमार—तोमार्। लेकिन कविता में छंद के आग्रह पर वह अकार के उच्चारण के नियमानुसार भी चलता है, जैसे आकुल-आशाने को आकुलो (े) आशाने भी पढ़ा जा सकता है।

अनुस्वार के उच्चारण में 'ङ' का अंश निहित रहता है, जैसे हिमांशु—हिमाङ्शु।

एकार का उच्चारण कहीं-कहीं एकार और ऐकार के बीच का-सा होता है, जैसे एक—ऍक; कहीं-कहीं ऐकार का उच्चारण ओइकार-जैसा होता है, यथा ऐश्वर्य—ओइश्शर्ज्ज।

मराठी

मराठी की लिपि पूर्णतया नागरी ही है। हिन्दी और मराठी में जो अक्षर-भेद है वह लिपि-भेद नहीं है। एक ही अक्षर के दो रूपों में से हिन्दी ने एक पसन्द किया है और मराठी ने दूसरा। मराठी का 'अ' 'ॐ' में पाया जाता है। मराठी का 'झ' 'इ' को 'ा' के साथ बाँध देने से बनता है। हिन्दी का 'झ' 'भ' को दुम लगाकर बनाते हैं। हिन्दी में 'क्ष' को 'च्च' लिखते हैं।

मराठी में 'झ', 'ज' और 'च' इन तीनों अक्षरों के दन्त्य और तालव्य ऐसे दो-दो उच्चारण हैं, जो भेद हम नुक्ता लगाकर नहीं बताते। अनुभव से ही भेद पहचाना जाता है। गुजराती, मराठी, उड़िया और दक्षिण की चार-पाँच भाषाओं में एक उच्चारण है (ळ), जिसके लिए हिन्दी में अक्षर नहीं है। यही उच्चारण वेद में भी पाया जाता है। 'ल', 'ड' और 'र' इन तीनों से 'ळ' भिन्न है।

मलयालम

देवनागरी और मलयालम दोनों लिपियों का उद्भव ब्राह्मी लिपि से हुआ। हिन्दी की तरह मलयालम में भी नागरी वर्णमाला का प्रयोग होता है।

मलयालम में स्वर-चिह्नों के व्यवहार में कुछ विशेषता होती है। उदाहरण के लिए अन्त्य 'अ' का उच्चारण हलन्त नहीं, बल्कि अकारान्त होता है। 'कमल', 'वेदन' लिखकर 'कमला', 'वेदना' जैसा पढ़ा जायगा। 'अं' का उच्चारण मलयालम में 'अम्' होता है। अन्त में 'म्' के बदले अनुस्वार से ही काम लेने की प्रथा है। दक्षिण की अन्य भाषाओं के समान मलयालम में भी ह्रस्व 'ए' और 'ओ' होते हैं, जिनका हिन्दी में अस्तित्व नहीं है।

मलयालम में क, ट, त, न आदि कुछ वर्णों का उच्चारण या प्रयोग दो तरह होता है। उदाहरणार्थ पद के अन्त या मध्य में आने वाले 'क' का उच्चारण सामान्यतः 'क' और 'ग' के बीच होता है। इसी प्रकार शब्द के मध्य या अन्त में प्रयुक्त 'ट' का उच्चारण 'ट' और 'ड' के बीच में होता है। 'ण' के साथ संयुक्त होने पर इसका उच्चारण 'ड' होता है। जैसे—कण्टु—कण्डु। यह उच्चारण-भेद उपर्युक्त अन्य अक्षरों के सम्बन्ध

में भी लागू होता है। हिन्दी से भिन्न इन ध्वनियों का द्योतन 'ट', 'न' आदि के नीचे बिन्दियाँ लगाकर किया जाता है।

हिन्दी 'र' से भिन्न मलयालम में एक और इससे ज़रा तेज़ ध्वनि है जो 'रन', 'रेडियो' इत्यादि अंग्रेज़ी शब्दों में पाई जाती है। इसे प्रकट करने के लिए 'र' के नीचे बिन्दी (यथा ऱ) लगाई जाती है।

'प़' का उच्चारण-स्थान 'प' से ज़रा नीचे (दाँत की तरफ़) है। कम निःश्वास छोड़ना चाहिए।

कवि-परिचय

१. असमिया

१. **अब्दुल मलिक, सैयद** (१९१९—)
जोरहाट के जे. बी. कालेज में अध्यापक
प्र.—परशमणि, एजनी नतुन छोवाली, मरहा पापरि (कहानी संग्रह); बेदुइन (कविताएँ); तीर्थयात्री (उपन्यास); आलह्विघर (नाटक)

२. **अमियचरण गोहाँई** (१९३६—)
गोहाटी विश्वविद्यालय, एम्. ए. के छात्र

३. **जीवकान्त बरुवा**

४. **नवकान्त बरुवा** (१९२६—)
काटन कालेज, गोहाटी में अध्यापक
प्र.—हे अरण्य हे महानगर (कविता संग्रह); कपिली परीया साधु (उपन्यास); शियाली पालेगै रतनपुर (बच्चों के लिए)

५. **बीरेन बरकटकी** (१९२४—)
शिवसागर कालेज में अध्यापक
प्र.—खोजते मिलाओ खोज, तुल्किार प्राण

६. **बीरेन्द्रकुमार भट्टाचार्य** (१९२५—)
संपादक, 'रामधेनु', उज़ानबाजार, गोहाटी
प्र.—परिणीता (बंगला से अनुवाद); राजपथे रिंगियाय (उपन्यास)

७. **महेश्वर नेओग** (१९१८—)
गोहाटी विश्वविद्यालय में अध्यापक
प्र.—शंकरदेव; डावरर सिपारे धुनिया देश; (अंग्रेजी में) शंकरदेव एंड हिज़ प्रेडीसेसर्स; कई प्राचीन ग्रंथों का सटीक संपादक

८. **महेन्द्र बरा** (१९२९—)
गोहाटी के काटन कालेज में अध्यापक
प्र.—डान क्विक्ज़ोट, गुलीवर की यात्राओं के अनुवाद, नील सागरर साधु

९. **हरि बरकाकति**
पता : गोलाघाट, ज़ि. शिवसागर (आसाम)

१०. **हेम बरुआ** (१९१५—)
बरुआ कालेज, गोहाटी के प्रिंसिपल
प्र.—(यात्रा-वृत्तांत) सागर देखिला; (समालोचना) आधुनिक साहित्य; (राजनीति) गणविप्लव; (अंग्रेज़ी में) दि रेड रिवर एंड दि ब्लू हिल, दि ऑगस्ट रेवोल्यूशन इन आसाम

२. उड़िया

१. **अनन्त पट्टनायक** (१९१४—)
स्वतंत्र लेखक
प्र.—दर्पण करे आजि, शांति-शिखा

२. **कालिन्दीचरण पाणिग्राही** (१९०१—)
स्वप्नपुरी, पीठापुर, कटक; उपन्यासकार, कहानीकार, और कवि
प्र.—महादीप, मने नाही (कविता संग्रह); माटीर मणिष, मुक्तागड़ार क्षुधा, अमरचिता (उपन्यास); राशिफल आदि तीन कहानी संग्रह

३. **कुंजबिहारी दास** (१९१४—)
उड़िया लोक-साहित्य पर प्रबंध लिखकर विश्वभारती से पी. एच. डी. उपाधि प्राप्त, शांतिनिकेतन में अध्यापक
प्र.—कुहुगा, सागरा, नवमालिका, प्रभाती, कंकालर स्वप्न, माटी ओ लाठी (कविता संग्रह); लंकायात्री (प्रवास-वर्णन)

४. **ग्यानींद्र वर्मा** (१९१५—)
संपादक, 'समाज', कटक
प्र.—भूमिका, शताब्दी, स्वर्णभंग, लाल घोड़ा (उपन्यास); बोले हूं-टी (पद्य-नाटक)

५. **चिंतामणि बेहेरा** (१९२७—)
जी. एम. कालेज संबलपुर में अध्यापक
प्र.—श्वेतपद्म, स्वस्तिक (कविताएँ)

६. **दुर्गाचरण परिडा** (१९२९—)
ग्राम निआली, कटक के निवासी; संबलपुर में एक विद्यापीठ के अधिष्ठाता
प्र.—इंद्रायुध

७. **नित्यानंद महापात्र** (१९१२—)
'डगर' के संपादक
प्र.—छह उपन्यास; कई कविता संग्रह; जिअन्ता मणिस, हिड़ माटि (उपन्यास); काल रही (निबंध)

८. **मायाधर मानसिंह** (१९०५—)
संबलपुर कालेज के प्रिंसिपल, अकादेमी के उड़िया परामर्शदात्री बोर्ड के कन्वीनर
प्र.—'कमलायन' इत्यादि काव्य तथा कई कविता संग्रह

९. **विनोदचंद्र नायक** (१९१९—)
संबलपुर के सरसुगुड़ा हाईस्कूल के हेडमास्टर
प्र.—चंद्र ओ तारा पद्य (नाटिका), नीलचंद्र रा उपत्यका (आधुनिक कविताओं का संग्रह)

१०. **'सबुज'** (१९०४—)
श्री बैकुंठ पट्टनायक का उपनाम; 'सबुज' आंदोलन के सबसे पुराने सदस्य, पुरी हाईस्कूल के हेडमास्टर
प्र.—काव्यसंचयन, मुक्तिपथे (नाटक)

३. उर्दू

१. **अली सिकन्दर 'जिगर' मुरादाबादी** (१८९०—)
ग़ज़लकार, स्वतंत्र लेखक
प्र.—दाग़े-जिगर, शोलये-तूर

२. **अली सरदार जाफ़री** (१९१३—)
कवि और लेखक
प्र.—नई दुनिया को सलाम (लंबी कविता), खून की लकीर (कविताएँ), पत्थर की दीवार (कविताएँ), एशिया जाग उठा (लम्बी कविता), तरक्क़ीपसन्द अदब (आलोचना)

३. **'अर्श' मलसियानी** (१९०८—)
बालमुकुंद का उपनाम; उर्दू 'आजकल' के संपादक
प्र.—सुहागन बेवा, चंगो-आहंग, आहंगे-हेजाज़, हफ्त रंग

४. **आले अहमद सरूर** (१९१२—)
अलीगढ़ विश्वविद्यालय में उर्दू के प्रोफेसर, अकादेमी की उर्दू परामर्शदाता समिति के कन्वीनर
प्र.—सलसबील (कविताएँ), ज़ौक़े-जुनूँ (कविताएँ), नये और पुराने चिराग़ (आलोचना), अदब और नज़रिया (आलोचना)

५. **जगन्नाथ 'आज़ाद'** (१९१८—)
प्रेस इन्फॉर्मेशन ब्यूरो में उर्दू विभाग के प्रमुख
प्र.—बेकरां (कविताएँ) १९४९, सितारों से ज़र्रों तक (कविताएँ) १९५०

६. **'जोश' मलसियानी** (१८८२—)
अवकाशप्राप्त अध्यापक
प्र.—जुनूनो-होश; दीवाने-शाकिर की शरह

७. **'जोश' मलीहाबादी** (१८९६—)
शब्बीर हसन खाँ का उपनाम; उर्दू 'आजकल' के भूतपूर्व संपादक
प्र.—जुनूने-हिकमत, शायर की रातें, अर्शोफर्श, शोला-ओ-शबनम, नक्शो-निगार, जज्बाते-फितरत, आवाजे-हक़, समूमो-सबा, सरोद-ओ-खरोश, पैगंबरे-इस्लाम, हर्फ़े-आखिर

८. **नवाब जाफ़र अली खाँ 'असर', लखनवी** (१८८५—)
लखनऊ के कवि
प्र.—नज्मे, रंगबस्ता

९. **मुइन अहसन 'जज़्बी'** (१९१२—)
अलीगढ़ विश्वविद्यालय में लेक्चरर
प्र.—फ़िरोज़ाँ

१०. **राही मासूम 'रज़ा'** (१९२७—)
स्वतंत्र लेखक
प्र.—मुहब्बत के सिवा (नाविल), नया साल (लंबी कविता), मौजे-गुल, मौजे-सबा (लंबी कविता)

४. कन्नड़

१. **'अंबिकातनयदत्त'** (१८९६—)
श्री द. रा. बेंद्रे का उपनाम
डी. ए. वी. कालेज शोलापुर में कन्नड़ के भूतपूर्व प्रोफेसर
प्र.—गरी, नादलीले, उय्यालो, सखीगीता, मेघदूत, मूर्तिमत्त मत्तु काम कस्तुरी (कविता संग्रह); हुच्चाटगळु, होस संसार (नाटक); साहित्य मत्तु विमर्श, साहित्यसंशोधने, विचार-मंजरी, निराभरण सुंदरी (आलोचना)

२. कुवेंपु (१९०४—)
मैसूर विश्वविद्यालय के उपकुलपति
आपके 'श्रीरामायणदर्शन' महाकाव्य को गत सात वर्षों में सर्वश्रेष्ठ कन्नड़ पुस्तक होने का गौरव तथा ५००० रु. का पुरस्कार मिला
प्र.—५० से ऊपर पुस्तकें—नविलु, कलसुंदरी, कोगिले मत्तु, सोवियत रशिया, कोल्लु, पक्षी, काशी, अग्नि-हंस, पांचजन्य, चित्रांगदा (काव्य संग्रह); काव्यविहार, तपोनन्दन (आलोचना)

३. के. एस. नरसिंहस्वामी (१९१५—)
बंगलौर में स्वतंत्र लेखन
प्र.—मैसोर-मल्लिगे, इरावथ, दीपडमल्ली, इरुवंथिगे (कविता संग्रह)

४. गोपालकृष्ण अडिग (१९१८—)
सेंट फिलोमेना कालेज मैसूर में अंगरेजी के असिस्टेंट प्रोफेसर
प्र.—भावतरंग, कट्टुवेवुनवु, चंडेमद्दले

५. चेन्नवीर कणवि (१९२८—)
धारवाड़ में कर्नाटक यूनिवर्सिटी के प्रकाशन विभाग के सचिव
प्र.—काव्याक्षी, भावजीवी, आकाशबुत्ती, मधुचंद्र (कविता संग्रह)

६. जयदेवि तायि लिगाडे (१९१२—)
प्र.—जयगीता, सिद्धवाणी, बसवदर्शन

७. जी. एस. शिवरुद्रप्पा (१९२६—)
शिमोगा कालेज में अध्यापक
प्र.—सामगान, चेलुवु ओलवु, सांजेदरी (कविता संग्रह)

८. वी. एच. श्रीधर (१९१८—)
कुमटा के कन्नड़ कालेज में संस्कृत विभाग के अध्यापक
प्र.—मेघनाद, अमृतबिंदु, पंचमुखी, वेटलगले कुनिटा (कविता संग्रह)

९. रं. श्री. मुगलि (१९०६—)
विलिंग्डन कालेज सांगली में कन्नड़ के प्रोफेसर
प्र.—अरिग, उपनकरुण (कविता संग्रह); कन्नड़-साहित्य-चरित्रे (साहित्येतिहास)

१०. वी. कृ. गोकाक (१९०९—)
(वी. कृ. गो.) प्रिंसिपल, कर्नाटक कालेज, धारवाड़
प्र.—पयन, समुद्रगीतगलु, युगांतर, बाल देगुलडल्ली (कविता संग्रह); दि सौंद आफ लाइफ़, दि पोएटिक एप्रोच इन लैंग्वेज

५. कश्मीरी

१. अमीन कामिल (१९२४—)
स्वतंत्र लेखन
प्र.—बहाउल्ला से नोज़मराद; मसालर; गावर ह्राज

२. आरिज़

३. 'आरिफ', गुलाम हुसैन बेग (१८८४—)
काश्मीर सरकार के विकास-मंत्रालय में कार्य करते हैं
फारसी, उर्दू के भी शायर
प्र.—रुबाइयात आरिफ़

४. गुलाम अहमद फ़ाज़िल (१९१६—)

५. गुलाम मुहिउद्दीन नवाज (१९२०—)
ज़मींदारी और कविता

६. ज़िंदा कौल 'मास्टरजी' (१८८५—)
प्र.—सुमरन; इस पर '५३ से '५५ के सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ के नाते ५००० रु. का पुरस्कार मिला; लाइफ़ एंड पोएम्स आफ़ परमानंद

७. दीनानाथ घली 'अलमस्त'

८. निजामुद्दीन काज़ी (१९१२—)
स्वतंत्र लेखन
प्र.—शाह पारी, शाह सुदर

९. पीताम्बरनाथ 'फानी'

१०. रहमान 'राही' (१९२५—)
अध्यापक
प्र.—सना वुनी साज़, सुबुक सोडा, नुन रानी आलव

६. गुजराती

१. उमाशंकर, जोशी (१९११—)
'संस्कृति' मासिक के संपादक, गुजरात यूनिवर्सिटी में भाषा-साहित्य-शोध-कार्य के निर्देशक अध्यापक, साहित्य अकादेमी के गुजराती सलाहकारी बोर्ड के संयोजक
प्र.—विश्वशांति, गंगोत्री, निशीथ, प्राचीना, वसंतवर्षा (काव्य संग्रह); सापना भारा (एकांकी); श्रावणी मेळो (कहानियाँ); शाकुंतल (अनुवाद)

२. **गनी दहीं वाला** (१९०८—)
सूरत में दर्ज़ीगिरी और ग़ज़लकारी करते हैं
प्र.—गाताँ झरणाँ (कविता संग्रह)

३. **जयंत पाठक** (१९२०—)
सूरत में साहित्य के अध्यापक
प्र.—मर्मर

४. **निरंजन भगत** (१९२६—)
अहमदाबाद में अँगरेजी साहित्य के अध्यापक
प्र.—छंदोलय, किन्नरी, अल्पविराम (कविता संग्रह)

५. **बालमुकुन्द दवे** (१९१६—)
नवजीवन संस्था, अहमदाबाद से संबद्ध
प्र.—परिक्रमा

६. **मनसुखलाल झवेरी** (१९०७—)
सेंट ज़ेवियर कालेज बंबई में गुजराती के अध्यापक
प्र.—फूलदोल, आराधना, अभिसार (कविता संग्रह)

७. (स्वर्गीय) **रामनारायण विश्वनाथ पाठक** (१८८८–१९५५)
आलोचक, कहानीकार, कवि; बंबई आकाश वाणी केंद्र से संबद्ध थे
प्र.—बृहत्-पिंगल (आलोचना ग्रंथ) इस पर अकादेमी का '५३ से '५५ का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ होने के कारण ५,००० रु. का पुरस्कार मिला, शेषनां काव्यो (कविता संग्रह)

८. **सुन्दरम्** (१९०८—)
अरविंद-आश्रम पांडीचेरी में रहते हैं
प्र.—कोयाभगतनी कडवी वाणी, वसुधा, यात्रा (काव्य संग्रह)

९. **सुन्दरजी बेटाई** (१९०४—)
एस. एन. डी. टी. कालेज में गुजराती के अध्यापक
प्र.—ज्योतिरेखा, इंद्रधनु, विशेषांजलि (कविता संग्रह)

१०. **हसमुख पाठक** (१९३०—)
युवक प्रयोगशील कवि

७. तमिल

१. **कोत्तमंगलम् सुब्बू (१९१०—)**
एस. एम. सुब्रह्मण्यम् का उपनाम
कवि तथा फिल्म डायरेक्टर
प्र.—गांधी महान कदै, नाटक उळगम

२. **टी. डी. मीनाक्षीसुन्दरम् (१९१९—)**
प्र.—अहल्या (नाटक)

३. **तिरुलोक सीताराम् (१९१७—)**
संपादक, 'शिवाजी'
प्र.—गन्धर्वगणम् (खंडकाव्य); दो सौ कविताएँ

४. **नामक्कल रामलिंगम् पिळ्ळै (१८८८—)**
कवि, नाटककार तथा भाष्यकार
प्र.—अवलुम अवनुम, तमिळर इदयम् (कविता संग्रह)

५. **भारतीदासन् (१८९१—)**
कनकसुब्बुरत्नम् का उपनाम
तमिल अध्यापक
प्र.—भारतीदासन् कवितैगळ (तीन खंड)

६. **एस. अय्यासमलई (१९२८—)**
तमिल के अध्यापक, अण्णामलैनगर
प्र.—तामरै कुमारी (कविताएँ), मळ्ळया पुनल्म (कथा-काव्य), इलक्किय-च्चन्दयिल (आलोचनात्मक निबंध)

७. **वळ्ळियप्पा (१९२२—)**
मद्रास के बच्चों के लेखक संघ के अध्यक्ष; तमिळ लेखक संघ के मंत्री
प्र.—मलरुम उळ्ळम (कविता संग्रह), ईरापकवै-पाटल्गळ (बच्चों के लिए कविता संग्रह)

८. **शुद्धानंद भारती, योगी (१८९७—)**
योगी तथा कवि
प्र.—भारत शक्ति महाकाव्यम्, गीतांजली

९. **'सुरभि' (१९११—)**
जे. रंगवेल का उपनाम
सूचना प्रसार मंत्रालय में असिस्टेंट एक्सप्लोरेशन आफिसर
प्र.—शक्ति पिरवकुडु, सतीय सामणै

१०. 'सोमु' (१९२१—)
मि. पा. सोमसुन्दरम् का उपनाम
भूतपूर्व संपादक 'कल्की'; आकाश वाणी मद्रास से संबद्ध
प्र.—इलवेनिल (कविता संग्रह); पाँच कहानी संग्रह और एक उपन्यास

८. तेलुगु

१. **अप्पल वीर वेंकट जोगय्य शास्त्री** (१९०८—)
कवि और नाटककार
प्र.—मीराबाई, भक्तकुचेल, बिकारी (नाटक); कला भारती, आतिथ्यम्, और कलुपु मोक्कलु (भाव कविता संग्रह)

२. **अमरेन्द्र** (१९२४—)
सी. नरसिंह शास्त्री का उपनाम, हिंदू कालेज (गुण्टूर) में अध्यापक

३. **उत्पल सत्यनारायणाचार्य** (१९२८—)
पत्रकार तथा लेखक
प्र.—विश्वबिन्दु, गांधारी आदि कविताएँ

गड्डि लक्ष्मी नरसिंह शास्त्री (१९१३—)
स्वतंत्र लेखक, कवि और नाटककार
प्र.—संस्कृत नाटकों से अनुवाद : कुन्दमाला, पंचरत्नमु, उत्तररामचरितम्; कविता संग्रह : श्री काम संजीवनम्, गाथामंजरी, कविमाया आदि कुल तीस ग्रन्थ

५. **दिगुमूर्ति सीताराम स्वामी** (१९१५—)
भीमवरम् कालेज में अध्यापक
प्र.—छः उपन्यास और नाटक, सप्तशती सारम् की टीका

६. **पि. गणपति शास्त्री** (१९११—)
प्र.—विश्रांतामरुकम्, रत्नोपहारम् इ०

७. **बोड्डु बापिराजु** (१९१२—)
प्र.—विपंची (कविता संग्रह), कलिका (कहानी संग्रह), कात्यायनी (शिशु गीत संग्रह)

८. **भट्टिप्रोलु कृष्णमूर्ति** (१९२१—)
प्र.—पूलपल्लकी (कविता संग्रह), गौरी (उपन्यास), कथानिकलु (कहानियाँ)

९. साल्व कृष्णमूर्ति (१९३०—)
आर्ट्स कालेज, मद्रास में अध्यापक
प्र०—रुधिर तर्पणम्, किरीटमु, आरविन्दमु, निरीक्षण, वियोगी

१०. सी. नारायण रेड्डि (१९३१—)
'स्रवन्ती' के संपादक, सिकन्दराबाद के कालेज में अध्यापक
प्र.—नव्वनि पुव्वु, जलपातमु, विश्वगीति, अजंतासुंदरी, नागार्जुनसागरम्।

६. पंजाबी

१. अमृता प्रीतम (१९१९—)
आकाश वाणी नई दिल्ली के पंजाबी कार्यक्रमों से संबद्ध
प्र.—सुनेहुड़े (कविताएँ), पिंजर (उपन्यास)

२. सेरासिंह 'चन्न' (१९२९—)
स्वतंत्र लेखन
प्र.—सगे सगे दीयाँ गल्लाँ, सिसकियाँ (कविता संग्रह)

३. देवेन्द्र सत्यार्थी (१९०८—)
'आजकल' के भूतपूर्व संपादक; स्वतंत्र लेखक
प्र.—धरती दीयाँ वाजाँ (कविताएँ), मुढ़का ते कणक (कविताएँ), गिद्धा (लोकगीत), दीवा बले सारी रात (लोकगीत), कुंग पोश (कहानियाँ), सोनागाची (कहानियाँ), देवता डिग पिया (कहानियाँ), कुड़ी नहीं धरती (कविताएँ)

४. प्यारासिंह 'सहराई' (१९१५—)
प्र.—सगो दी वाग, शकुंतला, स्वारों, कलयुग (कविता संग्रह)

५. प्रभजोत कौर (१९२४—)
प्र.—पंखेरू, सुपने सधराँ, दो रंग (कविताएँ); और कहानी संग्रह

६. बलबीरसिंह (१९२६—)
प्र.—पैड़ाँ

७. बावा बलवंत (१९१५—)
प्र.—महा नाच, बंदरगाह, सतसागर

८. मोहनसिंह (१९०४—)
'पंज दरिया' के संपादक, सुप्रसिद्ध कवि
प्र.—सावे पत्तर, अधवाटे, आवाज़ाँ आदि अनेक काव्य ग्रंथ

९. **भाई वीरसिंह** (१८७२—)
पंजाबी के ज्येष्ठ कवि; 'मेरे सैयाँ जीओ' पुस्तक पर अकादेमी का ५००० रु. का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ होने का पुरस्कार मिला
प्र.—अनेक काव्य-ग्रंथ

१०. **संतोखसिंह 'धीर'** (१९२०—)
स्वतंत्र लेखन
प्र.—पहु-फुटाला, धरती मंगदी मींह वे, पत्त झड़े पुराणे (कविता संग्रह); और दो कहानी संग्रह

१०. बँगला

१. **अजित दत्त** (१९०७—)
बँगला साहित्य के प्रोफेसर
पाँच कविता संग्रह और एक निबंध संग्रह प्रकाशित

२. **अशोकविजय राहा** (१९१०—)
विश्वभारती विश्वविद्यालय में बँगला के अध्यापक
सात काव्य संग्रह प्रकाशित

३. (स्व.) **जतीन्द्रनाथ सेनगुप्त** (१८८८-१९५४)
इंजीनियर थे
चार काव्य संग्रह प्रकाशित।

४. (स्व.) **जीबनानन्द दास** (१८९९-१९५४)
अँगरेजी साहित्य के प्रोफेसर थे
छह कविता संग्रह प्रकाशित; आपकी 'श्रेष्ठ कविता' को गत सात वर्षों में सर्वश्रेष्ठ बंगला पुस्तक होने का सम्मान और अकादेमी का रु. ५००० का पुरस्कार मिला

५. **प्रमथनाथ बिशी** (१९०२—)
कलकत्ता विश्वविद्यालय में बँगला साहित्य के अध्यापक
उपन्यास, कहानी, प्रहसन, निबंध सब-कुछ प्रचुर मात्रा में लिखा है; छह कविता संग्रह प्रकाशित

६. **मणीन्द्र राय** (१९१९—)
तीन कविता संग्रह प्रकाशित

७. **विश्व बंद्योपाध्याय** (१९१६—)
एक कविता पुस्तक प्रकाशित

८. **संजय भट्टाचार्य** (१९०९—)
बँगला मासिक पत्रिका 'पूर्वाशा' के संपादक
सात काव्य संग्रह प्रकाशित

९. **सुधीन्द्रनाथ दत्त** (१९०९—)
बँगला मासिक पत्रिका 'परिचय' के १९३१ में संस्थापक-संपादक थे
चार कविता संग्रह और एक निबंध संग्रह प्रकाशित

१०. **हरप्रसाद मित्र** (१९१७—)
कलकत्ता विश्वविद्यालय में बँगला साहित्य के अध्यापक
पाँच कविता संग्रह और चार निबंध तथा साहित्य समालोचना के संग्रह प्रकाशित

११. मराठी

१. **अनिल** (आ. रा. देशपांडे) (१९०१—)
कम्युनिटी प्रोजेक्ट में समाज शिक्षा-विभाग के स्पेशल आफसर
प्र.—कविता-संग्रह : फुलवात, पेर्तेव्हा, भग्नमूर्ति (लंबी कविता), निर्वासित चीनी मुलास

२. **इंदिरा** (संत) (१९१४—)
बेलगाँव में स्वतंत्र लेखन
प्र.—सहवास, शेला, मेंदी : अंतिम संग्रह पर बंबई राज्य की ओर से पुरस्कार प्राप्त

३. **कुसुमाग्रज** (वा. वि. शिरवाडकर) (१९१२—)
नासिक में अध्यापक
प्र.—जीवनलहरी, विशाखा, किनारा

४. **ना. घ. देशपांडे** (१९०९—)
विदर्भ में सरकारी वकील
प्र.—शीळ

५. **मर्ढेकर बा. सी.** (१९०९–१९५६)
आकाश वाणी नई दिल्ली के अधिकारी थे; आपके ग्रंथ 'सौंदर्य आणि साहित्य' को साहित्य अकादेमी के '५३ से '५५ तक प्रकाशित सर्वश्रेष्ठ मराठी ग्रंथ का ५,००० रु. का पुरस्कार दिया गया
प्र.—शिशिरागम, कांहीं कविता, आणखी कांहीं कविता

६. **मंगेश पाडगाँवकर** (१९२९—)
साप्ताहिक 'साधना' के सह-संपादक, बंबई
प्र.—धारानृत्य, जिप्सी

७. **मुक्तिबोध, शरच्चंद्र** (१९२९—)
मध्य प्रदेश सरकार में भाषा-विभाग में कर्मचारी, नागपुर
प्र.—नवी मळवाट (कविताएँ), क्षिप्रा (उपन्यास)

८. **रेगे पु. शि.** (१९१०—)
सिडनहैम कालेज में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर
प्र.—साधना, फुलोरा, हिमसेक, दोला, गंधरेखा

९. **वसंत बापट** (१९२२—)
बंबई के नैशनल कालेज में प्रोफेसर
प्र.—बिजली

१०. **विंदा करंदीकर** (१९१८—)
गोविंद वि. करंदीकर का उपनाम
रामनारायण रूइया कालेज, बंबई में अंगरेजी के अध्यापक
प्र.—स्वेदगंगा, मृद्‌गंध

१२. मलयालम

१. **अक्किकत्तं अच्युतन् नम्पूतिरी** (१८२६—)
प्र.— मधुविधु पंचवर्णक्किळिकल

२. **कुंञिरामन्, नायर पी.** (१९०९—)
प्र.—निरपरा, अंटिक्तरी

३. **का. मा. पणिक्कर** (१९०१—)
राज्य पुनर्गठन आयोग के सदस्य, इतिहासकार, राजदूत
प्र.—अपक्वचपलम्, चिंतातरंगिणी (कविता संग्रह); केरलसिंहम् (उपन्यास)

४. **एन. गोपाल पिल्लई** (१९०९—)
संस्कृत कालेज त्रिवेन्द्रम् के प्रिंसिपल
प्र.—चिंतादीपम्, नवमुकुलम्

५. **वेण्णिक्कुळम् गोपाल कुरुप्पु** (१९०२—)
त्रिवेन्द्रम् के मलयालम कोश विभाग से संबद्ध
प्र.—सौंदर्यपूजा, वसंतोत्सवम्

६. **जी. शंकर कुरुप्पु** (१९०१—)
महाराजा कालेज, एर्नाकुलम् में मलयालम के प्रोफेसर
प्र.—साहित्य कौतुकम् (४ खंड), निमिषम्, ओटक्कुषल

७. **नालांकल् कृष्ण पिल्लई** (१९१०—)
कुलशूर हाईस्कूल के हेडमास्टर
प्र.—रागरंगम्, शोकमुद्रा

८. **पाला नारायणन् नायर** (१९११—)
त्रिवेन्द्रम् विश्वविद्यालय के प्रकाशन विभाग में पंडित
प्र.—पूक्कल, केरलम् वलरुन्नु

९. **बालामणि अम्मा, नालप्पाटु** (१९०९—)
प्र. अम्मा, प्रभांकुरम

१०. **वल्लत्तोल्** (१८७८—)
मलयालम के आस्थानकवि; केरल कला-मंडलम् के संस्थापक।
प्र.—मग्दलन मरियम्, शिष्यनुं मकनुं, साहित्य मंजरी (८ खंड), ऋग्वेद का पद्यबद्ध अनुवाद

१३. संस्कृत

१. **गणेश शर्मा** (१९०८—)
झालावाड़ (राजस्थान) में अध्यापक
प्र.—(संस्कृत) आशीष-कुसुमांजलि, लक्ष्मणप्रशस्ति; महारावल रजतजयंती अभिनंदन ग्रंथ के संपादक

२. **चंद्रधर शर्मा** (१९२०—)
बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में दर्शन विभाग के रीडर
प्र.—(अंगरेज़ी में) इंडियन फिलासफी, डायलेक्टिक इन बुद्धिज्म एंड वेदान्त, (हिन्दी में) बुद्ध-दर्शन और वेदांत, पाश्चात्य दर्शन

३. **ज्वालापतिलिंग शास्त्री** (१९०२—)
संस्कृत, तेलुगु तथा ज्योतिष के अध्यापक
प्र.—भक्तकर्णामृतम्, मातृ-माला-स्तवकम्

४. **दशरथ शास्त्री** (१८७२—)
पांडित्य तथा जन-सेवा-कार्य
प्र.—कृषिशासन, आधुनिक मत-मर्दन, नियोगिनी-ब्राह्मण काव्य, विधान-मार्तंड, विद्याकौस्तुभ नामक चित्र-काव्य टीका

५. **मथुराप्रसाद दीक्षित** (१८७८—)
सोसन के तारिणी महाविद्यालय के भूतपूर्व प्रिंसिपल, राजगुरु, सर्वतंत्रस्वतंत्र, विद्यावारिधि, महामहोपाध्याय
प्र.—भारतविजयनाटकम्, प्रतापविजयनाटकम्, भक्त सुदर्शन, मोहन गांधी

६. **महालिंग शास्त्री, वाई** (१८९८—)
स्वतंत्र लेखन
प्र.—किंकिणीमाला, भ्रमरसंदेश, वनलता

७. **माधवप्रसाद देवकोटा**

८. **माधव चैतन्य ब्रह्मचारी** (१९२०—)
संस्कृत राष्ट्रभाषा प्रचार कार्य
प्र.—मलयाल-यतीन्द्र गीता; संस्कृत राष्ट्रभाषा

९. **व्यासराय शास्त्री, के. एल.** (१८९४—)
प्र.—लीलाविलास-प्रहसन, माध्वानंदलहरी, महाराणाविजय, अपरोक्षामृत-शतक, राघवेंद्रचरित।

१०. (स्वर्गीया) **पंडिता क्षमा राव** (१८९०–१९५४)
सत्याग्रहगीता (पैरिस) १९३२, कथापंचकम् (बंबई) १९३२, शंकरजीवनाख्यानम्, उत्तरसत्याग्रहगीता (बंबई) १९४८, श्रीतुकारामचरितम् (बंबई) १९५०, मीरालहरी (बंबई) १९५२

१४. हिन्दी

१. **'अंचल' रामेश्वर शुक्ल** (१९१५—)
राबर्टसन कालेज जबलपुर में हिन्दी के प्रोफेसर
प्र.—मधूलिका, अपराजिता, किरण वेला, करील, लाल चूनर, वर्षांत के बादल (कविता संग्रह)

२. **'अज्ञेय'** (१९११—)
हाल में यूनेस्को की फेलोशिप से विदेश में थे; स्वतंत्र लेखन
प्र.—भग्नदूत, चिंता, इत्यलम्, हरी घास पर क्षण भर, बावरा अहेरी (कविता संग्रह)

३. **जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द'** (१९०७—)
ग्वालियर में स्वतंत्र लेखन
प्र.—जीवन संगीत, बलि पथ के गीत, भूमि की अनुभूति, मुक्तिका (कविता संग्रह)

४. जानकीवल्लभ शास्त्री (१९१६—)
मुजफ्फरपुर कालेज में प्रोफेसर
प्र.—शिप्रा, गाथा, अवन्तिका (कविता संग्रह); साहित्य दर्शन (निबंध)

५. 'बच्चन', डॉ० हरिवंशराय (१९०७—)
आकाशवाणी इलाहाबाद के भूतपूर्व हिन्दी प्रोड्यूसर; अकादेमी के हिन्दी परामर्शदाता बोर्ड के सदस्य; विदेश मंत्रालय में विशेष हिन्दी अधिकारी
प्र.—तेरा हार, मधुशाला, मधुबाला, मधु कलश, हलाहल, निशा निमंत्रण, एकांत संगीत, विकल विश्व, सतरंगिनी, मिलन यामिनी, बंगाल का काल, खादी के फूल, सूत की माला, सोपान, प्रणय पत्रिका (कविता संग्रह)

६. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' (१८९७—)
संसद्-सदस्य
प्र.—कुंकुम, क्वासि, अपलक, विनोबा-स्तवन, ऊर्मिला

७. महादेवी वर्मा (१९०७—)
प्रयाग महिला विद्यापीठ तथा साहित्यकार संसद् की प्रमुख, 'साहित्यकार' की संपादिका, अकादेमी के हिन्दी परामर्शदाता बोर्ड की सदस्या
प्र.—नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत, दीपशिखा, यामा (कविता संग्रह), अतीत के चलचित्र, स्मृति की रेखाएँ (संस्मरण); शृंखला की कड़ियाँ (निबंध)

८. रामदयाल पांडेय (१९१७—)
'पाटल' के भूतपूर्व संपादक
प्र.—गणदेवता, अशोक, पेला

९. रामधारीसिंह 'दिनकर' (१९०८—)
राज्य-सभा के सदस्य, कवि, आलोचक, इतिहासविद्; अकादेमी के हिन्दी परामर्शदाता बोर्ड के सदस्य
प्र.—रेणुका, हुंकार, रसवंती, सामधेनी, द्वंद्वगीत, कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी, नीलकुसुम, नीम के पत्ते, दिल्ली (कविता संग्रह); मिट्टी की ओर, अर्द्धनारीश्वर (आलोचना); संस्कृति के चार अध्याय आदि

१०. सुमित्रानंदन पंत (१९००—)
आकाशवाणी के भारतीय भाषाओं में साहित्यिक कार्यक्रमों के प्रमुख परामर्शदाता; अकादेमी के हिन्दी परामर्शदाता बोर्ड के सदस्य
प्र.—ग्रंथि, वीणा, पल्लव, गुंजन, युगांत, युगवाणी, ग्राम्या, स्वर्ण-किरण, स्वर्ण-धूलि, मधु ज्वाल, ज्योत्स्ना, उत्तरा, अतिमा (कविता संग्रह)